पन्त : आधुनिक कवि

प्रो० राजकुमार शर्मा

पद्म बुक कम्पनी, जयपुर

अनुक्रम

आलोचना खण्ड

प्रक

पद

जय

व्याख्या खण्ड

आधुनिक कवि

पंत का जीवन चरित्र

सामान्य परिचय—हिन्दी के छायावादी कवियो मे पत को विशेष प्रसिद्धि मिली और इसका कारण था उनका सौन्दर्यपरक दृष्टिकोण। अन्य छायावादियो की अपेक्षा पत इसलिए भी प्रसिद्धि पा गये कि वे समय से कभी भी पीछे की ओर नही मुडे हैं। अपने आपको समकालीन चिन्तन से जोडते हुए भी वे कभी भी अपनी चेतना से विलग नही रहे हैं। प्राय. देखा जाता है कि आलोचक गण कवि या लेखक के जीवन चरित्र से विशेष जुडे हुए नही होते हैं, वे उसकी कृतियो के मूल्याकन की दिशा मे जितने सक्रिय रहते हैं, उतने किसी अन्य दिशा मे नही रहते है। वस्तुत कवि का जीवन-चरित्र हमारे लिए जितना स्पष्ट होगा, उतना ही स्पष्ट उसका साहित्य होगा। पत आधुनिक युग के कवि है, किन्तु उनकी जीवन-चर्या पर कम ही लिखा गया है। जो भी तथ्य हमारे सामने हैं उनके आधार पर उनके जीवन-चरित्र को स्पष्ट किया जा सकता है। उनका जन्म और जीवन विकास उनकी कविता की पृष्ठभूमि मे सदैव ही रहा है।

जन्म—अलमोडा से ३२ मील उत्तर, समुद्र तल से साढे सात हजार फीट ऊपर उपस्थित कौसानी हिमालय की अत्यन्त सुन्दर उपत्यका है। चीड और विशाल बाज, देवदार और केले मे ढके हुए पर्वतगात्र प्राकृतिक सौन्दर्य मे कौसानी को अनुपम बनाते हैं। पिछले महायुद्ध से पहले कौसानी मे किसी अग्रेज का एक विशाल चाय का बगीचा था। साहेब के मुनीम और लकडी के ठेकेदार थे प० गगादत्त। प० गगादत्त पत सीउनराकोट से आकर यही—इच्छीना मे बस गये थे। २१ मई, सन् १९०० (ज्येष्ठ कृष्ण ८ स० १९५७) मे प० गगादत्त की पत्नी सरस्वती देवी को चौथा पुत्र पैदा हुआ, जिसके ससार मे आने के ६ घन्टे बाद ही मा ने शरीर छोड दिया। पिता ने पुत्र का नाम सुमित्रा नदन पत रखा। हरदत्त, रघुवरदत्त और देवदत्त जैसे-नामो के बाद पिता को अपने सबसे छोटे पुत्र का नाम इतना कवितामय रखने का कारण क्या था।[1]

बचपन—पत की माता तो जन्म देकर स्वर्ग सिधार गई, किन्तु पत को जो अभाव खला, उसकी पूर्ति इनकी फूफी ने की। उन्होने ही उनका लालन पालन किया। यो वे भरे-पूरे परिवार के थे। पत के चचेरे भाई भी

---

1. हिन्दी के युग प्रवर्तक कवि पत नामक लेख से राहुल सास्कृत्यायन।

थे। स्वास्थ्य सदैव से ही अच्छा रहा है, हा ११ वर्ष तक की अवस्था तक पेट-विकार से पीडित रहे हैं। स्वभाव मे पर्याप्त शाति थी, कोमलता थी। बचपन में भूत प्रेतो की कहानिया सुना करते थे। खेल-कूद उतना प्रिय नहीं था जितना कि अपने आप मे गुमसुम रहकर कुछ न कुछ सोचते रहना। उनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि जब पहाडो पर बर्फ गिरती थी तो वे पहाडो मे प्रसिद्ध परियो की कहानियो की परियो को देखने के लिए उत्सुक रहता था जो बर्फ के रूपहले फर्श पर नाचा करती हैं। देवदार वृक्षो और उनसे झरते पीले चूर्ण को वे घन्टो बैठे देखा करते थे घर की स्त्रियो को गाते देखकर स्वयं भी गुनगुनाने का प्रयत्न करते थे। कभी कभार ऐसा भी होता था कि वे सुन्दर रग-बिरगे गोल-मटोल पत्थरो को इकट्ठा करके उनकी पूजा भी किया करते थे।

पत को माता का अभाव कई बार खला है। उन्होने जब अनुभव किया कि माता नही हैं तो बिलख उठे—"मैं सोचने लगा कि यदि आज मा जीवित होती तो कितनी प्रसन्न होती। कितने दुख की बात है कि वह सरस्वती अपनी आखो मे इतना न देख पाई कि उनका पुत्र सरस्वती की आराधना करके कितना यशस्वी बनेगा।" पत ने अपनी माता की याद को 'वीणा' की अनेक कविताओं के माध्यम से व्यक्त किया है। 'मा' शब्द की बार-बार की आवृत्ति ही इसका प्रमाण है। देखिये और कवि की इन पक्तियो को पढिये—

जीवन भर भी मा! मैं पूरे
गा न सकूगी तेरे गीत।
अपनी वाणी में स्वर भर।

'ग्रथि' की कविताओ मे कवि ने इसका निमित्त नियति को ठहराया है। वे लिखते हैं—

नियति ने ही निज कुटिल कर से सुखद
गोद मेरे लाल की थी छीन ली
बाल मे ही हो गई थी लुप्त हा।
मातृ अचल की अभय छाया मुझे।

स्पष्ट ही पत को जीवन में माता का अभाव रहा। परिणामत. वे जीवन की विविध परिस्थितियो मे उसे याद करना भूल भी कैसे सकते थे?

शिक्षा-दीक्षा—पत जी की प्रारम्भिक शिक्षा गाव में ही शुरू हुई। लकडी की पट्टी से शिक्षा प्राप्त करने वाला पत आगे चलकर सिद्ध और विद्या-शिरोमणि साबित हुआ। "चार पाच साल का होने पर पिता ने लकडी की तख्ती पर मृत्तिका चूर्ण डालकर सुमित्रानदन को 'श्रीगणेशाय नम' शुरू किया। कौसानी मे एक छोटा सा स्कूल था, जिसमें चालीस पचास लडके पढा करते थे और अध्यापक थे फूफी के लडके। वे रोज स्कूल जाया करते थे। पढने में उनकी दिलचस्पी थी। बडे भाई अपनी नक्ल पत्नी के

मनोरजन के लिए मेघदूत को बड राग से गाते थे। सुमित्रानदन जी उसे बड ध्यान से सुनते थे—छन्द को, राग को, अर्थ को। सुमित्रानदन को इनके भेद नही मालूम थे। भाई के कमरे के बरामदे मे पत का डेस्क था। भाई और छुट्टियो मे आये उनके दोस्त इश्किया गजल गाया करते थे पतजी को गजल की लय अच्छी मालूम हुई और सात-साल की अवस्था मे ही पत ने भी एक गजल लिख डाली।"

सन् १९०९ मे पत ने दर्जा ४ पास किया। अग्रेजी की शिक्षा देने वाले सभी स्कूल दूर थे और नौ साल की उम्र मे बाहर भेजना पिता को पसन्द नही था। परिणामत दो वर्ष तक तो घर पर ही अग्रेजी का अध्ययन चलता रहा। आगे चलकर गवर्नमैन्ट हाई स्कूल मे प्रवेश दिलाया गया। नवी कक्षा तक शिक्षा प्राप्त करने के बाद ही वे बनारस चले गये। मैट्रिक के पश्चात् वहा से भी चले आये और प्रयाग के म्योर सैन्ट्रल कालेज मे भर्ती हो गये। उस समय यह हिन्दू बोर्डिंग हाउस मे रहा करते थे जहा उनका भविष्य उनसे खेलने के लिए आया करता था—

इस विस्तृत होटल मे
मै सुनती हू,
मेरा भी है सखि! छोटा सा रूम,
जहा मेरी आकाक्षा सूम।
गूजती हैं प्रतिपल को तूम।

पत जी को बचपन से ही साधुओ को देखने का शौक था। १९१५ मे इन्होने स्वामी सत्यदेव का व्याख्यान सुना। वहा एक पुस्तकालय की स्थापना की गई। इसी के परिणामस्वरूप पत के हृदय मे देश प्रेम और हिन्दी प्रेम का प्रादुर्भाव हुआ। पंत जी ने मैथिलीशरणजी की कविताओ को बड गौर से पढना प्रारम्भ किया। १५ साल की अवस्था में ही वे रोला लिखने लगे थे। इसका प्रमाण है कि उन्होने इसी छन्द मे अपने फुफेरे भाई को एक पत्र लिखा।

कहा जाता है कि एक बार एक तरुण अवस्था का साधु अल्मोडा मे काषाय वस्त्र पहिने आया जिसके दर्शन करके पत को ऐसा लगा जैसे यह ज्ञान और वैराग्य की जीती जागती तस्वीर हो। वे इससे पर्याप्त प्रभावित हुए। अब उनके चिंतन का एक पक्ष तो योग और वैराग्य की ओर झुकता चला गया और दूसरी ओर वह साधुओ की सगत बिताने लगा। धीरे-धीरे पत की रुचि धार्मिक पुस्तको और पोथियो मे होती गई। १९१६ मे ही अल्मोडा अखबार में पत की पहली कविता छपी। इस समय भारत-भारती का छन्द हरिगीतिका पत को बहुत पसद था। साहित्यिक गोविन्दवल्लभ पत के भतीजे श्यामाचरण पत सुधाकर नाम से एक हस्तलिखित पत्र निकालते थे। सुमित्रानदन की कविताए उसमे प्रकाशित होने लगी। पत ने इसी समय मध्यकालीन कवियो को पढा। केशव उन्हे कभी भी रुचे नही। मतिराम और सेनापति से पत का विशेष लगाव रहा है। बिहारी भी उनकी रुचि मे

सर्वाधिक भाये। सन् १९१६ मे पत ने अपने 'तम्बाकू का धुआ' को अलमोडा अखबार मे छपवाने के निमित्त भेजा। उसकी ये दो पक्तिया देखिये—

'सप्रेम पान करके मानव तुझे हृदय मे।
रखता जहा बस हैं भगवान विश्व-स्वामी॥

पत ने हिन्दी और अंग्रेजी के परम विद्वान् प० शिवाधर पाण्डेय के चरणो मे बैठकर सस्कृत, हिन्दी और अग्रेजी सीखी। कविता तो पत जी किया ही करते थे। धीरे-धीरे शिक्षा के प्रभाव से इनकी प्रतिभा का निरन्तर विकास होता गया। इसके साथ ही कवि ने ज्योतिष, सगीत और डाक्टरी का ज्ञान भी प्राप्त किया। पत ने अपने सम्बन्ध मे स्वय लिखा है—"श्री मैथिलीशरण जी की मुझ पर बडी कृपा रही, उनका स्नेह मुझे मिला है। उनके चिरगाव मे हो आया हू, वहा बडा सुख पाया। अयोध्यासिह उपाध्याय का मेरे प्रति बडा सद्भाव रहा। उनके सभापतित्व मे होने वाले प्रयाग के एक कवि सम्मेलन मे जब मैंने 'छाया' कविता पढी तो उन्होने गद्गद् होकर अपने गले की माला ही मेरे गले मे डाल दी। रत्नाकर जी मुझे बहुत प्यार करते थे यहा तक कि एक चित्र भी उन्होने मेरे साथ खिचवाया था। श्रीधर पाठक से मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। रविवार की सध्या म प्राय उन्ही के यहा जाना खाया करना था। प्रकृति के बडे प्रेमी थे वे मेरी वीणा की रचनाओ को बहुत पसद करते थे। कभी-कभी कह दिया करते थे 'मुझे विश्वास हो गया तुम भविष्य के कवि हो।" प्रसाद जी के साथ तो मैं काशी ठहरता ही था। उनकी अनेक मधुर स्मृतिया मेरे हृदय मे हैं। वे अत्यन्त मधुर स्वभाव के व्यवहार कुशल व्यक्ति थे। स्वाभाविक रूप मे कविता जिसके व्यक्तित्व मे निवास करे ऐसे प्राणी थे वे। निराला जी से सुहृद मित्र की भाति घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। पहली बार अपने जामाता के साथ वे मुझे मिले थे। मुझे स्मरण है अपनी मौन-निमन्त्रण कविता मैंने उन्हे सुनाई थी और उन्होने उनकी बडी प्रशसा की थी। जिन दिनो निराला जी लखनऊ मे थे और मैं कालाकाकर से वहा जाता तो उनसे नित्य भेंट होती। हम साथ ही सध्या समय टहलने जाते और कभी-कभी अमीनाबाद मे साथ बैठकर चाय पीते। उन दिनो का मुझे अब भी स्मरण है। निराला एक बार कालाकाकर भी आये थे और यह बात तो प्रसिद्ध ही है कि निराला मुझे बहुत प्यार करते हैं। महादेवी से मेरा प्रथम परिचय धीरेन्द्र वर्मा के विवाह मे हुआ।"

पत के जहा एक ओर मित्र थे, वहा दूसरी ओर उनके आलोचक भी थे। इलाचन्द्र जोशी और श्यामाचरण पत कहा करते थे कि सुमित्रानदन तो मैथिलीशरण का नक्कालची है। सुधाकर मे सुमित्रानदन उनके आक्षेपो का उत्तर भी देते थे लेकिन साथ ही वह अपने मन मे उनके आक्षेप को सत्य भी समझते थे। इससे उनकी चिन्तना शक्ति स्वच्छदता की दिशा मे मुडती गई। पत की बोलचाल और लेखन शैली मे कठिन शब्दावली होती थी। कई बार तो उनकी क्लिष्ट हिन्दी को पढकर अध्यापकगण कह दिया करते थे कि यह नम्बर फेल होगा।

धीरे-धीरे कविता लिखने का शौक बढता गया। सन् १९१६ मे तो वे एक-एक दिन मे दो-दो कविताए लिखा करते थे। पत ने 'कागज के फूल' शीर्षक से एक कविता लिखी। उसमे पत जी ने लिखा था—

कागज कुसुम बता तू छविहीन क्यो बना है
तू रूप-रग मे तो उपवन कुसुम सदृश है।

ब्रज भाषा मे कविता करने का इन्हें कभी शौक नही हुआ। ब्रज भाषा की कविता उनकी दृष्टि मे बेसुरा गाना था। सन् १९१६-१७ की जाडो की छुट्टियो मे पत कौसानी चले गये थे—ठण्डी जगहो मे लम्बी छुट्टिया गर्मी की जगह जाडे मे होती है। यही पत ने अरुण और हिमाचल आदि कविताए लिखी। उन्ही दिनो पत ने 'हार' नाम से एक उपन्यास लिखा था जो अप्रकाशित ही रह गया। उन दिनो पत पर कविता लिखने का शौक हावी हो गया था। हिन्दू विश्वविद्यालय में कविता की प्रतियोगिता हुई। पत ने दो घन्टे मे ही अपनी पूरी कविता लिख डाली और इस प्रकार सफलता प्राप्त की।

पत ने अपने शिक्षा काल मे ही रवीन्द्र की कविताओ को भी पढा। सरोजिनी' की कविताओ से भी वे पर्याप्त प्रभावित हुए। 'प्रियप्रवास का स्टाइल उन्हे पसद था और शब्दो के चुनाव मे भी दूसरो की अपेक्षा उसमे ज्यादा परिष्कृत रुचि दिखलाई गई थी। पत को करुण रस सबसे ज्यादा प्रिय है। प्रियप्रवास के राधा-रुदन को पढते हुए वे अपने आसुओ को बहाया करते थे लेकिन तब भी उस समय तक हिन्दी काव्य मे जिस शैली और भाषा का प्रयोग हो रहा था, वह बेरंग-रूप का चटियल मैदान सा मालूम होता था।"[1]

२१ जुलाई, १९२१ को पत म्योर सैन्ट्रल कालेज मे दाखिल हो गये। सस्कृत, इतिहास और तर्कशास्त्र का यह विद्यार्थी कवि सम्मेलनो में भाग लेने लगा। पत की उन दिनो की लिखी 'स्वप्न' कविता की ये पक्तिया देखिये—

"बालक के कपित अधरो पर,
किस अतीत स्मृति का मृदु हास?
जग की इस अविरत निद्रा का,
करता नित रह रह उपहास।
उन स्वप्नो की स्वर्ण-सरित का,
सजनि कहा शुचि जन्म स्थान?
मुसकानो मे उछल-उछल मृदु,
बहती वह किस ओर अजान?'[2]

1 सुमित्रानन्दन पत : [illegible], पृष्ठ ३६।
2 पल्लविनी—सन् १९३७।

सन् १९२१ मे पत जब एफ ए मे पढ रहे थे तभी असहयोग आन्दोलन छिडा। महात्मा गाधी प्रयाग पहु चे। पत इस राजनीति से बेखबर थे। उन्होंने कविता की एकात-साधना मे अपना चित्त नहीं हटाया। बडे भाई ने कहा—"क्या करते रहते हो ? क्या महात्माजी के दर्शनो के लिए नहीं जाओगे। पत महात्मा जी के दर्शनो के लिए आनन्द भवन गये।" महात्माजी ने छात्रो से कालेज छोडने की माग की और पत ने सभी साथियो का अनुकरण करते हुए इसे स्वीकार कर लिया। इस प्रकार पत शिक्षा छोड छाडकर एकान्त भाव से कविता करने लगे।

परिस्थितियां.—कालेज की पढाई छूटी, शिक्षा का द्वार वन्द हुआ, राजनीति का द्वार खुला और कविता की ओर रुचि बढती गई। न तो करने को कोई काम रहा और न जीवन बिताने के लिए ही कोई साधन ! पारिवारिक सकट और आर्थिक सकटो की चोट से उनका जीवन विचलित हो उठा। वे स्वय लिखते हैं— "सन् १९२१ में जब मैंने कालेज छोड दिया, आर्थिक द्वार तो मेरे लिए उसी दिन वद हो गया। मेरी मा नहीं रही। पिता भी चले गये। भाइयो ने विशेष काम नहीं किया। इस प्रकार घर का सहारा भी चला गया। मैं अच्छे ढंग से पला हूं, अच्छे ढग से रहने का आदी हू, और सभी वहुत अच्छे ढग से रहें —इस बात का पक्षपाती हू। ऐसी दशा में क्या यह न्याय सगत था, क्या यह व्यावहारिक था, क्या यह सम्भव भी था कि मैं विवाह की बात सोचता ?"

सन् १९२६ में वडे भाई का देहान्त हो गया। वे वडे पैमाने पर व्यापार की ओर झुके थे किन्तु लाभ नहीं हो सका। उनका देहावसान हो गया, ६२०००रु० का कर्ज—भार सिर पर आ गया। पिताजी ने ज्यादाद वेंच कर कर्ज चुका दिया किन्तु इसके एक वर्ष बाद ही वे भी चले गये। कवि विचलित हो उठा। सन् १९३० मे कालाकाकर के महाराज अवधेशसिंह अपने छोटे भाई के साथ अलमोडा आये। कवि की दशा उनसे देखी न गयी और इस प्रकार उनसे कालाकाकर चलने की प्रार्थना की। अनेक अस्वीकारो के वाद भी उन्हे वहा जाना पडा। इसके पश्चात् वे उदयशंकर भट्ट के सम्पर्क में आये। उन्होंने अपनी इस समय की दशा के सम्बन्ध में स्वय लिखा है—"अपनी अस्वस्थता के बाद मुझे कल्पना चित्रपट के सम्बन्ध मे मद्रास जाना पडा और मुझे पाडिचेरी में श्री अरविन्द के दर्शन करने तथा श्री अरविन्द आश्रम के निकट सम्पर्क मे आने का सौभाग्य भी प्राप्त हो सका। इसमे सन्देह नही कि श्री अरविन्द के दिव्य जीवन दर्शन से मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ हूं।'

पत की जीवन-रेखा अत्यन्त सरल और स्पष्ट रही है। सन् १९२६ मे पत ने जो मानसिक उद्वेलन सहा है और जो परेशानिया सही है वे सभी उनके स्वास्थ्य को गिराने मे सहायक हुई। वे चिन्ता भार और व्यय भार से दबते चले गये। उनकी रचनाओ मे जो दुखवाद मिलता है, वह बहुत कुछ उनकी वैयक्तिक कष्ट-साधना का ही परिणाम है। पत जब मार्क्सवादी बने तब भी वे राजसी ठाट-बाट से रहते थे। जन-जीवन को उन्होंने एक

तटस्थ द्रष्टा की तरह देखा है। यही कारण है कि उनकी मार्क्सीय विचारणा भीतर से खोखली रही है। आगे चलकर सन् १९४१-४२ मे वे अरविंदवादी हो गये। १९४५-४६ मे पत अरविन्द आश्रम मे जाकर उनके दर्शनो के लिए गये। सन् १९५० के लगभग पन्त रेडियो पर चले गये और वहा से उनकी देख-रेख मे सास्कृतिक और साहित्यिक कार्य-क्रम प्रसारित होने लगे। पन्त सास्कृतिक उत्थान के प्रबल समर्थक रहे हैं। पन्त ने वैवाहिक जीवन के प्रति जो उदासीनता बरती, उसका उत्तर उनके ही शब्दो मे इस प्रकार है— "उदासीनता का प्रश्न नही भाई। अपने साथी को मैं मन चाहे ढग से अच्छी स्थिति मे नही रख सकता था। ऐसी दशा मे मुझे किसी को दुखी बनाने का क्या अधिकार था?"

व्यक्तित्व—पन्त की इस जीवन-रेखा को समझने के अनन्तर उनके व्यक्तित्व को भली भाति समझा जा सकता है। वे स्वभावत सरल व छल-विहीन थे। जो भी बात उनके मन मे आती है, वही कहते है। किसी भी बात को घुमा-फिराकर कहना उन्हें पसन्द नही था। उनका व्यक्तित्व विकसित पुष्प के समान हैं। पुष्प जैसे विकसित होकर सर्वत्र सुगन्धि वितरित करता है ठीक वही हाल पत का है। वे भी अपने सौम्य स्वभाव के कारण सर्वत्र सभी को प्रभावित करते हैं। पन्त की स्पष्टवादिता भी उनकी कविताओ मे देखी जा सकती है।

पत के व्यक्तित्व मे कोमलता का अश प्रमुख है। वे कोमलता के प्रतीक हैं तो निराला पौरुष के प्रतीक थे। गठित और सुकुमार शरीर 'गौर वर्ण, प्रदीप्त नेत्र और उन्नत ललाट और उससे भी अधिक उनके चिर-कुमार चिकुर आकर्षण का कारण बन गये। पत जी के बाल सभी को प्रिय रहे है। वे आज भी भरे और सफेद भले ही हो गये हो, किन्तु उनमे घु घरालापन अभी भी है। वे अपनी अ गुलियो से अभी भी उन्हें सवारते रहते हैं। देवीदत्त शुक्ल ने तो यहा तक कहा था कि पतजी के बालो मे भी कवित्व है।

राजेन्द्रसिंह गौड ने उनके व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला है। लिखा है कि "हिन्दी काव्य के उन्नायको मे पत का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली है। उनके रेशम से कोमल कु चित केश, उनका प्रशस्त ललाट, उनकी चमकती आखें, उनका सुगठित शरीर जहा हमे उनके शारीरिक सौन्दर्य का परिचय देता है वहा उनकी वेश-भूषा, उनका रहन-सहन, उनकी चाल-ढाल से हमे उनके आन्तरिक सौन्दर्य का, उनकी कला-प्रियता का भी आभास मिलता है। वह अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे कला प्रेमी हैं। प्रकृति सुन्दरी उनकी काव्य प्रेरणा का रहस्य है। उनमे जो शालीनता, चिंतनशीलता, सौम्यता, दार्शनिकता, कल्पनाशीलता और उदारता है वह भी उनके प्रकृति प्रेम के कारण × × × × पत के व्यक्तित्व की एक यह भी विशेषता है कि उनका अत. व्यक्तित्व जितना कोलाहल पूर्ण और गभीर है उतना ही उनका वहिर्व्यक्तित्व उल्लास-पूर्ण है। × × × उनका अन्तरग और बहिरग दोनो सुन्दर हैं। उनमे भावना का सौकुमार्य साधारण व्यक्तित्व की अपेक्षा कही अधिक है, इसलिए

वह जीवन के क्षेत्र मे खडे नही हो सकते हैं। उनका अब तक का अविवाहित रहना, जीविका की ओर से उदासीन रहना, कभी स्थायी रूप से कही न रहना आदि ऐसी बातें हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि वह अपने जीवन मे किसी प्रकार का सघर्ष सहन नही कर पाते।"

पत के व्यक्तित्व मे पलायनवादी तत्व भी मिलता है। जीवन के बहुविध सघर्षों से वे कतराते हैं। कल्पना का पुजारी यह सौम्य कवि सघर्षों की जटिलता को यदि सहन कर लेता तो सभवत उसका जीवन दूसरी ही दिशा मे मुड गया होता। उनकी इस विशेषता के सम्बध मे श्री गौड साहब ने लिखा है—"जीवन की बहुरगी कठिनाइयों मे वे इस प्रकार भागते है जैसे एक साधक, और वस्तुत वह एक साधक है। जीवन का एकाकीपन उनकी साधना मे सहायक हुआ है। अतएव वह निरन्तर एकात और बहिर्मुखी होती गई। इस प्रकार उनका समस्त जीवन ही एक पलायन है, एक स्केच है और यही पलायन वृत्ति उनकी सौन्दर्य साधना की जननी है। पलायन का मूल है अपने मे वर्तमान विषमताओ के समाधान की शक्ति का अभाव देखना। इसका यह अर्थ हुआ कि मनुष्य जब अपने मे वर्तमान विषमताओ का समाधान नही कर पाता और उनसे मानसिक पराजय स्वीकार कर लेता है तब वह पलायन-शील हो जाता है।"

पत पहले ही दर्शन मे प्रभावित करते हैं। उनका गौर वर्ण और सचिक्कण मुख की काति प्रभावित किये बिना नही रहती है। उनके इस गौर आभामय व्यक्तित्व की झाकी इस प्रकार प्रस्तुत की गई है। शिवचन्द्र नागर के ये शब्द ध्यान देने योग्य हैं–उनका रग बहुत अधिक गोरा नही है पर उनके 'क्लीन शेव्ड' चेहरे की रेखायें बडी ही आकर्षक थी। उनके नेत्र बडे ही भाव-पूर्ण एक हल्की आभा से ओत-प्रोत तथा स्वप्निल थे, उनकी नासिका जैसे प्रत्येक वस्तु के आतरिक तत्वो को जानने मे समर्थ हो इस प्रकार सुन्दर और नुकीली थी। वे न तो अधिक स्थूलकाय ही और न सूक्ष्मकाय थे, पर स्वस्थ लगते थे। उनकी ऊचाई लगभग पाच फुट तीन इच के आस-पास होगी। आश्चर्य की बात यह थी कि उनके शरीर की कोमलता पर अभी उम्र ने अपना कोई गहरा चिह्न नही छोडा था और सचमुच उनके हाथ और उन हाथो की उगलिया बडी ही कोमल-कोमल और शरीर के अनुपात मे कुछ लघु-लघु सी लगती थी। स्वर्णाभी की छाया लिये हुए हल्के बालो मे कही-कही श्वेत बाल अपनी विजय पताका फहराकर अपने अस्तित्व की घोषणा करना चाहते थे पर उनके बालो मे व्याप्त एक प्रकार की चमक ने उन्हें अपने मे डुबाकर परास्त कर दिया। इस प्रकार सौम्यता, सुन्दरता और कोमलता की सामजस्यमयी रेखाओ से बनी थी वह मूर्ति। निस्सदेह इस मूर्ति का सौन्दर्य 'लिओनार्दो विंची या बायरन का सा स्त्रियो के मन को झकझोर देने वाला और उन्हे पागल बना देने वाला उत्तेजनात्मक सौन्दर्य नही था, बल्कि शैली का सा शात, सौम्य और दिव्य सौन्दर्य था—कुछ-कुछ वैसा ही जैसे शरद-चादनी मे तैरने वाले धवल मेघ खण्डो का सौन्दर्य।"

पत की वेश-भूषा आकर्षक और मन-मोहक थी। प्रत्येक वस्त्र को पहनते समय वे अभिरुचि दिखाते थे, उनकी मनोकामनाएं निश्चित और सयमित होती है। शरीर पर कोट-पेंट, टाई के साथ मूल्यवान चश्मा बहुत ही आकर्षक लगता है। उनके निवास स्थान पर जाकर ही यह तय किया जा सकता है कि वे किस अभिरुचि के आदमी हैं। पर्दों, फर्श और चादरो का रग उनकी नफासत का प्रतीक है। स्त्रियो के विषय मे हम जिस प्रत्युत्पन्न मति के कायल रहते हैं वह पत मे भी पर्याप्त मिलती है। ज्योतिष और मत्र आदि के प्रति आस्थावान पत की धारणायें विशाल और उदार है। रोग के निदान के सम्बन्ध मे भी वे जानकारी रखते हैं। बच्चन ने इसी कारण कहा है—"पत जी को अपने घर मे रखना एक अच्छे डाक्टर को घर मे रखना है।"

प्रकृति-प्रेमी पत जनभीरु हैं। वे प्रकृति के सौन्दर्य के प्रति एकान्त-भाव रखने के कारण ही जन समुदाय से कतराते हैं। उन्होने स्वय लिखा है—"प्रकृति के साहचर्य ने जहा एक ओर मुझे सौन्दर्य स्वप्न और कल्पनाजीवी बनाया, वहा दूसरी ओर जन-भीरु भी बना दिया। यही कारण है कि जन समूह से अब भी दूर भागता हू और मेरे आलोचको का यह कहना कुछ अशो तक ठीक ही है कि मेरी कल्पना लोगो के सामने आने मे लजाती है।"

पत का सम्पूर्ण जीवन समन्वयवादी चेतना का परिणाम है। वे न तो अधिक सुख की कामना करते हैं और न अधिक दुख की। वे मानते है कि ससार दुखातिरेक के कारण नही सुखातिरेक के कारण दुखी है। इसी कारण पत सुख दुख की आँख मिचौनी खेलते हुए जीवन यापन करना चाहते है—

"मैं नही चाहता चिर सुख,
मैं नही चाहता चिर दुख !
सुख दुख की आख मिचौनी
खोले जीवन अपना मुख।"

आज भी पत अपनी इसी विचारणा को प्रसारित करने मे पूरी तरह सलग्न हैं।

पंत का कृतित्व

सुमित्रानन्दन पत हिन्दी के सर्वाधिक सौम्य कवि हैं। अपनी सौम्यता के कारण ही उन्हे कल्पना जीवी, सुकुमार और सुधा चूर्ण बरसाने वाला व ज्योति विहग आदि नामो से अभिहित किया गया है। उनका सम्पूर्ण काव्य इसी सौम्यता और मधुरता का परिणाम है। कहने की आवश्यकता नहीं कि पत के काव्य मे जो मधुर अमृत-चूर्ण बिखरा दिखाई देता है वह प्रकृति प्रेम के कारण है। कवि ने स्वय स्वीकार किया है कि 'कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्माचल को है। कवि जीवन के पहले भी मुझे याद है, मैं घण्टो एकान्त मे

बैठा प्राकृतिक दृश्यो को एकटक निहारा करता था और कोई अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर एक अव्यक्त सौन्दर्य जाल बुन कर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था। जब कभी मै आखें मूद कर लेटता था तो वह दृश्य मेरी आखो के सामने घूमा करता था। अब मैं सोचता हू कि क्षितिज मे सुदूर तक फैली एक के ऊपर एक उठी यह हरित नील, धूमिल, कूर्माचल की छायाकित पर्वत-श्रेणिया, जो अपने शिखरो पर रजत-मुकुट हिमाचल को धारण किए हुए हैं और अपनी ऊचाई से अवाक् नीलिमा को और भी ऊपर उठाये हुए हैं, किसी भी मनुष्य को अपने महान् नीरव सम्मोहन के आश्चर्य मे डुबा कर कुछ काल के लिए भुला सकती हैं।"

पत ने कविता लिखना कब सीखा और कैसे उनकी कवितायें धडाधड़ सामने आने लगी यह पिछले पृष्ठो में स्पष्ट किया जा चुका है। पत की कृतियो को क्रम के साथ इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

१	वीणा	रचना काल	१९१८
२	ग्रथि	,,	१९२०
३	पल्लव	,,	१९२२-२६
४	गुञ्जन	,,	१९२६-३२
५	युगात	,,	१९३४-३६
६	युगवाणी	,,	१९३७-३९
७.	ग्राम्या	,,	१९३९-४०
८	स्वर्ण किरण	,,	१९४७
९	स्वर्णधूलि	,,	१९४८
१०	मधुज्वाल	,,	१९४८
११	युगपथ	,,	१९४९
१२.	उत्तरा	,,	१९४९
१३	अतिमा	,,	१९५५
१४	वाणी	,,	१९५७
१५	कला और बूढा चाद	,,	१ ५९
१६	लोकायतन	,,	१९६४

इनके अतिरिक्त ज्योत्स्ना, रजतशिखर, शिल्पी, मधुवन, युग-पुरुष, छाया, मानसी आदि गीतिनाट्य, प्रतीकात्मक एकाकी आदि भी लिखे हैं। 'मधुवन' पत का कहानी सग्रह है। 'मधुज्वाल' में रुबाइयो का अनुवाद है। मानसी आदि स्वतत्र रूपक हैं जो गीति-नाट्य की शैली मे लिखे गये हैं। पत की इन रचनाओ मे 'ज्योत्स्ना' सर्वाधिक लोकप्रिय रचना है। इसके साथ ही पत ने अपनी चुनी हुई कविताओ के जो सग्रह प्रस्तुत किये हैं, वे भी अविस्मरणीय हैं—१ पल्लविनी-१९४८ २ आधुनिक कवि—१९४१ और ३ रश्मिबध १९६०। इन कृतियो पर सक्षेप मे प्रकाश डाला जा रहा है—

वीणा—प्रारम्भिक रचना है, इसे दुधमुंहा प्रयास कहा जा सकता है। कवि ने इसे अपनी तुतली बोली का काव्य कहा है! इस काव्य मे प्रकृति को विशेष महत्त्व मिला है। कही कही इस काव्य मे बडा सुन्दर चित्र है—

"कौन-कौन तुम परिहृत बसना,
म्लान-मना भू पतिता सी,
धूल धूसरित, मुक्त कुतला
किसके चरणो की दासी ?

× +

विजन-निशा मे किन्तु गले तुम
लगती हो फिर तरुवर के
आनन्दित होती हो सखि ! नित
उसकी पद-सेवा करके।"

इस काव्य मे रहस्यात्मक संकेत, प्रतिबिम्बवाद, प्रकृति अङ्कन के साथ-साथ विश्व-प्रेम, प्रार्थना और आत्म निवेदन सम्बन्धी रचनायें हैं।

२ ग्रंथि—यह जनवरी २० मे, अतुकात छन्द मे लिखी गयी एक प्रणय-गाथा है। वीणा का आशावादी कवि प्रस्तुत कविता मे निराशावादी हो गया है। कथा बडी सरल और सीधी है। नगेन्द्र जी के शब्दो मे यह कवि की कहानी है। जब तारुण्य का वाल रवि उसके प्राणो को पुलकित कर रहा था, उसी समय मधु-बेला भाग्य ने उसके हृदय मे एक ग्रंथि डाल दी जिसे वह कदाचित् अभी तक नही खोल सका है। बहुतो से सुना है कि ग्रंथि पंतजी के अपने अनुभव पर आधृत है जिसमें उन्होने अपनी प्रणय कहानी लिखी है।"

इस कृति मे प्रेम की परिभाषा, प्रेम के अनन्तर की स्थिति आदि सभी का वर्णन बडी मनोरम शैली मे किया गया है। प्रीति की रीति बताता हुआ कवि कहता है—

"यह अनोखी रीति है क्या प्रेम की,
जो अपागो से अधिक है देखता,
दूर होकर और बढता है तथा,
वारि पीकर पूछता है घर सदा ?

जब हृदय विंध जाता है तब की स्थिति का वर्णन देखिये—

प्रेम ही का नाम जप, जिसने नही,
रात्रि के पल हों गिने, प्रति शब्द से,
चौंक कर उत्सुक नयन जिसने उधर,
हो न देखा—प्यार उसने क्या किया?"

३. पल्लव—'पल्लव' पत की सर्वोत्तम रचना है। वे स्वय कहते हैं—"पल्लव मे मैंने १९१८ से १९२५ तक की प्रत्येक वर्ष की दो-दो तीन-तीन कृतिया रख दी है जिनमे से अधिकाश 'सरस्वती' तथा श्री शारदा मे समय-समय पर प्रकाशित हो चुकी है।"

न पत्रो का मर्मर सगीत,
न पुष्पो का रस, राग, पराग,

एक अस्फुट अस्पष्ट मगीत,
सुप्ति की ये स्वप्निल मुस्कान।

दिनकर की दृष्टि मे 'पल्लव' श्रेष्ठ रचना है—आग की पहली लपट की तरह खूबसूरत ह। पत की पल्लव की भूमिका बडी महत्वपूर्ण है। उसमे व्रजभाषा के प्रति रोप और खडी बोली के प्रति स्नेह मिलता है। वे लिखते हैं''–हिन्दी ने अब तुतलाना छोड दिया है, वह 'प्रिय' को 'पिय' कहने लगी है। उसका किशोर-कण्ठ फूट गया है, अस्फुट अङ्ग छट गये हैं, उनकी अस्पष्टता मे एक स्पष्ट स्वरूप की झलक आ गई, वक्ष विशाल तथा उन्नत हो गया, पदो की चचलता दृष्टि मे आ गई, हृदय मे नवीन भावनायें, नवीन कल्पनायें उठने लगी, ज्ञान की परिधि वढ गई।"

पत का प्रतिपाद्य भी प्रेम, प्रकृति और सौन्दर्य है। आसू की बालिका, मौन-निमत्रण, उच्छ्वास, नक्षत्र और 'छाया' श्रेष्ठ रचनायें है। भिन्न-भिन्न रगो और वर्णों मे सजा-धजा पल्लव पाठको के आकर्षण का कारण रहा है। इस काव्य की 'परिवर्तन' कविता भी बडी मधुर है। उसमे कही शृगार का अरुण राग है तो कही वीभत्स की रगत है उसमे एक ओर स्वर्णभृगो के गधविहार हैं तो दूसरी ओर वासुकि सहस्त्राफन'की शत-शत फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार है। शातिप्रिय द्विवेदी इसके सम्बन्ध मे कहते हैं—"परिवर्तनमय विश्व की करुण अभिव्यक्ति इतनी वेदनाशील हो उठी है कि वह सहज ही सभी हृदयों को अपनी सहानुभूति के कृपासूत्र मे वाध लेना चाहती हैं"—

अहे निष्ठुर परिवर्तन !
तुम्हारा ही ताण्डव नर्तन,
विश्व का करुण विवर्तन।

× ×

खुले भी न थे लाज के बोल,
खिले भी चुम्बन शून्य कपोल,
हाय ! रुक गया यही ससार,
वना सिन्दूर अङ्गार।

एक ओर तो 'परिवर्तन' का यह रग है और दूसरी ओर आसू की वालिका की असाधारण स्थिति है—

"तुम्हारे छूने मे था प्राण,
मग मे पावन गगा-स्नान,
तुम्हारी वाणी मे कल्याणि,
त्रिवेणी की लहरो का गान।"

'वियोगी होगा पहला कवि' जैसी पक्तिया 'पल्लव' में ही सुरक्षित हैं। निराला ने पल्लव की आलोचना की और वताया कि पत चौर्य-कला में निपुण हैं • एक पक्ति किमी एक कविता की और दूसरी किसी दूसरी कविता से, तीसरी मे कुछ अपना हिस्सा मिलाया, चौथी मे तुक मिलाने के लिए वैसा ही गढ कर कुछ वैठा दिया गया।" किन्तु यह आलोचना बहु–

प्रशसित नही रही है। कहने की आवश्यकता नही कि पल्लव काव्य अत्यन्त सुमधुर और सुरुचिपूर्ण है। इसमे कोमल कल्पनाओ का विलास है तो साथ ही कला का निखार है—विशेषकर शब्दो का शिल्पन है। इस कृति को देख कर शुकदेव बिहारी मिश्र ने कहा था—"मैं केवल हिन्दी के नवरत्नो को ही महाकाव्य मानता हू किन्तु पल्लव को पढ कर मुझे ऐसा लगा कि यह बालक भी महाकवि है।"

४. **गुञ्जन**—गुञ्जन मे पत जी का उन्मन गुञ्जन है। यह वह कृति है जब पत जी अपने सपनो को भुला कर धरती पर उतर आये हैं। पल्लव का किशोर कवि गुञ्जन मे प्रौढ होता गया है। उसने धरती पर आकर जग के आसू देखे है तथा साथ ही सुख-दुख को देखा और समझा है। यही कारण है कि कवि के मानस मे चिन्तन प्रवेश कर गया है। उनकी भावुकता धीरे से खिसकती गई है। वे स्वय लिखते हैं—"मैं पल्लव से गुञ्जन मे अपने को सुन्दरम् से शिव की भूमि पर पदार्पण करते हुए पाता हूँ। पल्लव मानसी सृष्टि है इसलिए उसमे स्वप्नादेश का भावावेश है किन्तु गुञ्जन मे आत्म-चिन्तन आत्ममनन की गभीर ध्वनि है। मन-मधुकर के पख डुबाने वाले आत्ममधु की चेतन सुगन्ध है।" वास्तव मे कवि को नयी अनुभूति होती है—

"जग पीडित है अति दुख से,
जग पीडित है अति सुख से।"

इसी कारण कवि का गुञ्जनगत समाधान है—

"मानव-जग मे बट जावे,
दुख-सुख से औ सुख-दुख से।"

कवि गुञ्जन मे आकर अन्तर्मुख और बहिर्मुख बनता चला गया है। इन दोनो मे समत्व स्थापित करता गया है—

कप-कप हिलोर रह जाती,
रे मिलता नही किनारा।
बुदबुद विलीन हो चुपके।
पा जाता आशय सारा॥

गुजन की कुछ कविताए प्रकृति के पुजारी कवि ने शुरू की हैं और दार्शनिक कवि ने समाप्त की हैं। 'नौका विहार' ऐसी ही रचना है। 'इस धारा सा ही जग का क्रम' और 'आत्मा है सरिता के भी' जैसी पक्तियो मे यही दार्शनिकता अनुस्यूत है। मानवीकरण, ध्वनि, और लाक्षणिक व चित्रात्मक वर्णनों का सुन्दर छायाकन गुजन की प्राथमिक विशेषता है।

युगांत, युगवाणी और ग्राम्या—गुजन तक पतजी छायावादी सौन्दर्य के पालने मे झूलते दिखाई देते हैं। युगात से उनका एक युग समाप्त हो जाता है। ये तीनो ही कृतिया प्रगतिशील चेतना की परिचायिका हैं। इन तीनो के नाम ही पत की परिवर्तित चिन्तन धारा को मोडते प्रतीत होते हैं। युगात की सभी कविताओ मे चिन्तना है और है दार्शनिक गाम्भीर्य। डा० नगेन्द्र के शब्दो मे इन सभी मे मानव जगत की मङ्गलाशा ओत-प्रोत है।

वल्लव का करुणा वलिष्ट भाव जो गुजन मे आकर समझौते का रूप धारण कर चुका था युगान्त मे आकर पूर्णतया मागलिक कामनाओ का वाहक हो गया है। इन कृतियो मे कवि गात के जीर्ण उद्यान मे मधु प्रभात लाने की शुभाकाक्षा बार-बार करता हुआ देखा जाता है। उसका करुणा तृप्त हृदय मानव हित से पूर्ण हो गया है, वह मानवता के विकास द्वारा जीवन की पूर्णता स्थापिन करने की शुभेच्छाओ से आकुल है। कवि ने लिखा है—

मै झरता जीवन डाली से।
साह्लाद शिशर का शीर्ण पात।
फिर से जगती के कानन मे
आ जाता नव मधु का प्रभात।

इतना ही नही कवि वार वार अपने गीत खग से कहता है—

जगती के जन पथ कानन मे
तुम गाओ विहग ! अनादि गीत।
चिर शून्य शिशिर पीडित जग मे
निज अमर स्वरो मे भरो प्राण।

× × ×

जो सोए स्वप्नो के तम मे
वे जागेंगे—यह सत्य बात
जो देख चुके जीवन निशीथ
वे देखेंगे जीवन प्रभात।।

नये युग की कामना से आन्दोलित कवि की भावनाओ को ही युगात में वाणी मिला है। प्राकृतिक सौन्दर्य मे रमता हुआ भी कवि मानव हित की बात सोचता है। वह पक्षियो आदि सभी से मानवता के गीत गाने के लिए कहता है। जगती पुरातनता के वस्त्र उतार दे और मानव हृदय मे नवीन मागलिक आशा का सचार हो, यही कवि की कामना है। अखण्ड और व्यापक मानवता का पक्षधर कवि कोकिल से मनुहार करता हुआ कहता है—

गा कोकिल, वरसा पावक कण !
नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन
ध्वश-भ्र श जग के जड बन्धन
पावक-पग धर आवे नूतन।
हो पल्लवित नवल मानवपन।।

आचार्य शुक्ल ने ठीक ही कहा है—पल्लव मे कवि अपने व्यक्तित्व के घेरे मे बधा हुआ गुजन मे कभी-कभी उसके बाहर और युगात मे लोक के बीच दृष्टि फैलाकर आसन जमाता प्रतीत होता है। गुजन तक वह जगत से अपने लिए सौन्दर्य और आनन्द का चयन करता हुआ प्रतीत होता है, युगात मे आकर वह सौन्दर्य और आनन्द जगत मे पूर्ण प्रसार देखना चाहता है। कवि की सौन्दर्य भावना अब व्यापक होकर मगल भावना के रूप मे परिणत हुई है।

कला की दृष्टि से भी युगांत मे छायावादी शैली-शिल्प बदल जाता है। छायावादी कल्पना वैभव के पख जैसे ही सिमटते जाते हैं वैसे ही कला भी प्रगतिशील चेतना से भर उठती है। "गुजन मे जो कला तितली के पख लेकर उडी थी वह युगात मे आकर मासल हो गई है। उसके लघु-लघु गीत अब पृथु और बलिष्ट हो गये हैं। कवि ने स्वय लिखा है—युगात में पल्लव की कोमल कान्त कला का अभाव मिलेगा। भाषा मे ज्योत्स्ना के गीतो की रुनझुन नही है। उसमे है एक सबल ओज। कवि को यहा आवश्यक काट-छाट करने की आवश्यकता नही पडी है, इसलिए युगात की भाषा मे वाछित महाप्राणता है। उसकी व्यजना शक्ति अत्यन्त विकसित और सशक्त है। गुजन और ज्योत्स्ना के गीतो के उपरान्त पतजी सुकुमार भार मे यौवन की नही—प्रौढता की मासल स्वस्थ गन्ध आ गई है—उनके स्नायुओ मे अब यथेष्ट काठिन्य आ गया है।

'युगवाणी' युगात की ही अगली भूमिका है। युगान्त एक युग की समाप्ति की सूचना है तो युगवाणी मे समसामयिक सदर्भों को वाणी दी गई है। इस कृति मे मार्क्स और गाधी की छाया देखी जा सकती है। इतने पर भी यह स्पष्ट है कि कवि न तो पूर्णत मार्क्सवादी है और न गाधीवादी ही है। उत्तरा की भूमिका मे यह तथ्य निरूपित किया गया है। जिस प्रकार हमारे मध्ययुगीन विचारको ने आत्मवाद से प्रकाश अध होकर मानव-चेतना के भौतिक (वास्तविक) धरातल को माया मिथ्या कहकर भुला देना चाहा उसी प्रकार आधुनिक विज्ञान दर्शनवादी और विशेषकर मार्क्सवादी भौतिकता के अन्धकार मे और कुछ भी न सूझने के कारण मन तथा सस्कृति (सामूहिक चेतना) आदि को पदार्थ का बिम्ब रूप, गौणस्तर या ऊपरी अति विधान कहकर उडा देना चाहते हैं जो मान्यताओ की दृष्टि से ऊर्ध्व तथा समतल दृष्टिकोण मे सामजस्य स्थापित न कर सकने के कारण उत्पन्न भ्राति है, किन्तु मात्र अधिदर्शन (मेटाफिजिक्स) के सिद्धान्तो द्वारा जडचेतन (मैटर स्पिरिट) की गुत्थी को सुलझाना इतना दुरूह है कि युग मन के अनुभव के अतिरिक्त इसका समाधान सामान्य बुद्धिजीवी के लिए सम्भव नही है।

युगवाणी एक विचार से भारतीय साम्यवाद को वाणी देती प्रतीत होती है—"भारतीय अर्थात् जिस रूप मे उसे भारत का मस्तिष्क और हृदय समझ सका है। साम्यवाद अभी हमारी समझ से आगे बढ नही सका—अभी जीवन की वस्तु नही बन सका, यह निर्विवाद है। अभी वह सुन्दर दर्शन मात्र है। युगवाणी मे प्रधानत: उसी के सिद्धान्तो का गद्यात्मक निबन्धन किया गया है। भारतीय साम्यवाद (?) का युगवाणी मे दो रूपों मे ग्रहण है। एक ओर उसके मुख्य-मुख्य सभी सिद्धान्तो का विवेचन है, दूसरी ओर साम्यवाद के दृष्टिकोण का ग्रहण।" मार्क्स के प्रति कवि की ये पक्तिया देखिये—

धन्य मार्क्स! चिर तमच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर।
तुम त्रिनेत्र के ज्ञान चक्षु से प्रकट हुए प्रलयकर॥

इसके साथ ही गांधीवादी भावना की द्योतक इन पंक्तियों को देखिए—

> मनुष्यत्व का तत्व सिखाता निश्चय हमको गांधीवाद।
> सामूहिक जीवन-विकास की साम्य योजना है अविवाद।।

पंत युगवाणी में आकर धरती पर उतर आये हैं। परिणामतः वे आकाशगामी दृष्टि रखने वालों को अच्छी दृष्टि से नहीं देखते हैं। वे यदाकदा उन्हें फटकारते हुए भी दिखाई देते हैं। वे कहते हैं कि गगन को ताकने से क्या होगा धरती को देखो, उसके रोम-रोम में सहज सौन्दर्य बिखरा हुआ है। कवि ने लिखा है—

> इस धरती के रोम रोम में
> भरी सहज सुन्दरता,
> कूड़ा करकट सब कुछ भू पर।
> लगता सार्थक सुन्दर।।

श्रमिक वर्ग के प्रति युगवाणी में सहानुभूति व्यक्त की गई है। श्रमिक ही लोक क्रान्ति के अग्रदूत हैं। अभिव्यंजना की दृष्टि से भी युगवाणी महत्त्वपूर्ण रचना है। डा० नगेन्द्र ने लिखा है—युगवाणी में कविता की टेकनीक में काफी नवीनता आ गई है। अंग्रेजी साहित्य में आजकल टेकनीक पर नये-नये प्रयोग हो रहे हैं युगवाणी में कवि का एक विशेष गुण है जो अंग्रेजी के बहुत से कवियों में नहीं है—वह है उसकी गम्भीर [illegible] प्रवृत्ति। वह किसी बात को केवल वैचित्र्य के लिए दूर तक घसीटना चाहता नहीं है।

स्नायुओ मे कवित्व का गाढा रस प्रवाहमान है, अग भरे हुए और यौवनघीन हैं—

है मास-पेशियो मे उसके दृढ कोमलता।
सयोग अवयवो मे अश्लथ उसके उरोज ।।
कृत्रिम रति की है नही हृदय मे आकुलता।
उद्दीप्त न करता उसे भाव-कल्पित मनोज ।।

वास्तव मे ग्राम्या की रचनाओ को तीन भागो मे बाटा जा सकता है—
१ ग्राम्य दर्शन २ ग्रामचिंतन ३ विविध ।

ग्राम्य दर्शन मे ग्रामो के स्त्री-पुरुष, बालक, वृद्ध, तरुण आदि का रूप वर्णन तथा उनके रीति-रिवाजो का चित्रण तथा प्रकृति का वर्णन मिलता है। ग्राम्यचिन्तन मे कवि ग्रामो की अवस्था पर सहानुभूतिपूर्ण चिन्तन करता है। विविध के अन्तर्गत ग्राम का अन्तर्बाह्य रूप ही नही है, अन्य विषयो का समावेश है। उदाहरण के लिए भारत माता, महात्माजी के प्रति, राष्ट्र गान, सौन्दर्य कला, अहिंसा व आधुनिका आदि है। 'ग्राम्या' मे ग्रामीण जीवन की तस्वीर है। देखिये तो सही कितना साफ सुथरा चित्र है—

यहा नही है चहल-पहल वैभव विस्मित जीवन की,
यहा डोलती वायु म्लान सौरभ मर्मर ले वन की।
आता मौन प्रभात अकेला सध्या भरी उदासी,
यहा घूमती दोपहरी मे स्वप्नो की छाया सी ।।

\+ +

यह तो मानव लोक नही रे, यह नरक अपरिचित,
यह भारत का ग्राम, सभ्यता सस्कृति से निर्वासित ।

\+ +

कीडो से रेंगते कौन ये ? बुद्धि प्राण नारी नर ?

\+ +

प्रकृति धाम यह, तृण-तृण कण-कण जहा प्रफुल्लित जीवित।
यहा अकेला मानव ही रे चिर विषण्ण जीवन्मृत ।।

'ग्राम्या' मे ही धोबी, चमार और कहारो के नृत्य का रूपाकन है जिसमे अवसाद की घनी छाया है। कवि की मौलिकता इस बात मे है कि उसने नवीन पथ का अनुसधान किया है और निम्नवर्गीय जीवो के लिए अपनी सहानुभूति के कुछ क्षण दिये हैं। डा० नगेन्द्र ने 'ग्राम्या' की कुछ त्रुटियो की ओर भी सकेत किया है। वे कहते हैं कि ग्राम्य जीवन के व्याख्याता के लिए एक सुदीर्घ परिचय की आवश्यकता है और पन्तजी की ग्राम्य परम्परा से कोई विशेष घनिष्ठता नही है। उन्होने जैसे नोट-बुक और पैंसिल की सहायता से उसका अध्ययन किया है। इस कारण उनकी कविता मे ग्राम्य जीवन विषयक त्रुटियो की कमी नही है। अनेक चित्रो मे अनिरजना है और है एकागिता। अतः हमे उनके ग्राम दर्शन को उसकी सीमा और शक्ति दोनो

के साथ देखना चाहिए।" यो कुछ आलोचको का कहना है—"रही डिब्बे मे बैठकर पति से हस-हसकर बात करने की अवस्था, जहा तक सम्भव है ग्रामो मे कोई पति पत्नी को लेने नही जाता है यदि वह गया भी तो कोई न कोई साथ मे रहता है, और कोई नही तो नाई ही सही ।" दूसरी ओर यह कहा जाता है कि कदाचित् अत्युक्ति नही होगी कि विश्व-साहित्य मे आज तक किसी कवि ने ग्राम्य जीवन का प्रगतिशील दृष्टिकोण से इतना विशद मार्मिक चित्रण नही किया—स्वय वर्ड्सवर्थ ने भी नही।"

यो ग्राम्या मे एक ओर तो प्रकृति की अगणित छविया हैं और दूसरी ओर रोमाटिक मूड मे पढी जाने वाली रचनाए भी हैं। देखिये तो सही ग्रामीण वातावरण का कितना सही चित्रण है। सौन्दर्य की गहरी रेखायें भी सर्वत्र दिखाई देती हैं। अभी भी उनमें सौन्दर्य की सूक्ष्म और स्थूल रेखायें मिलती हैं—

१ अरहर सनई की सोने की,
किकडिया है शोभाशाली
२ लो हरित धरा से झाक रही,
नीलम की कलि तीसी नीली
३ मरकत डिब्बे सा खुला ग्राम,
जिस पर नीलम-नभ आच्छादन,
निरुपम हिमान्त में स्निग्ध शात
निज शोभा से हरता जन-मन।

गगा, स्वीट पी, याद, गुलदावरी, नक्षत्र आदि कविताओ की बात ही दूसरी रही, उनके विषय ही सुन्दर हैं। "इनमे चित्रण और भावुकता की सूक्ष्मता ने मिलकर जो कवित्व की जाली काढी है वह सहज मनोरम है। चित्रण की दृष्टि से गगा, सध्या के बाद आदि कविताए पल्लव-गुंजन और युगात की कविताओ को मात करती हैं।"

व्यग्य की दृष्टि से भी ग्राम्या का महत्त्व है। उसमे साथ ही हास्य की झलक भी है। यही वह कृति है जहा पर आकर कवि पत हास्य और व्यग्य के मार्ग पर आ गये हैं, अन्यथा सौन्दर्य और स्वप्निल भावो के कवि को अवकाश ही कहा था ? ग्राम-वधू परिष्कृत हास्य का उदाहरण है। पत जी की सूक्ष्म दृष्टि हास्य को उद्बुद्ध करने मे बहुत सहायक हुई है—

लो अब गाडी चल दी भर-भर,
बतलाती धनि पति से हस कर,
सुस्थिर डिब्बे के नारी नर,
जाती ग्राम-वधू पति के घर।

डॉ० नगेन्द्र के शब्दो मे ग्राम्या का वातावरण हास्य की अपेक्षा व्यग्य (Irony) के अधिक अनुकूल है—क्योंकि हास्य का सौन्दर्य है उसकी निर्मलता एवम् निरुद्देश्यता जो प्रकृति की कविता मे सहज सभव नही है।

एक ओर कवि के मन मे दुख की मलीनता है, दूसरी ओर उसकी कृति के पीछे एक उद्देश्य है—अतएव व्यग्योक्ति ही जो क्रोध और करुणा की सान पर चढकर और भी नुकीली हो जाती है उससे ज्यादा काम आयी है। पत का व्यंग्य वाण शत्रु और मित्र दोनो पर ही पडता है। पहले मे क्रोध के विष मे बुझकर, दूसरे मे करुणा की टीस लेकर—

वह वर्ग नारियो सी न सुज्ञ, सस्कृत कृत्रिम।
रजित कपोल, भ्रू, अधर, अ ग सुरभित वासित।।

सध्योपरान्त लालाजी की यह चिन्तना देखिये—

दरिद्रता पापो की जननी,
मिटें जनो के पाप, ताप, भय
सुन्दर हो अधिवास, बसन तन,
पशु पर फिर मानव की हो जय।
व्यक्ति नही जग की परिपाटी,
दोषी जन के दुख क्लेश का,
जन का श्रम जन मे बट जाये,
प्रजा सुखी हो देश देश की।

किन्तु—

"टूट गया वह स्वप्न वणिक का,
आई जब बुढिया बेचारी,
आध पाव आटा लेने—
लो लाला ने फिर डण्डी मारी।

एक व्यग्योक्ति और देखिये—

घर मे विधवा रही पतोहू,
लक्ष्मी थी यद्यपि पतिघातिनि,
पकड मगाया कोतवाल ने,
डूब कुए मे मरी एक दिन।
खैर पैर की जूती जोरू,
एक न सही दूसरी आती!
पर जवान बेटे की सुधि कर,
साप लोटते, फटती छाती।

कही-कही पर तो व्यग्य बहुत ही चुटीला हो गया है। चमारो का उस्ताद करिगा बासुरी बजा-बजाकर फबतिया कस रहा है—

जमीदार पर फबती कसता,
ब्राम्हन ठाकुर पर है हसता,
बातो मे वक्रोक्ति, काकु औ,
श्लेष बोल जाता वह सस्ता,
कल-काटा को कह कलकत्ता।

'स्वीट पी' भी एक ऐसी रचना है जिसमे कवि लिपस्टिक लगाये हुए शहर की चटक मटकदार नारी का चित्र उतारता है—

शयन कक्ष, दर्शन गृह की शृंगार,
उपवन के यन्त्रो मे पोषित,
पुष्प-मात्र मे शोभित रक्षित।
कुम्हलाती जाती हो तुम निज शोभा ही के मार॥

× ×

मृदुल वलय के स्नेह स्पर्श से,
होता तन मे कपन,

× ×

ऊची डाली से तुम क्षण भर,
नही उतर सकती जन भू पर।
फूली रहती
भूली रहती
शोभा ही मारे।

ग्राम्या के सम्बध मे डॉ० नगेन्द्र जी का यह मत उदघृत किया जा सकता है—"ग्राम्या मे पन्त जी की कविता एक बार फिर जीवन से जगमग हो उठी है। उसको पढकर ऐसी धारणा होती है जैसे युगवाणी की प्रगतिगामी कविता पल्लव के रगो मे स्नान कर आई हो। पन्त जी अब तक अपनी हल्की मधुरता के कारण मन को मुग्ध करते थे ग्राम्या में थोडी कडवाहट भी मिल गई है और उसका स्वाद कसैला हो गया है। अतएव उसमे जीवन की चहल-पहल तो है परन्तु महान की शक्ति नहीं है। युगात से पूर्व उन्होंने जिस रम्य पथ का अनुसरण किया था वह पराग से आकीर्ण था इसलिए उनकी कविता को लघु-लघु चरणो से चलते देख हमे सुख होता था आज उन्होंने जन-जीवन की बीहड राह पकडी है जिसमे अनेक खाई-खड्ड और झाड-झखाड हैं। अत उन पर चलने के लिए चौडे डगो की आवश्यकता है। इसमे सुन्दर की अपेक्षा महान की उपासना श्रेयस्कर होगी। ग्राम्या मे ऐसी कविताए हैं।"

स्वर्ण-किरण और स्वर्ण धूलि—स्वर्ण किरण और स्वर्ण धूलि का युग पन्त के समक्ष नयी दृष्टि प्रसारित करता दिखाई देता है। परिस्थितियो की विपमता के कारण पंत जी ने अरविन्द के चरणो में आश्रय लिया है। इसे इन दोनों ही कृतियो म देखा जा सकता है। पन्त ने स्वय लिखा है-"अपनी नवीन अनुभूतियो के लिए जिन्हें मैं अपनी सृजन-चेतना का स्वप्न सचरण या काल्पनिक आरोहण समझता था मुझे किसी प्रकार के बौद्धिक तया आध्यात्मिक अवलम्बन की आवश्यकता थी। इन्ही दिनो मेरा परिचय श्री अरविन्द के भागवत जीवन से हो गया। उसके प्रथम खण्ड को पढते समय मुझे ऐसा लगा जैसे मेरे अस्पष्ट स्वप्न चितन को अत्यन्त सुस्पष्ट, सुगठित और पूर्ण दर्शन के रूप मे रख दिया गया है। स्वर्ण किरण और उसके बाद की रचनाओं मे यह प्रभाव देखा जा सकता है।"

कहने की आवश्यकता नही कि कवि ने इन दोनो काव्यो मे आन्तरिक और बाह्य दोनो ओर के जीवन को महत्व दिया है। कवि ने यहा समन्वय किया है। इस समन्वयवादी चेतना के निमित्त कवि अरविन्द दर्शन का ऋणी है। स्वर्ण किरण और स्वर्ण धूलि की कविताओ का विषय वैविध्य पूर्ण है। कुछ मे सामाजिक चेतना है और कुछ मे आत्मगत तथ्यो का निरूपण। ये कवितायें परिष्कृत मधुरस से अभिसिक्त हैं। कुछ कविताओ मे प्रकृतिपरक दृष्टिकोण मिलता है। यो सामान्यत अधिकाश कवितायें आध्यात्मिक है। ग्रंथि से पल्लव और पल्लव से गु जन, ज्योत्स्ना और युगात में पन्त जी क्रमश शरीर से मन और मन से आत्मा की ओर बढ रहे थे, बीच मे युगवाणी और ग्राम्या मे उनके दृष्टिकोण मे परिवर्तन हुआ। स्वर्ण किरण में आकर वे फिर नये सिरे से जीवन दर्शन का निर्माण करते हैं।

स्वर्ण किरण की रचनायें सर्वथा चेतना प्रधान हो गयी हैं। कवि को अनुभव ने बता दिया है कि वहिर्जगत ही सब कुछ नही है, अन्तर्जगत भी महत्त्वपूर्ण है। उन्होने सामाजिक जीवन से भी अन्तर्मन को महत् बतलाया है। वे मानते हैं कि मानव ने भौतिकता के पीछे चेतना की पुकार को अनसुना कर दिया है जो उचित नही है। वस्तुत पन्त ने अपने आध्यात्मिक मानववाद की व्याख्या सर्वोदय शीर्षक रचना मे की है—

भू -रचना का भूतिवाद युग,
हुआ विश्व इतिहास मे उदित,
सहिष्णुता सद्भाव शाति के,
हो गत सस्कृत धर्म समन्वित।
वृथा पूर्व पश्चिम का दिग्भ्रम,
मानवता को करे न खण्डित,
वहिर्नयन विज्ञान हो महत्,
अन्तर्दृष्टि ज्ञान से योगित।
एक निखिल धरणी का जीवन,
एक मनुजता का सघर्षण,
विपुल ज्ञान सग्रह भव पथ का,
विश्व क्षेत्र का करे उन्नयन।

कवि के शब्दो मे "जीवन वारिधि का उद्वेलन, 'भू के तट' किसी भी प्रकार नही रोक पाते अर्थात् कभी-कभी अन्तर्मन की पुकार इतनी दुर्निवार हो जाती है कि मनुष्य भौतिकता को छोड कर महाचेतन की ओर प्रधावित होने के लिए ललक उठता है। कभी कभी तो चेतना के लिए भौतिकता भार बन जाती है। स्वर्ण किरण की कविता अशोक वन का रूपक इसी अर्थ की स्वीकृति है। सीता चेतना है जो लंका की स्वर्ण-भौतिकता के बीच मुक्ति के लिए सिसक रही है। यह सिद्धान्तवादी लम्बी रचना है। कवि पत ने साम्यवादी चेतना के द्वार खटखटाये हैं। उन्होने पूर्व और पश्चिम का, अध्यात्म और भूत का, उर्ध्व विकास और समदिक् विकास का समन्वय किया है। समन्वय की इसी धरा पर आध्यात्मिक चेतना की भूमिका

प्रतिष्ठित है। कवि ने इसे अनेक कविताओं में प्रकारान्तर से वाणी दी है। पंत की दृष्टि में समन्वयवाद और अरविन्दवाद में विशेष अन्तर नहीं है। वे स्वयं इसे स्वीकार करते हैं—आदर्श और वस्तुवादी दृष्टिकोणों में केवल धरातल का भेद है और ये धरातल आपस में अविच्छिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। × × जिस सत्य को वृहत् स्थूल धरातल पर क्षुधा, काम कहते हैं, उसी को सूक्ष्म धरातल पर सत्य, शिव और सुन्दर भी। अतः हम इसे अच्छी तरह समझ लें कि ये दोनों धरातल बाहर से भिन्न होने पर भी तत्वतः अभिन्न तथा एक दूसरे के पूरक हैं। × × इसलिए भविष्य में हम जिस मानवता अथवा लोक-संस्कृति का निर्माण करना चाहते हैं, उसके लिए हमें बाहर-भीतर दोनों ओर से प्रयत्न करना चाहिये, सूक्ष्म और स्थूल दोनों ही शक्तियों से काम लेना चाहिये।"

नर-नारी की समस्या पर भी इन रचनाओं में विचार किया गया है। पंत की दृष्टि में नर नारी को हाथ में हाथ डाल कर आगे बढ़ना चाहिये—एक की अवनति दूसरे की उन्नति नहीं हो सकती है। नारी के अभाव में समाज सूना हो जायेगा, किन्तु वहाँ भी संतुलन व समन्वय की परमावश्यकता है—

रति और विरति के पुलिनों में बहती जीवन-रस की धारा,
रति से रस लोगे और विरति से रस का मूल्य चुकाओगे,
नारी में फिर साकार हो रही नव्य चेतना जीवन की,
तुम त्याग भोग को सृजन भावना में फिर नवल डुबाओगे।

प्रेम और काम दोनों की स्थिति अलग-अलग है। कामी प्रेमी नहीं हो सकता है और कामी प्रेमी नहीं हो सकता है, इसमें भी संदेह नहीं। स्वर्णकिरण में इसी तथ्य की उद्घाटक कविता लिखी गई है। 'देह' और 'स्नेह' दो सर्वथा भिन्न वस्तुयें हैं। इसी को प्रमाणित करने के लिए स्वर्ण धूलि में 'पतिता' नामक कविता का सृजन हुआ है। बताया गया है कि इसमें कुछ क्रूर और लुटेरे आकर वहू को कलंकित कर जाते हैं। ऐसी कलंकिता और पतिता को कोई कैसे स्वीकृति दे सकता है। कवि ने इतने पर भी उसके पति द्वारा उसका आलिंगन यह कह कर करवा दिया है कि—

मन से होते मनुज कलंकित
रज की देह सदा से कलुषित,
प्रेम पतित पावन है तुमको
रहने दूँगा मैं न कलंकित।

एक अन्य स्थल पर भी यही बात दुहराई गई है। कवि ने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा है—

"पति पत्नि का सदाचार भी
नहीं मात्र परिणय से पावन,
काम निरत यदि दंपति जीवन
भोग-मात्र का परिणय साधन।
पंकिल जीवन में पंकज सी
शोभित आप देह से ऊपर,

नही सत्य जो आप हृदय से
शेप-शून्य जग का आडम्बर ।"

कहने की आवश्यकता नही कि इन कृतियो की सभी रचनाये चिन्तन से प्रेरित है और इनमे प्राकृतिक, आत्मगत, विनयपरक, व्यक्तिपरक और सामाजिक चेतना से अनुप्राणित रचनायें हैं। कवि का समन्वयवादी दृष्टिकोण इनमे प्रतिफलित है।

युगपथ और उत्तरा :—इन दोनो मे चेतना प्रधान है। "युग पथ दो भागो मे विभक्त है। पहला भाग युगात है जो प्रथम बार १६३६ मे स्वतन्त्र पुस्तक के रूप मे प्रकाशित हुआ था जिसमे ३४ से लेकर ३६ तक की मेरी तैंतीस छोटी बडी रचनायें सकलित है। दूसरा भाग युगान्तर है।" सामान्यत कवि युगात मे ही अपनी भावना की इतिश्री कर देता है और इस प्रकार 'उत्तरा' मे आकर पूर्णत चिन्तन प्रधान बन गया है। इसकी कुछ कवितायें प्रतिकात्मक, कुछ धरती तथा युग जीवन सम्बन्धी, कुछ प्रकृति तथा वियोग शृङ्गार-विषयक कवितायें और कुछ प्रार्थना गीत सगृहीत हैं। इनमे जो भाव बिखरे हुए हैं वे भी अन्तर्जगत और बहिर्जगत के समन्वय से दूर नही हैं—

बदल रहा अब स्थूल धरातल
परिणत होता सूक्ष्म मनस्तल,
विस्तृत होता बहिर्जगत अब
विकसित अन्तर्जीवन अभिमत।

इस समन्वय के बाद ही तो नव मानवता का अरुणोदय सभव है। उत्तरा की अधिकाश कविताओ मे चिन्तन प्रधान आध्यात्मवाद है। डा० विजयेन्द्र स्नातक ने उत्तरा के आध्यात्मवाद के सम्बन्ध मे बडे सुलझे हुए विचार प्रस्तुत किये हैं—'उत्तरा का अध्यात्म तत्व न तो किसी शास्त्रीय दार्शनिक सिद्धान्त का प्रत्यक्ष मे पोषक है और न वह प्रच्छन्न मे किसी साम्प्रदायिक धार्मिकता मे विश्वास रखता है। उसका विषय मानवात्मा के विकास से सम्बद्ध होने पर भी आत्मा की औपनिषदिक व्याख्या करना नही है। स्वस्थ मानव विकास के सिद्धान्त को दृष्टि मे रख कर कोई भी जागरूक साहित्यिक आज ऐसे सूक्ष्म पारलौकिक विषय वर्णन से परितुष्ट नही हो सकता जो इस लोक की स्थूल और प्रकृत समस्याओ की सर्वथा अवहेलना करके हमे उस लोक की झाकी दिखावे जो हमारी भावना या अनुभूति मे कम और कल्पना मे अधिक रहता है। युग सस्कृति और युग चेतना की उपेक्षा कर के कोई भी कलाकार अध्यात्म पथ को प्रशस्त नही कर सकता है।"

पत उत्तरा के अन्तर्गत युग जीवन की भूमि पर ही कदम रखते हुए आगे बढ गये हैं। इसमें पत जी ने प्राकृत अध्यात्म को गुम्फित किया है। उत्तरा बहिर्जगत के विस्तार और अन्तर्जीवन के विकास की भावनाओं से युक्त है। जडवादी भौतिकता की अधिकता ग्राह्य नही है क्योंकि उसके निराकरण पर ही तो चेतना का स्वस्थ विकास संभव है :

भौतिक द्रव्यों की घनता में चेतनाभार लगता दुवह
भू जीवन का आलोक ज्वार युग मन के पुलिनों को दु सह,
चेतना पिंड रे भूगोलक युग-युग के मानस से आवृत
फिर सप्त स्वर्ण सा निखर रहा वह मानवीय वन सुरदीपित ।

आध्यात्मिक मानवता के विकास के क्षणो में कवि ने मानववाद, आदर्शवाद, आस्तिकवाद, अतीत प्रेम, रूढि और अन्धविश्वासो के प्रति विद्रोह तथा प्रकृति के रमणीय रूपो की झाकी प्रस्तुत की है । इतने पर भी इसकी मूल चेतना आध्यात्मिक मानवतावादी है । मानवता जाति-पाति और भेद-भाव की विरोधिनी है । मानववाद के लिए ही पत ने विविध कविताओ मे ऐसी चेतना का प्रकाश विकीर्ण किया है जो लौकिक और व्यावहारिक है । डा० स्नातक के शब्दो मे कहा जा सकता ,,—उत्तरा को आज ही नही, आज से शताब्दियो बाद भी यदि कोई पढेगा तो उसे लगेगा कि यह कवि अपने काव्य-कौशल और जीवन दर्शन के आधार पर मनोरम काव्य सृष्टि ही नही कर रहा था वरन् वह मानव जाति के पुनरुत्थान के लिए युग निर्माण भी कर रहा था । उसकी सरस वाणी मानव को स्थूल जगत के सम्बन्धो से ऊपर उठा कर अन्त साधना मे भी लीन कर रही थी । विकासोन्मुख काव्य के प्रणेता ने वर्ग सघर्ष और सासारिक भोग तक ही अपने को सीमित नही रखा—वरन् इन्द्रियो की विवशता मे मिटने वाले मर्त्यों को उसमे सजीवनी शक्ति का आस्वादन करा कर अमरत्व प्रदान किया । युग जीवन की गतिविधि को उसने उन उपयुक्त स्थलो पर घुमाव दिया जहा वह विनाश के विकराल मुह मे समाई जा रही थी । उसने मानवता को नाश के स्थान पर निर्माण का, जड के स्थान पर चेतन का, विपमता के स्थान पर समता का, अनैक्य के स्थान पर ऐक्य का, घृणा के स्थान पर प्रेम का और भूत-शक्ति के स्थान पर आत्मशक्ति के पुनरुत्थान का सदेश दिया ।

अतिमा:—इसकी अनेक कविताओ को तो स्वर्णधूलि और स्वर्ण किरण के सदर्भ में पढा जा सकता है । हा, कुछेक कविताओ का विषय नवीन और स्वतत्र है । प्रतिकात्मक, चिन्तनात्मक, प्राकृतिक सौन्दर्य विषयक और प्रार्थना परक कविताओ का यह सग्रह मान्य इसलिए है कि इसमे कवि की मूलचेतना का ही सही विस्तार है । चित्र उतारने की कला का पूर्ण निखार हमे इस काव्य में मिलता है । एक सुन्दर चित्र देखिये—

खिडकी की चौखट को कुछ लम्बी तिरछी कर
थी चमक रही टूटे दर्पण के टुकडे सी
पिघली चादी के थक्के सी छलकी चौडी
जाजिन पर थी बन गई तलैया मोती की
जिसमे स्वप्नों की ज्वालाए लहराती थी
दूधिया भावना मे उफान उठ आया हो ।

इस सकलन की सर्वोत्तम रचना है—'आ धरती कितना देती है' । एक शब्द मे अतिमा का कथ्य स्वर्ण किरण और स्वर्णधूलि का ही विस्तार है । भाषा मे चिकनाहट है और रेखाओं से चित्र उतारने की क्षमता ।

वाणी —सन् १९५८ मे प्रकाशित 'वाणी' की विषय वस्तु वही हे जो इससे पूर्व की आध्यात्मिक चेतना-सयुक्त रचनाओ की है। 'वाणी' कवि की विकसित आध्यात्मिक चेतना तथा प्रकृति के प्रति नवीन दृष्टिकोण को वाणी देने के लिए ही प्रकाशित हुई है। यह कवि के नये रूप को प्रस्तुत करता है। कवि पत का प्रकृति-दर्शन वहुत पहले का ही बना है और इस दर्शन में उसने यहा भी कोई हेरफेर नही किया है। वाणी मे कवि की साधना मन के सव गुह्य प्राण प्रदेश खुल जाने की है। यही कारण है कि इसमे कवि की सूक्ष्म जीवन-चेतना को अधिक मुखरित होने का सुयोग मिला है, परन्तु उसने मानवपरक दृष्टिकोण को भुला नही दिया है। कवि ने अन्तर और वाह्य दोनो दृष्टियो को वाहर रखा है, वह युग प्रकाश को फैलाना चाहता है, जन-जीवन जड चेतन की भाषा का उसे ज्ञान है। वाणी मे कवि अत्यन्त समन्वयवादी लगता है, इसे वह युग की आवश्यकता समझता है।"

[साहित्य सदेश से उदधृत]

कला और बूढ़ा चाँद की कविताओ के पढने से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि कवि नयी जमीन पर उतर आया है और उतर कर उसी चेतना को प्रसारित कर रहा है जिसे स्वर्ण-धूलि के वाद की रचनाओ मे व्यक्त किया गया है। शिल्प की दृष्टि से यह कृति अनमोल है। इसमे भाषा और शैली के नये प्रयोग देखने को मिलते हैं। छन्दगत नवीनता, कथ्यगत नवलता और शैलीगत मौलिकता के कारण यह कृति विशेष प्रशसनीय दिखाई देती है। इतने पर भी चिन्तन का एक दूसरा पक्ष भी दिखाई देता है। इसमे कही-कही प्रयोगातिशयता और शिल्प की विशिष्ट पक्षधरता दिखाई देती है। इसमे कोई सदेह नही कि कवि की कलाकारी कही तो विकृति का नमूना पेश करती है कविताओ मे गद्य का आभास देने वाली भी कुछेक कविताए हैं। कुल मिला कर कला और बूढा चाद का कथ्य वही है, किन्तु उसके प्रतीक, विम्व और शब्दो के जडाव-चढाव नये दिखाई देते है। कुछेक सफल विम्व इस कृति मे मिल जाते हैं—

> कहो दिशायें,
> उषा के सुनहले पावक मे,
> लिपटी रहे,
> दिवस का,
> रूपहला वालक
> जन्म हीन ले
> कहो,
> शुभ्र कुंई-से उरोज खोल
> दुग्ध-स्नात चादनी
> चाद के कटोरे मे
> सुधा पीती रहे—

लोकायतन —लोकायतन लोकचेतना का महा काव्य है। इसमे पत की सम्पूर्ण जीवन की साधना के फल को देखा जा सकता है। सन् ६४ में

प्रकाशित यह कृति अनेक दृष्टियो से नवीनता का दावा कर सकती है—शैली और कथ्य दोनो मे ही अपने ढग की नवीनता है। वर्णन शैली और भाषा के नये प्रयोग तो इसमे देखते ही बनते हैं। कथ्य मे समन्वयवादी स्पर्श है। कही कही तो कवि गाधीवादी लगता है और कही-कही वह अरविन्दवादी बन गया है। ये दोनो ही दर्शन ऐसे हैं जो समन्वयवाद की भूमिका तैयार करते हैं। सामान्यत यह काव्य मानवतावादी विचारो का पोषक है। कहने की आवश्यकता नही कि लोकायतन में 'कवि उच्च बिन्दु पर खडा है। वही से वह युग-युग से स्पदित भारतीय मानस का मथन करता हुआ, वर्तमान युग की विघटित परिस्थितियो के यथार्थ चित्रण और विश्लेषण के साथ ही, भावी युगो के अधिमानस के पूर्ण विकसित रूप की मागलिक झाकी प्रस्तुत करता है।"

गाधीवाद और अरविन्दवाद ने मिल-जुलकर एक दर्शन की प्रतिष्ठापना की है और यह दर्शन है समन्वयवादी। लोकायतन की कथा इसी समन्वयवादी धुरी पर घूमती है। इस महाकाव्य मे जो जीवन दर्शन प्रतिपादित हुआ है वह विस्तृति और गहराई दोनो ही दृष्टियो से महत्व का अधिकारी है। लगता है कवि ने कई युगो के चिन्तन को रूपाकार दिया है। तभी तो परस्पर विरोधी लगने वाले सभी दार्शनिक, सास्कृतिक और वैज्ञानिक मतवाद घुल मिलकर एक हो गये हैं। युग जीवन के सदर्भ मे लिखी गई यह कृति न तो भविष्य का ओर ही मुडती है और न वर्तमान व अतीत से ही कटी हुई है।

लोकायतन का शिल्प नया है, उसमे प्रयोगों की नवीनता स्पष्ट दिखाई देती है। कही-कही तो बडे अच्छे प्रयोग मिलते हैं—

आस-पास थी खडी सुहाती।
खडी अगूठे के बल अरहर ॥

प्रकृति प्रेमी पत ने बीच की कृतियो मे भले ही प्रकृति से मुख मोड लिया हो किन्तु वे लोकायतन मे आकर फिर से अपने प्रकृति प्रेम का परिचय देते हैं। प्रकृति की अनन्त कोमल और मधुर छवियो के बीच लोकायतन की कथा आगे बढती दिखाई देती है।

निष्कर्षत यह कहा जा सकता है कि पत अपनी विभिन्न कृतियो के माध्यम से अपनी विकसित चेतना का परिचय देते हैं। उसमे वह गौरव है जो युगीन सदर्भों मे लिखी गई कृतियो मे होता है। पत सदैव समय के साथ चलते रहे हैं, उन्हें कभी भी यह प्रिय नहीं रहा कि वे प्रगति की दौड मे पीछे छूट जावें। यही है पत की कृतियों का सही मूल्याकन और विवेचन। इन से पत काव्य के विकास की रेखा को भी समझा जा सकता है।

छायावाद के चतुर शिल्पी पंत

आधुनिक काव्यधाराओ में छायावादी काव्यधारा पर्याप्त चर्चित रही है। छायावाद ने चार प्रतिभाओं को जन्म दिया—पन्त, प्रसाद, निराला

और महादेवी । ये चारो छायावाद के दृढ स्तभो मे गिने जाते हैं। प्रसाद ने छायावाद की सौन्दर्य चेतना को विकसित किया तो पन्त ने कोमल कल्पना की भाषा मे कविता का शृ गार किया। निराला छायावाद के कोमल और परुष तत्वो के सम्मिलन मे लगे रहे। महादेवी ने वेदना को विविध पक्षों के साथ कविता की वाणी मे चित्रित किया। पन्त छायावाद के चतुर शिल्पी हैं। उन्होने काव्य के अन्तर्गत शिल्पविधि के अ गो को सजाया और सवारा है।

पन्त ने छायावादी चेतना के साथ काव्य क्षितिज पर पदार्पण किया है। 'उनकी पृष्ठभूमि की साहित्यिक स्थिति छायावाद की थी और व्यक्तिगत रूप से भी उनका रूप छोटे से चचल भावुक किशोर का रूप जिसके हृदय मे प्रकृति अपनी मीठी, स्वप्नो से भरी चुप्पी अ कित कर चुकी थी और जिसके मन मे वर्फ की ऊ ची चमकीली चोटिया रहस्य भरे शिखरों की तरह उठने लगी थी, जिन पर खडा हुआ नीला आकाश रेशमी चदोवे की तरह आखो के सामने फहराया करता था।"

कभी पन्त छायावादी रहे और कभी प्रगतिवादी। छायावादी पन्त को उनकी प्रारम्भिक कृतियो मे देखा जा सकता है। यहा तो हम केवल यह कहना चाहते है कि पन्त ने छायावाद के साथ क्या किया और उनका व्यक्तित्व छायावादी रेशम से किस प्रकार अलग होता गया।

सबसे पहले तो यह मानना चाहिए कि पन्त ने छायावाद का पर्याप्त विकास किया है। उन्होने छायावादी भावना को हृदयगम किया है और उसी के आधार पर अपने काव्य की सर्जना की है। पन्त का छायावादी प्रदेय महत्वपूर्ण है। कोमल कल्पना, प्रकृति का मानवीकरण और आत्माभिव्यक्ति की दृष्टि से पन्त औरो से आगे हैं। उनकी रचनाओ मे हम कोमल कल्पना के दर्शन करते हैं। 'पल्लव' और 'वीणा' की कविताए इस दृष्टि से पर्याप्त गौरव की अधिकारिणी हैं।

छायावाद की प्रमुख विशेषताओ में सौन्दर्य प्रियता को भी नही भुलाया जा सकता है। कारण छायावाद की मूल चेतना ही सौन्दर्यवादी है। छायावादी कवि ने जीवन, जगत, प्रकृति सभी मे व्याप्त सौन्दर्य को देखा और परखा है। पत के दर्शन और चिन्तन का तो महल ही सौन्दर्य की भूमि मे खडा है। डा० नगेन्द्र के शब्दो मे उनकी सुमन चयन की प्रति उनके सौन्दर्य प्रिय हृदय को ही अभिव्यक्त करती है। उन्होने याचना मे धूलि, सुरभि, मधुरस, 'हिमकण' की ही याचना की है—

नवनव सुमनो से चुन चुनकर।
धूली सुरभि मधुरस हिमकण,
मेरे उर की मृदु कलिका मे
भरदे करदे विकसित जीवन।

पत की सौन्दर्य प्रिय भावनाओ ने प्रकृति, मानव और जीवन सभी में व्याप्त सौन्दर्य के दर्शन किये हैं। छायावाद मे सौन्दर्य के ही साथ प्रेम और

शृंगार जुड़े हुए है। रीति कालीन शृंगारिकता का उदात्तीकरण छायावाद मे मिलता है। पंत के सौन्दर्य चित्रो मे भी अस्पष्टता और वायवीयता मिलती है। आसू की बालिका आदि रचनाए इसका प्रमाण हैं। वेदना का वर्णन और उसका सही रूपांकन भी पंत ने किया है। वीणा और ग्रंथि में वेदना का वर्णन किया गया है—

वेदना कैसा करुण उद्‌गार है।
वेदना ही है अखिल ब्रह्माण्ड यह,
तुहिन मे, तृण में, उपल मे लहर में,
तारको मे व्योम मे है वेदना।
वेदना कितना विशद यह रूप है
यह अंधेरे हृदय की दीपक शिखा

वेदना छायावादी कविता का प्रमुख स्वर है तभी पंतजी सृष्टि के कण-कण मे चरम वेदना का अस्तित्व मानते हैं—

वेदना ही के सुरीले हाथ मे
है बना यह विश्व इसका परम पद
वेदना का ही मनोहर रूप है।

आत्माभिव्यक्ति अथवा वैयक्तिकता भी प्रबल रूप पंत काव्य मे मिलता है। दिनकर ने लिखा है कि छायावाद हिन्दी मे उद्दाम वैयक्तिकता का पहला विस्फोट था, वह साहित्यिक शैलियो का ही नही, अपितु समग्र जीवन की परपराओ, रूढियो, शास्त्र निर्धारित मर्यादाओ और मनुष्य की चिन्ता को सीमित करने वाली तमाम परिपाटियों के विरुद्ध जन्मे हुए एक व्यापक परिणाम था।

प्रकृति का मानवीकरण पंत की रचनाओ मे विशेष महत्व के साथ मिलता है। उनके द्वारा प्रस्तुत किये गये चांदनी, सध्या और छाया के मानवीकरण सर्वविदित हैं। 'कहो कौन तुम दमयती सी इस तरु के नीचे सोई' कहने वाले कवि की ही ये पंक्तियाँ देखिये जिसमे चाँदनी का मानवीकरण है—

नीले नभ के शतदल पर।
बैठी वह शारद हासिन ॥
मृदु करतल पर शशिमुख धर।
अनिमिष नीरव एकाकिनि ॥

छायावाद जिस नवीन अभिव्यंजना को लेकर सामने आया था वह पंत की कविताओ में सर्वाधिक मात्रा मे उत्कृष्ट बिन्दु पर खडी दिखाई देती है। पंत मे छायावाद की सभी शैलीगत विशेषताए मिलती हैं। प्रतीक, भाषा और शब्द शक्तियो के प्रयोगो की दृष्टि से पंत छायावाद के चतुर शिल्पी ठहरते हैं। भाषा के क्षेत्र मे जो नवीनता दिखाई दी, वह भी पंत जैसे शिल्पी के द्वारा सर्वाधिक मात्रा मे दिखाई पडी। उन्होने लिखा है कि कविता के लिए चित्र भाषा की आवश्यकता पडती है। उसके शब्द सस्वर हो, जो

बोलते हो सेब की तरह जिनके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पड़े। पंत की कलाकारिता के लिए शांति प्रिय द्विवेदी के ये शब्द देखिये—"पंत ने शोभा सुषमाशाली वनमाली की तरह काव्य कला की रचना की है। छवि की अंगुलियों से किरणों की एरियों मे स्वप्नो की सुमनावलियां गूंथ कर उन्होने कविता का शृंगार किया है। उनके शब्द, भाव और छन्द मे जीवन-शिल्पी की चतुरता है और उनकी कला अनुपमेय है। उसमे व्रजभाषा की सुघरता और खडी बोली की नागरिकता का अपूर्व समावेश है।" स्पष्ट ही पंत छायावाद के चतुर शिल्पी है। छायावाद के संदर्भ से उनकी कृतियो का मूल्यांकन आगे सविस्तार किया जायेगा-यहां इतना ही पर्याप्त है।

छायावाद: एक परिचय

सामान्य परिचय—हिन्दी साहित्य मे द्विवेदी युग के पश्चात् छायावादी कविता की चर्चा की जाती है। यह कविता अनेक दृष्टियो से महत्वपूर्ण है। इसकी मूल चेतना सौन्दर्य और प्रेम की चेतना है। शैली के क्षेत्र में इसका मूल स्वर मूर्तीकरण और सूक्ष्म अभिव्यंजना का है। इस काल के आरंभ मे ही हमे कोमल-कल्पना का ताना-बाना बिखरा हुआ मिलता है। छायावाद रेशम का काव्य है और इसके काव्य-पट मे जो धागे लगे हुए है वे सूक्ष्म कल्पना तंतुओ का काम करते है। इसका रंग जीवन के परिवर्तित परिवेश का रोमांटिक रंग है।

छायावादी कविता को दो महायुद्धो के बीच की कविता का नाम दिया जाता है। जो लोग इस पर महायुद्ध का व्यापक प्रभाव देखते हैं उनको सन्तोष-जनक उत्तर देते हुए डा० प्रेमशंकर ने लिखा है कि प्रथम महायुद्ध मे भारत ने वह सक्रिय भाग नही लिया जो यूरोप के कई देशो को लेना पडा। महा-युद्ध की जो विभीषिका होती है उसका प्रत्यक्ष रूप हमने नही देखा। उसकी कथाएं हम तक पहुँचती रही हैं। युद्ध के कारण सम्पूर्ण विश्व मे जो आर्थिक संकट आ गये थे उनका प्रभाव पडना तो अनिवार्य था ही। युद्ध को हमने उस रूप मे कभी नही जाना जिस रूप में यूरोप विशेषतया पश्चिमी यूरोप ने जाना था। छायावादी काव्य पर जो युद्ध का प्रभाव है वह युद्धोत्तर उत्पन्न होने वाली समस्याओ का प्रभाव कहा जा सकता है। युद्ध की विभी-षिका के परिणामस्वरूप हमारी आस्था को जो क्षति पहुंची थी उसका भी पूर्ण प्रस्फुटन इस काव्य मे इसलिए नही हो पाया, क्योकि हमने बहुत दूर से युद्ध के स्वर सुने थे।

छायावादी काव्य को सौन्दर्यवादी कलाकारो की प्रतिभा का प्रतिकाल कहना ही समीचीन जान पडता है। इस काल में सौन्दयवादी चेतना के प्राबल्य का कारण द्विवेदी युग की बढी हुई नैतिकता और बौद्धिकता थी। महादेवी वर्मा ने ठीक ही लिखा है कि छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्बन्ध मे प्राण डाल दिये, जो प्राचीन काल से बिम्ब प्रतिबिम्ब के रूप मे चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को अपने दुख में

प्रकृति घटकूप आदि मे भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपों में प्रकट हो महाप्राण बन गयी, अत अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जलकण और पृथ्वी के ओस बिन्दुओ का एक ही कारण एक ही मूल्य है।

छायावाद के प्रारम्भ कर्ताओ ने यह बात भली भाति जान ली थी कि काव्य के वाह्य पक्ष पर पर्याप्त मात्रा मे लिखा जा चुका है। अत अब उन सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्वों की खोज मे कवि को अपनी साधना लगा देनी चाहिए जो अभी तक अभिव्यक्त नही हुए हैं। परिणामस्वरूप कवि का हृदय सम्पूर्ण बधनो को एक झटके के साथ तोडकर स्वच्छन्द अभिव्यक्ति अथवा आत्मदर्शन के लिए विद्रोह कर उठा।

प्रारभिक स्थिति—छायावाद जिस रूप मे सामने आया वह रूप उसके भविष्य के रूप का निर्माता रहा है। स्वच्छदतावाद और छायावाद अग्रेजी कविता मे Romanticism १७९८ के लगभग प्रारम्भ हुआ था। वर्ड्सवर्थ, कालरिज के लिरिकल बैलेड्स नामक काव्य सग्रह के प्रकाशन मे रोमाटिक आन्दोलन का सूत्रपात हुआ था। लिरिकल बैलेड्स की भूमिका मे वर्डस्वर्थ ने कविता की जो परिभाषा की थी वह नये अर्थ की वाहिका थी। वर्ड्सवर्थ ने कहा—Poetry is a spontaneous overflow of the powerfull feelings रोमाटिक कविता के अपने कुछ विशेष तत्व हैं जो शास्त्रीय कविता से उसे अलग कर देते हैं। इन तत्वो मे सबसे पहला सौन्दर्य सम्बन्धी दृष्टि-कोण है। इस धारा के कवियो ने काव्य के रूप तत्व के प्रति उपेक्षा बरती। रोमाटिक कवि काव्य के वस्तु तत्व के प्रति अधिक जागरूक होता है और इसीलिए वह उसके रूप तत्व को शास्त्रीय नियमो से जकडना अनुचित समझता है। इसके विपरीत शास्त्रीय धारा का अनुयायी कवि काव्य को छन्दो, मात्राओ आदि से सुसज्जित करना अपना प्रथम धर्म मानता है। इन रोमाटिक कवियो ने काल्पनिक अनुभूतियों से मुक्त होकर अपनी वैयक्तिकता को मानव जीवन और प्रकृति की समस्त स्थितियो मे आरोपित कर दिया। रोमाटिक-वाद का सर्व प्रमुख तत्व उस पर छाया अवसाद है जिसे रोमाटिक मैलकली की सज्ञा दी जा सकती है। हिन्दी मे जिस समय छायावाद का आविर्भाव हुआ था उससे काफी पूर्व रोमाटिकवाद अग्रेजी मे प्रवेश कर चुका था। हिन्दी मे आने से पहले तो रोमाटिकवाद से आधुनिक बगला साहित्य प्रभावित हुआ। रविन्द्रनाथ और देवेन्द्रनाथ सेन आदि की कविता मे रोमाटिक धारा के तत्व देखे जा सकते हैं। अत यह बात हिन्दी के छायावाद के सम्बन्ध मे भी कही जा सकती है कि छायावाद ने जो कुछ भी ग्रहण किया वह रोमाटिक काव्यधारा का ही प्रभाव है। भले ही उसने माध्यम स्वरूप थोडा ही आधार बगला कविता का स्वीकार किया हो, परन्तु छायावाद मे जो भी तत्व पाये जाते है उन सबका सम्बन्ध अग्रेजी की रोमाटिक काव्यधारा से है।

पृष्ठभूमि—हिन्दी की छायावादी कविता का उद्भव तत्कालीन राज-नैतिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक परिस्थितियो के परिणामस्वरूप हुआ। यह कविता जिस रूप को लेकर अवतरित हुई उसके निर्माण मे इन-

परिस्थितियो का विशेष हाथ रहा। वस्तुत यह कविता दो महायुद्धो के बीच की कविता है। राजनैतिक दृष्टि से जो परिस्थितिया उस समय थी वे छायावाद को उकसाने मे पूर्णत सक्षम थी। कुछ विद्वानो की मान्यता है कि छायावादी काव्य मे जो वेदना और निराशा का तत्व है वह प्रथम महायुद्ध से सम्बन्ध रखता है। इतना ही नही इन विद्वानो ने यह भी कहा है कि अग्रेजी शासन का अपने वचनो को पूरा न करना रोलट एक्ट तथा १९१९ का अवज्ञा आन्दोलन भी निराशा और वेदना के प्रेरक तत्व रहे हैं।

विद्वानो का यह मत उचित नही जान पडता है। कारण प्रथम महायुद्ध के बाद तो यहा के सेनानियो मे लक्ष्य के प्रति अटूट आस्था और अदम्य साहस दिखाई देता है। छायावादी कवियो का राजनैतिक आन्दोलन के प्रति अपेक्षाकृत उदासीनता का कारण वह व्यक्तिवाद था जो औद्योगिक वातावरण से प्रेरणा ले रहा था। डॉ० शिवदानसिंह चौहान के शब्दो मे कह सकते हैं कि- "इसलिए इस बात को स्पष्ट करने की जरूरत है कि यदि हमारा देश पराधीन न होता तो हमारे यहा राष्ट्रीय आन्दोलन की आवश्यकता न रही होती तो भी आधुनिक औद्योगिक समाज का विकास होने ही काव्य मे स्वच्छदतावादी भावना और व्यक्तिवाद की प्रवृति मुखरित हो उठी। इसलिए छायावादी कविता राष्ट्रीय आन्दोलन या जागृति का सीधा परिणाम नही है, वरन् पाश्चात्य अर्थव्यवस्था और सस्कृति के सम्पर्क मे आने के परिणामस्वरूप हमारे देश और समाज मे जो बाहरी और भीतरी प्रत्यक्ष और परोक्ष परिवर्तन हो रहे थे, उन्होंने जिस तरह सामूहिक व्यवहार और कर्म के क्षेत्र मे राष्ट्रीय एकता की भावना जगाई और राष्ट्रीय सघर्ष को प्रेरणा दी, उसी तरह सस्कृति और पाश्चात्य काव्य साहित्य के प्रभावो को ग्रहण करती हुई छायावादी कविता राष्ट्रीय जागरण के कोण मे पनपी और फली फूली है।"

धार्मिक पृष्ठभूमि—छायावादी काव्य की धार्मिक पृष्ठभूमि भी बिल्कुल स्पष्ट है। छायावादी काव्य रामकृष्ण परमहस, विवेकानद, गाधी, टैगोर और अरविन्द के दर्शनो की छाया मे पला और बढा है। इसमे जो दार्शनिक तत्त्व मिलते हैं वे प्राचीन अद्वैतवाद और सर्वात्मवाद के तत्त्वो से प्रभावित हैं। महादेवी वर्मा ने ठीक ही लिखा है कि छायावाद का कवि धर्म के अध्यात्म से अधिक दर्शन के ब्रह्म की ऋणी है जो मूर्त और अमूर्त विश्व को मिलाकर पूर्णता पाता है। बुद्धि के सूक्ष्म धरातल पर कवि ने जीवन की अखण्डता का भावन किया। हृदय की भावभूमि पर उसने प्रकृति मे बिखरी सौन्दर्य सत्ता की रहस्यमयी अनुभूति की और दोनो के साथ स्वानुभूत सुख-दुखो को मिला कर एक ऐसी काव्य सृष्टि उपस्थित कर दी जो प्रकृतिवाद, हृदयवाद, अध्यात्मवाद, रहस्यवाद और छायावाद आदि अनेक नामो का भार सभाल सकी।

धार्मिक और राजनैतिक परिवर्तनों की प्रक्रिया ने जहां विचारो मे क्राति ला दी वही सामाजिक परिस्थितियो ने तो छायावादी कविता को सर्वाधिक

प्रोत्साहन दिया। भारतीय समाज में पूजनीय सभ्यता और संस्कृति पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के सम्पर्क में आने के कारण अपना चोला बदल बैठी। इस बदलाव में जहाँ सामाजिक क्रान्ति को जन्म मिला वहीं विचारों में नई भंगिमाएं और भावनाओं में नूतन उन्मेष किया। राष्ट्रीय एकता की वृद्धि के साथ साथ स्वच्छंद प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिला। परिणामत व्यक्तिवाद का प्रचार बढ़ा। स्वच्छंतावादी नवीन पीढ़ी धार्मिक व सामाजिक रूढ़ियों से उद्भूत अनन्त अंधविश्वासों और मिथ्या आडम्बरों को समाप्त करने की बात सोचने लगी किन्तु इन रूढ़ियों का तोड़ना आसान काम न था। अत न तो ये रूढ़ियाँ पूरी तरह रह ही सकीं और न टूट ही सकीं। इन सबका अर्थ यह हुआ कि कल्पनाजीवी कवि साहित्य को कुंठा अतृप्ति और निराशा से भरने लगे।

छायावादी काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के लिए डॉ० केसरी नारायण शुक्ल के ये शब्द ध्यान देने योग्य हैं—"छायावाद के व्यक्तिवाद, आत्माभिव्यक्ति, कलावाद आदि बुर्जुआई संस्कृति के ही विविध रूप हैं। हमारे समाज की व्यवस्था प्रतिद्वन्द्विता के आधार पर है। आज के समाज के मूल्यांकन का मानदण्ड अधिकार स्वायत्त मूल्य के आधार पर है तो जनहित की अपेक्षा व्यक्तिगत सफलता की भावना प्रमुख हो गई है। Capitalist Economy अर्थात् पूंजीवादी मितव्ययता जिनका आधार ही व्यक्तिगत एकाधिकार है—संगठित समाज व्यक्ति का प्राधान्य अनिवार्य था।

पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति ने जहाँ जीवन को अपने रंग में रंग डाला, वहाँ दूसरी ओर अंग्रेजी की Romanticism वाली प्रवृति ने हिन्दी के छायावादी काव्य को पर्याप्त प्रभावित किया। अंग्रेजी साहित्य के स्वच्छंदतावाद से मिलते-जुलते होने के कारण कुछ विद्वानों ने तो छायावाद को ही अंग्रेजी के स्वच्छंतावाद को हिन्दी संस्करण तक कह डाला किन्तु यह बात नहीं। कारण स्पष्ट है—छायावाद का उद्भव भारत की सांस्कृतिक और सामाजिक परिस्थितियों के अनुकुल हुआ है। वास्तविकता यह है कि जैसे अंग्रेजी साहित्य में स्वच्छंदतावाद के जन्म से पहले साहित्य में अनैतिकतावाद, सुधारवाद, इतिवृत्तात्मकता और शास्त्रीय रूढ़ियों का बोलबाला था, बिल्कुल यही दशा छायावाद के अभ्युदय से पूर्व हिन्दी में द्विवेदी युग में थी जिसकी प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप छायावाद का जन्म हुआ। कहने का तात्पर्य यह है कि छायावाद एक ओर जहाँ सामाजिक और आर्थिक ढाँचे में परिवर्तन ला सका वहाँ दूसरी ओर साहित्यक दृष्टि से भी वह काफी आगे बढ़ा हुआ दिखाई देता है। छायावाद ने यदि काव्यगत शुष्कता को दूर किया तो शिल्पगत सूक्ष्म कल्पनाओं के मार्ग भी खोले।

परिभाषा—छायावाद काव्याधारा अपनी पूर्वगत काव्यधाराओं से एक और नया कदम लेकर आई। भारतेन्दुयुगीन कविता की नैतिकता और उपदेशात्मक प्रवृति इतनी बढ़ी कि लोग उससे ऊब उठे और उनके मन ही मन में बाह्य की अपेक्षा आन्तरिक अभिव्यक्ति की भावना जागृत हुई। बाह्य

जीवन की अपेक्षा आन्तरिक अभिव्यक्ति की भावना को महत्त्व दिया जाने लगा। प्रथम महायुद्ध के उपरात जीवन मे एक खोखलापन और निस्सारपन आगया था। पश्चिम के स्वतत्र विचारो के सम्पर्क से राजनीति और सामाजिक बधनो के प्रति असन्तोष की भावना मधुर उभार के साथ उठ रही थी भले ही उसके तोडने का निश्चित विधान अभी तक मन मे न आया हो। राजनीति मे ब्रिटिश साम्राज्य की अचल सत्ता और समाज में सुधार-वाद की दृढ नैतिकता, असन्तोष व विद्रोह की इन भावनाओ को बहिर्मुखी अभिव्यक्ति का अवसर नही दे रही थी।

छायावाद मे प्रारम्भ से ही जीवन की वास्तविकता और निकटता के प्रति एक उपेक्षा, एक विमुखता का भाव मिलता है। नये विचारो से प्रेरित कवि की भावनाये धीरे-धीरे अभिव्यक्ति के लिए छटपटा रही थी। डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है कि नैतिकता और उपदेशात्मकता के प्रति विद्रोह लेकर जन्मी भावनायें अन्तर्मुखी होकर धीरे-धीरे अवचेतन मे आकर बैठ गयी और वहा से क्षतिपूर्ति के लिए छायाचित्रो की सृष्टि कर रही थी आशा के इन्ही स्वप्नो और निराशा के छायाचित्रो की समाष्टि का नाम ही छायावाद है।

छायावाद आधुनिक कविता की उस धारा का नाम है जो १९१२ ई० के आस-पास द्विवेदीयुगीन नीरस, उपदेशात्मक, इतिवृत्तात्मक और स्थूल आदर्शवादी काव्यधारा के बीच मे प्रमुखत रीतिकालीन काव्य प्रवृत्तियो के विरुद्ध विद्रोह के रूप मे प्रवाहित हुई। छायावाद पर सर्वप्रथम मुकुटधर पाण्डेय ने एक निबन्ध लिखा। उनकी सूक्ष्म बुद्धि ने छायावाद की मूलप्रवृत्ति को (आत्मनिष्ठता) पहचान लिया। उन्होने छायावाद की मौलिकता की ओर सकेत किया है। आचार्य शुक्ल के अनुसार पुराने सन्तो के छायाभास तथा योरोपीय काव्य क्षेत्र मे प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद के अनुकरण पर रची जाने के कारण बगला मे ऐसी कवितायें छायावाद कही जाने लगी थी। अत: हिन्दी मे इस तरह की कविताओ का नाम छायावाद चल पड़ा, किन्तु यह कथन कि बगला मे भी छायावाद नाम का एक वाद है, बहुत दिनो बाद डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा निर्मूल घोषित कर दिया गया।

आचार्य शुक्ल छायावाद को स्वच्छदतावाद से भिन्न मानते हैं, छायावाद को वे दो अर्थों मे ग्रहण करते हैं—एक तो रहस्यवाद के सीमित अर्थ मे दूसरे प्रतीकवाद या चित्रभाषावाद की अभिव्यजना प्रणाली या काव्य शैली के व्यापक अर्थ मे। शुक्ल जी के अनुसार छायावाद का अर्थ—"प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यजना करने वाली भाषा के रूप मे अप्रस्तुत का कथन हो।"

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने एक और कदम आगे बढ कर कहा है कि स्वच्छदतावाद सामाजिक रूढियो मे विद्रोह और छायावाद को अभिव्यजनावाद

मान कर पूर्व प्रचलित काव्य शैली के विद्रोह की अभिव्यक्ति है। कुछ और आगे चल कर तो यह शब्द इतना व्यापक हुआ कि नए रूप रंग की कोई भी रचना छायावाद कहलाई।

वास्तव में देखा जाये तो एक बात स्पष्ट है कि उन्होने यह नही सोचा कि अभिव्यक्ति और अनुभूति का किसी न किसी स्थल पर तो मिलन होता ही है और यह दोनो ही अन्योन्याश्रित हैं। प्रसाद ने छायावाद की परिभाषा इस प्रकार की है–"जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिन्दी मे उसे छायावाद नाम से अभिहित किया गया। सूक्ष्म और आभ्यंतर भावो मे प्रचलित पद योजना असफल रही। उनके लिए नवीन शैली, नवीन पद-विन्यास आवश्यक था। आगे प्रसाद ने लिखा है कि छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति की भंगिमा पर निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिक, सौन्दर्यमय प्रतीक विधान तथा विचार-वक्रता के साथ सहानुभूति की प्रवृत्ति छायावाद की विशेषतायें हैं।"

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने भी छायावाद मे आध्यात्मिक तत्वो को समेट लिया है। महादेवी वर्मा शीर्षक निबंध मे आचार्य जी लिखते हैं कि मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म, किन्तु व्यक्त सौन्दर्य मे आध्यात्मिक छाया का भाव मेरे विचार मे छायावाद की सर्वमान्य परिभाषा हो सकती है नई छायावादी कविता का भी एक पक्ष है, किन्तु उसकी प्रधान प्रेरणा धार्मिक न होकर मानवीय है, सास्कृतिक है। छायावादी काव्य प्राकृतिक सौन्दर्य और सामयिक जीवन परिस्थितियों से ही मुख्यत अनुप्राणित है। छायावाद मानव जीवन सौन्दर्य और प्रकृति को आत्मा के अभिन्न रूप मे मानता है।"

डॉ० नामवरसिंह ने अपनी पुस्तक छायावाद के 'प्रथम रश्मि' शीर्षक से लिखे गये निबन्ध मे कहा है कि वाजपेयी जी की आध्यात्मिक छाया शुक्ल जी का फैन्टेसमैन्टा अथवा छायाभास ही है केवल इस अन्तर के साथ उसमे धार्मिक स्थूलता नहीं। उन्होंने लिखा है कि वाजपेयी ने अपने को परिभाषा की इस परिधि में बाध कर प्रसाद, पन्त, निराला व महादेवी आदि की बहुत सी कविताओ को छोड दिया छायावाद मे निस्सदेह सूक्ष्मता काफी है लेकिन इस सूक्ष्मता की सीमा के कारण हम निराला और प्रसाद की उन कविताओं से वचित रह जाते है जिनमे अतीव मासलता है। इसलिए इस परिभाषा मे भी अव्याप्ति दोष है •जो हो सो हो यह तो स्पष्ट है कि सुशीलकुमार की अस्पष्टता, मुकुटधर पाण्डे की आध्यात्मिकता, आचार्य द्विवेदी का रहस्य, शुक्ल जी का आध्यात्मिक छायाभास, वाजपेयी का आध्यात्मिक छाया का भान और नगेन्द्र का स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह सब एक ही है। इन सभी व्याख्याओ के अनुसार रहस्यवाद ही छायावाद है।"

सचाई यह है कि छायावादी कविताओं की परिभाषाओ का निश्चय उन कविताओं मे पाये जाने वाली प्रवृत्तियो के आधार पर होना चाहिए और

हमे यहा यह नही भूल जाना चाहिये कि छायावाद उस राष्ट्रीय जागरण की कलात्मक और काव्यात्मक अभिव्यक्ति है जो एक ओर विदेशी पराधीनता से और दूसरी ओर पुरानी रूढियो से मुक्ति चाहता था। इस जागरण मे क्रमश विकास होता गया। इसकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति भी विकसित होता गई और इसके परिणामस्वरूप छायावाद का भी अर्थविस्तार होता गया।

छायावाद के प्रवर्तक के रूप में न तो हमे माखनलाल चतुर्वेदी को ही स्वीकार करना चाहिए और न सुमित्रानन्दन पत की उच्छ्वास नामक पुस्तिका से छायावादी काव्य शैली का अभ्युदय माना जा सकता है। छायावाद का यथोचित रूप हमे प्रसाद के काव्यो मे मिलता है। पत जी की अपेक्षा प्रसाद जी काव्य क्षेत्र मे पहले आये। झरना की भूमिका मे प्रकाशकीय वक्तव्य इस प्रकार है—छायावाद के प्रवर्तक का श्रेय इन्ही को है—जिस शैली की कविता को हिन्दी मे छायावाद कहा गया है उसका आरम्भ इसी ग्रन्थ से हो रहा है। अत. निर्विवाद रूप से छायावाद बीसवी शताब्दी के प्रथम दो दशको मे भारत के नव जागरण का कलात्मक रूपान्तर है। अब इस विवेचन के पश्चात् छायावादी कविता की प्रमुख-प्रमुख प्रवृत्तियो को समझा जा सकता है—

प्रमुख प्रवृत्तिया—छायावादी काव्यधारा जिन परिस्थितियो मे विकसित हुई वे इसमे पाई जाने वाली प्रवृत्तियो की प्रेरिका रही हैं। "रीतिकालीन रूढिवाद से थके हुए कवियो ने जब सामयिक परिस्थितियो से प्रेरित होकर तथा बोलचाल की भाषा मे अभिव्यक्ति की स्वाभाविकता और प्रचार की सुविधा समझ कर व्रजभाषा का जन्मजात अधिकार खडी बोली को सौप दिया, तब साधारण लोग निराश ही हुए।" छायावादी काव्य-धारा मे जो तत्व और प्रवृत्तिया उभरी वे भाषा के क्षेत्र मे भी महत्वपूर्ण हैं। छायावाद की कविता जीवन के कोमल तन्तुओ की कविता है। जीवन के प्रति इसका दृष्टिकोण वैज्ञानिक भले ही न हो, किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि जीवन के साथ इसका सम्बन्ध महादेवी जी के शब्दो मे "वही रहा है जो शरीर के साथ शल्यशास्त्र और विज्ञान का "एक शरीर के खण्ड-खण्ड कर उसके सम्बन्ध मे सारा ज्ञातव्य जान कर भी उसके प्रति वीतराग रहता है, दूसरा जीवन को विभक्त कर उसके विविध रूप और मूल्य को जान कर भी हमे उसके प्रति अनुरक्ति नही देता है। इस प्रकार यह बुद्धि प्रस्तुत चिन्तन मे ही अपना स्थान रखता है। इसी कारण कवि को इससे विपरीत एक ज्ञानात्मक दृष्टिकोण का सहारा लेना पडता है जिसके द्वारा वह जीवन के सुन्दर और कुत्सित पर सवेदना का रग कर देता है।"

परिणामत: छायावादी काव्य मे जो प्रवृत्तिया उभरी उन्हें अब आसानी से समझा जा सकता है। सक्षेप मे छायावाद की मूलभूत विशेषतायें इस प्रकार है—

१ आत्मानुभूति की तीव्रतम अभिव्यक्ति,

२. कल्पनातिशयता,

३ सौन्दर्य के प्रति अत्यधिक आकर्षण,
४ सर्वचेतनावाद,
५ विस्मय की भावना,
६ सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक और साहित्यिक बंधनों और रूढ़ियों से विद्रोह,
७ उन्मुक्त प्रेम की प्रवृत्ति।

भारतीय दार्शनिक और आध्यात्मिक चिन्तन की विविध परम्पराओं की अभिव्यक्ति, भारतीय सांस्कृतिक नव-जागरण के विविध पक्ष, राष्ट्रीयता की भावना, विदेशी शासन के प्रति विद्रोह आदि छायावाद,की अन्य विशेषतायें हैं जो पूञ्जीवादी व्यक्तिवाद के कारण नहीं वरन् अन्य कारणों से उद्भूत हुई हैं।

छायावादी कविता प्रधानतः प्रेम और सौन्दर्य के स्वरूप को प्रगट करने मे अपना सानी नहीं रखती है। प्रत्येक कवि की लेखनी से कुछ ऐसी पंक्तियों की सृष्टि हुई है जिन्हें हम प्रेम सौंदर्य और शृंगार की श्रेणी मे रख सकते हैं। पंत, प्रसाद, निराला और महादेवी के काव्य में से एक-एक उदाहरण इस तथ्य की प्रतिष्ठापना तथा प्रमाणिकता के लिए पर्याप्त होगा—

तारकमय नव वेणी बन्धन
शीशफूल कर शशि का नूतन
रश्मिवलय सित-घन अवगुंठन
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे चितवन से अपनी।
पुलकती आ वसन्त रजनी।

—महादेवी।

हीरे सा हृदय हमारा, कुचला शिरीष कोमल ने।

—प्रसाद।

इस काव्य धारा की प्रवृत्तियों को हम तीन भागों में विभक्त करके देख सकते हैं। वे है—

१ विषयगत प्रवृत्तियां,
२ विचारगत प्रवृत्तियां,
३ शिल्पगत प्रवृत्तियां।

विषयगत—छायावादी कवियों ने मूलतः सौन्दर्य और प्रेम को ही अपनाया है और इसे ही विषय के रूप मे प्रतिपादित किया है। सौन्दर्य को इन कवियों ने प्रायः तीन रूपों मे गाया और अभिव्यक्ति की—नारी-सौन्दर्य, प्रकृतिक सौन्दर्यऔर अलौकिक सौन्दर्य या अलौकिक प्रेम। छायावादी कविता ने नारी को उस प्रेयसी के रूप में ग्रहण किया जो हृदय और यौवन की सम्पूर्ण अनुभूतियों से परिपूर्ण है तथा जो धरती के यथार्थ सौन्दर्य और स्वर्ग की काल्पनिक सुषमा से सुसज्जित है। प्रसाद, पन्त और निराला की कविता मे इस प्रेयसी के सौन्दर्य के शत-शत चित्र अपनी पूर्ण आभा के साथ अङ्कित हुए हैं। कामायनी मे श्रद्धा का सौन्दर्य देखिये—

नील परिधान बीच सुकुमार,
खुल रहा मृदुल अधखिला अङ्ग।
खिला हो ज्यो बिजली का फूल,
मेघ बन बीच गुलाबी रङ्ग॥

छायावादी कवियो ने सौन्दर्य को स्थूल चित्रण की अपेक्षा उसके सूक्ष्म वर्णन को ही अधिक महत्व दिया है। इस सौन्दर्य मे नग्नता, अश्लीलता और स्थूलता नहीं के बराबर है। प्रेम के क्षेत्र मे छायावादी कवि किसी प्रकार की जातीय रूढि और धार्मिक संकीर्णता का पुजारी नहीं है। निराला ने लिखा है—

दोनो हम भिन्न वर्ण,
भिन्न जाति भिन्न रूप,
भिन्न धर्म भाव, पर,
केवल अपनाव से प्राणो से एक थे।

छायावादी कवियो के प्रेम की दूसरी विशेषता वैयक्तिकता है, तीसरी सूक्ष्मता तथा चौथी विशेषता प्रणयगाथा को निराशा और असफलता है। इसी कारण इन कवियो ने मिलन की अपेक्षा विरह के ही अधिक गीत गाये हैं—

शून्य जीवन के अकेले पृष्ठ पर,
विरह अहा! कराहते इस शब्द को,
विष कुलिश की तीक्ष्ण चुभती नोक से,
निष्ठुर विधि ने अश्रुओ से है लिखा।

—पंत

प्रकृति के सौन्दर्य और उसके माध्यम से प्रेम का वर्णन भी छायावादी कवियो की शृंगारिकता का ही दूसरा रूप है। वे प्रकृति के रूप मे भी नारी का रूप देखते हैं। ये छायावादी कवि प्रकृति-प्रेम का नाटक खेलते हैं, किन्तु इस नाटक की पृष्ठभूमि मे नारी ही होती है। जिस पन्त ने कभी द्रुमो की मृदुलता मे सास ली और जो प्राकृतिक सौन्दर्य के सामने नारी सौन्दर्य को हेय और अधरा समझता था वही आगे चल कर भावी पत्नी के सुमधुर स्वप्नो मे लीन हो जाता है। निराला की 'जूही की कली' आलोचको की दृष्टि मे भले ही प्रकृति वर्णन का उत्कृष्ट नमूना हो, पर हमारी समझ मे वह निश्चय ही पुरुष और नारी के सगम का चित्रण हैं। देखिये तो सही कवि की इन पक्तियो को—

विजन वन वल्लरी पर,
सोती थी सुहाग भरी,
जाने कैसे प्रिय आगमन वह,
नायक ने चूमे कपोल,
डोल उठी वल्लरी की जड,
जैसे हिण्डोल।

—जूही की कली।

छायावादियो ने प्रकृति के अनेक चित्र प्रस्तुत किए, किन्तु इनमे भी आगे चल कर वे रहस्यवादी बन गये। इसका उदाहरण प्रेम पथिक आसू आदि हैं जिनमे लौकिक अभिव्यक्ति है। रहस्यवादी कवियो की यह विशेषता है कि वे लौकिकता से अलौकिकता की ओर अग्रसर होते हैं लेकिन छायावादी पंत, प्रसाद और निराला का क्रम उल्टा है—

मिला कहा वह सुख जिसका,
मैं स्वप्न देख कर जाग गया,
आलिगन मे आते-आते,
मुसका कर जो भाग गया।

—प्रसाद।

रहस्यवाद के क्षेत्र मे महादेवी अवश्य दृढ प्रतीत होती हैं। इनको विरह और मिलन का अन्तर ही स्पष्ट नही है। 'दुख सुख मे कौन तीखा, मैं न जानू और न सीखा' आदि पक्तियो मे इसी भाव का पुनरावर्तन है।

विचारगत प्रवृत्तिया—छायावादी कविता की विचारगत प्रवृत्तिया ये बताई जाती हैं—

१ दर्शन के क्षेत्र मे अद्वैतवाद, सर्वात्मवाद।

२. धर्म के क्षेत्र मे रूढियो और वाह्यचारो से मुक्त मानव-हितवाद।

३ समाज के क्षेत्र मे समन्वयवाद।

४ राजनीति के क्षेत्र मे अन्तर्राष्ट्रीय और विश्व-शाति का समर्थन छायावाद की विशेषता है।

५ गृहस्थ, पारिवारिक और दाम्पत्य जीवन के क्षेत्र मे हृदयवाद या प्रेमपूर्ण व्यवहार।

६ साहित्यिक क्षेत्र मे व्यापक कलावाद या सौन्दर्यवाद। कुछ ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं जिनमे अद्वैतवाद मानवतावाद, समन्वयवाद और वैचारिक पक्ष स्पष्ट हुए हैं।

अद्वैतवाद—

तुम तुग हिमालय शृंग,
और मैं चचल गति सुर सरिता,
तुम विमल हृदय उच्छ्वास,
और मैं कात कामिनी कविता।

मानवतावाद की व्यापक भूमिका हमें कामायनी मे मनु के निम्न कथन मे देखने को मिलती है। वैसे सारा छायावादी काव्य मानवता की भावना से ओत-प्रोत है, किन्तु निम्नाकित पक्तियों में तो इनका व्यापक रूप देखा जा सकता है—

मनु ने कुछ-कुछ मुस्का कर,
कैलास ओर दिखलाया,
देखो कि यहा पर अब तक,
कोई भी नहीं पराया।

इसके आगे का मनु के माध्यम से कहलाया गया यह कथन भी मानवता का द्योतक है जिसमे स्वय सुखी रह कर सभी को हसते खेलते और सुखी जिन्दगी बिताने की भावना विद्यमान है—

> औरो को हसते देखो मनु,
> हसो और सुख पाओ,
> अपने सुख को विस्तृत कर लो,
> सब को सुखी बनाओ ।

समन्वयवाद की दृष्टि से छायावाद के प्रतिनिधि कवियो मे प्रसाद और पन्त का नाम विशेषोल्लेख्य है । कामायनी का दर्शन भी समन्वयवाद की पीठिका पर ही अधिष्ठित है—

> ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है,
> इच्छा क्यो पूरी हो मन की,
> एक दूसरे से न मिल सकें,
> यही विडम्बना जीवन की ।

शिल्पगत प्रवृत्तियां—छायावादी कविता ने अपने पूर्ववर्ती काव्य के प्रति जो विद्रोह किया वह विषय के क्षेत्र तक ही सीमित न रह सका वरन् वह तो शिल्प के क्षेत्र मे भी कुछ नवीनता लेकर आया । पुरानी परम्परागत शैलियों और प्रयोग के स्थान पर सूक्ष्म अभिव्यक्ति को प्रधानता मिली । भाषाओ मे सीधी अभिव्यक्ति के स्थान पर लाक्षणिकता और व्यजनात्मकता को प्रधानता दी गई । भाषा ने व्यजना के क्षेत्र मे एक गाभीर्य ला दिया जिसका इसकी पूर्ववर्ती कविता मे प्रायः अभाव सा है । अभिव्यक्ति मे हृदय की सरसता और सजीवता के साथ-साथ कुशलता भी देखने को मिलती है । छायावादी शिल्प की निम्नाकित विशेषतायें हैं—

१ गीतिशैली का प्रयोग-वैयक्तिकता, भावात्मकता, सक्षिप्तता और कोमलता ।

२ प्रतीकात्मकता छायावादी शैली की आवर्जनीय विशेषता है ।

३ प्राचीन अलकारो के साथ-साथ नवीन अलकारो का प्रयोग यथा—मानवीकरण, विशेषण विपर्यय व विरोधाभास आदि ।

४. कोमलकान्त और सस्कृतमय पदावली का पर्याप्त प्रयोग ।

५ भाषागत चित्रात्मकता और लाक्षणिकता का पर्याप्त पुट ।

६ सफल और प्रेषणीय गुण समन्वित बिम्बो का प्रयोग ।

छायावादी कवि शिल्प के क्षेत्र मे इन सभी विशेषताओ से सयुक्त करके अपनी कविता को पाठकों के सामने प्रस्तुत करते हैं । कामायनी जैसे सफल प्रबन्ध मे गीत शैली का और पन्त की रचनाओ मे गीत काव्य का सफल रूप देखने को मिलता है । प्रतीकात्मकता चित्रात्मकता और बिम्बो का सही विधान छायावादी शैली की विशेषताए है । कुछ उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो सकती है—

मूर्त को अमूर्त और अमूर्त को मूर्त उपमा देना—

१ बिखरी अलकें ज्यो तर्क जाल ।

२ नीरवता की शिला चरण में टकराता फिरता पवमान ।
३ पवन पी रहा था शब्दो को निजनता की उखडी सास ।

अलकारो में विरोधाभास, विशेषण विपर्यय, मानवीकरण और रूपकातिशयोक्ति का प्रयोग विशेष मिलता है। उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है—

विरोधाभास— शीतल ज्वाला जलती थी,
ईधन होता दृग जल का,
यह व्यर्थ सास चल-चलकर,
करती है काम अनल का ।

मानवीकरण— कहो कौन तुम दमयन्ती-सी,
इस तरु के नीचे सोई ।
क्या तुमको भी छोड गया,
सखि नल सा निष्ठुर कोई ।

विशेषण विपर्यय— ऐ स्वप्नो के नीरव चुम्बन,
+ + +
मूक व्यथा का मुखर भुलाव
ओ जिनकी, अबोध पावनता,
थी जग के मगल का द्वार ।

मूक व्यथा का मुखर भुलाव चरण मे व्यथा नही वरन् व्यथित व्यक्ति ही मूक है, उधर भुलाव मुखर नही, भूलने वाला है। इस प्रकार समस्त पक्ति मे दुहरा विपर्यय किया गया है, साथ ही अगोचर को गोचर रूप भी दिया गया है।

रूपकातिशयोक्ति— बाधा है विधु को किसने
इन काली जजीरो से
मणि वाले फणियो का मुख
क्यो भरा आज हीरो से ?

वस्तुत छायावादी कविता ने भाषा, भाव, अलकार और नवीन प्रयोग की दृष्टि मे कुछ नई सीढिया पार की। इस काव्य मे कुछ तो क्या अनेक पक्ष पुष्ट हो गये, किन्तु फिर भी कुछ पक्ष छूट गये और वे थे सामाजिक जीवन और सास्कृतिक पक्ष। इन दो पक्षो पर इस काव्यधारा मे कम ही लिखा गया है। कल्पनातिशयता के चक्कर मे पडकर सामाजिकता को ये कवि अधिक आग्रह से साथ न अपना सके। साथ ही व्यक्तिवाद ने भी इन्हें सामाजिकता की ओर से मुख मोडने को बाध्य कर दिया। कुछ लोगो की धारणा है कि छायावादी काव्य धारा अब मर गई है। पत ने लिखा है कि "छायावाद इसलिए अधिक दिन तक नही टिक सका कि उसके पास भविष्य के लिए उपयोगी आदर्शों का प्रकाश नवीन भावना का सौन्दर्य-बोध और नवीन विचारो का रस नहीं था।"

हमारी दृष्टि मे छायावाद का पतन नही हुआ है और न वह मरा है। कोई भी काव्यधारा कभी मरती नही है ठीक वैसे ही काव्य मे कोई नई धारा एकदम नही आ जाती है। हा, यह मानने मे तनिक भी हिचक नही होनी चाहिए कि वह कभी-कभी परिस्थिति विशेष के कारण भी मद अवश्य पड जाती है। छायावाद के साथ भी यही हुआ है। वह आज नये दृष्टिकोण की उपस्थिति मे धीमी गति से चल रहा है। छायावाद की इस धीमी गति के और भी कई कारण हैं। प्रमुख कारण यह है कि जीवन के प्रति सबल और स्वस्थ दृष्टिकोण इस काव्य मे नही पाया जाता है। छायावाद की रुकावट के सम्बन्ध मे कवि पन्त एक जगह और लिखते है—'छायावाद के शून्य सूक्ष्म आकाश मे अति काल्पनिक उडान भरने वाली अथवा रहस्य के निर्जन शिखर पर विराम करने वाली कल्पना की (एक हरी ठोस जनपूर्ण धरती की आवश्यकता थी) और इसलिए तो काव्य मे छायावाद की प्रतिक्रिया के रूप मे कुछ अन्य कारणो मे प्रगतिवाद का अवतरण हुआ।" महादेवी वर्मा इस विषय पर अपने विचार इस प्रकार व्यक्त करती हैं—'छायावाद ने कोई रूढिगत या वर्गगत सिद्धातो का सचय न देकर हमे केवल समष्टिगत चेतना और सूक्ष्मगत सौन्दर्य सत्ता की ओर जागरूक कर दिया था।"

अत छायावादी कविता मे जो प्रवृत्तिया पनपी, उनका विवेचन करने के पश्चात् कुछ प्रश्न उठते है। अत उनका समाधान कर लेना आवश्यक है। क्या छायावाद पलायनवादी है? क्या उसे दुखवाद का पर्यायवाची माना जा सकता है? इसके उत्तर मे महादेवी वर्मा के मत का सहारा लेते हुए कहा जा सकता है कि पलायनवृत्ति के सम्बन्ध मे हमारी यही धारणा बन गई है कि वह जीवन सग्राम मे असमर्थ छायावाद की अपनी विशेषता है। सत्य तो यह है कि युगो मे परिचित से अपरिचित, भौतिक मे अध्यात्म, भाव से बुद्धिपक्ष, यथार्थ से आदर्श आदि की ओर मनुष्य को ले जाने और इसी क्रम से लौटने का बहुत कुछ श्रेय इसी पलायन वृत्ति को दिया जा सकता है। यथार्थ का सामना न कर सकने वाली दुर्बलता ही इसे जन्म देती है।

छायावाद मे दुख है, वेदना है और है निराशा, किन्तु इसी आधार पर छायावाद को दुखवाद का समीपस्थ और पर्यायवाची नही माना जा सकता है। दुख के दो रूप सम्भव हैं। पहला तो जीवनगत वैषम्य से उत्पन्न है और दूसरा वैयक्तिक प्रणय की असफलता से अद्भुत वेदना या दुख। साथ ही स्मरणीय यह है कि करुणा जीवन की मूल प्रवृत्ति है और इसे किसी भी स्थिति मे टाला नही जा सकता है। इसी तरह दुख भी जीवन की अनिवार्यता है। छायावाद के दृढ स्तम्भ प्रसाद ने लिखा है—

दुख की पिछली रजनी बीच,
विकसता सुख का नवल प्रभात।
एक परदा यह झीना नील,
छिपाये है जिसमे मृदुगात॥

व्यक्तिवादी युग मे मानव की सुख दुखानुभूतियो को यदि कोई संवेदन

शील रवि अभिव्यक्ति दे तो आश्चर्यचकित नही होना चाहिए इसी निकष पर यदि छायावादी काव्य को कसें तो यह समस्या सुलझ सकती है। छायावादी काव्य उस दुखवाद और करुणावाद की व्याख्या करता है। भारतीय संस्कारवश ही इन कवियो ने करुण भाव के प्रति रुचि प्रदर्शित की है। हा, समकालीन परिस्थितियो मे प्रेरणा पाकर वह अधिक मुखर हो उठा है—

जिससे कन-कन मे स्पदन हो,
मन मे मलयानिल चदन हो,
करुणा का नव अभिनदन हो,
वह जीवन गीत सुना जा रे।

सुमित्रानदन पन्त ने छायावाद के पुनर्मूल्याकन का प्रश्न भी उठाया है। उन्होने एक व्याख्यानमाला के अन्तर्गत इस विचारणा को वल दिया है। समस्त छायावादी चेतना को विशाल पट पर प्रस्तुत करते हुए पन्त ने अन्ततोगत्वा यही स्वीकार किया है कि—"इसमे सदेह नही कि तथा कथित छायावाद मात्र चित्रभाषामयी अभिव्यजना शैली या सन्तो की आध्यात्मिक अनुभूतियो की अनुकृति, रहस्यवादी कल्पना या पश्चिम से उधार ली गई स्वच्छन्दतावादी, व्यक्तिनिष्ठ, विद्रोहभरी आत्माभिव्यक्ति ही नही है, वह नवीन अन्त सौन्दर्य से प्रेरित कला बोध के दीपदान पर चतुर्दिक नवीन जीवन-सौन्दर्य या भाव-प्रकाश बखेरती हुई चेतना की ऊर्ध्वमूल्य शिखा है जो व्यापक विश्व ऐक्य तथा लोक साम्य के अजस्र स्नेह-धार से पोषित मूर्तिमान-मानव-मगल का काव्य है। छायावाद मध्य-युगो के कुहासे से भरे आकाश मे खोये हुए, परलोकवादी, जीवन-निषेध कुण्ठित आत्ममुक्तिकामी अध्यात्म को पुन जीवन-सक्रिय बनाकर मानव-मन तथा धरती के जीवन के निकट ही नही लाया उसकी अन्त प्रेरणा तथा रस-सौन्दर्य की शक्ति के कारण युग जीवन तथा युग-मानस के निर्माण मे भी नवीन स्फूर्ति का सचार हो सका।"[1]

पत-काव्य का विकास

आधुनिक युग मे पन्त ऐसे कवि जीवीकवि रहे हैं जो समय के साथ चलते रहे हैं—कभी भी अपने युग को छोडा नही है। ऐसे परिवर्तित और गत्यात्मक व्यक्तित्व वाले पन्त जी के काव्य का विविध भूमियों से गुजरते जाना अस्वाभाविक नही माना जा सकता है। इनके साथी कवियो मे प्रसाद, निराला और महादेवी का व्यक्तित्व कुछ दूसरे ही ढग का रहा है। प्रसाद अपने आनन्दवादी लहर तक बेगडे पहुच गये हैं तो निराला समाज के सच्चे सेवक के रूप मे अपने आपको प्रस्तुत कर सके हैं। महादेवी तो वेदना मे ही तृप्ति के क्षण खोजने में समर्थ रही हैं।

[illegible] पन्त जी की कृतियो का परिचय देते समय पिछले पृष्ठो मे यह [illegible] स्पष्ट हो गई है, किन्तु यहा उसका सूत्र रूप में परिचय देना भी

---

१ सुमित्रानन्दन पत : छायावाद का पुनर्मूल्यांकन, पृष्ठ ४२।

आवश्यक जान पडता है। प्रत्येक कृति के माध्यम से कवि का दृष्टिकोण किस प्रकार स्पष्ट होता गया है यह स्पष्ट हो जाने पर भी बहुत से सूत्र अस्पष्ट रह जाते हैं। पत काव्य का प्रारम्भ सर्वप्रथम १९१८–२० मे उनके वीणा काव्य-सकलन से होता है। यह प्रारम्भ छायावादी है। किन्तु पत आज तक अनेक करवटें बदल चुके है। उन्हे सक्षेपत. इस प्रकार समझा जा सकता है—

१. छायावादी काल
२ प्रगतिवादी काल, और
३. आध्यात्मिक चेतना सयुक्त कविताए।

छायावादी सृष्टि—पत की प्रारम्भिक रचनायें 'वीणा', 'पल्लव', 'ग्र थि' और 'गु जन' छायावादी तत्वो से मडित रचनायें हैं। कवि पन्त ने छायावादी सौन्दर्य चेतना को जो निखार दिया है वह इन कृतियो मे सुरक्षित है। छायावाद की व्याख्या और विवेचना के दौरान यह प्रतिपादित किया जा चुका है कि सौन्दर्य प्रेम, प्रकृति और वेदना व विस्मय भावना छायावाद की विशेषतायें है। पन्तकी 'वीणा' से लेकर 'गु जन' तक के रचनाकाल को छाया-वादी काल माना जाता है। कवि का बाल्यकाल कूर्मांचल की सुरम्य उपात्यका मे व्यतीत हुआ था इसलिए उनकी प्रारम्भिक कविताओ मे प्रकृति प्रेम की ही प्रधानता है। प्रकृति प्रेम के साथ ही उसमे प्रेम, निराशा और वेदना को भी देखा जा सकता है। छायावादियो की कुशल चेतना के परिणामस्वरूप जो सौन्दर्य, प्रेम और प्रकृति के कल्पनामय चित्र काव्य-क्षितिज पर उतरे है, वे पत के चित्रो की पक्ति में कठिनाई से ही खडे हो पाते हैं। वीणा मे प्रकृति प्रेम है कवि द्रुमो की मृदुछाया मे ही जीवन बिताना श्रेयस्कर समझता है। वह उसे छोडकर कही दूसरी जगह नही जा सकता है। पल्लव का सौन्दर्य प्रकृति और मानव का सौन्दर्य है। गु जन एक ऐसी सौन्दर्यपूर्ण कृति है कि उसमे हम मानसी और शारीरिक दोनो ही प्रकार के सौन्दर्य को पाते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि वीणा से गु जन तक कवि कथ्य की दृष्टि से छायावादी चेतना मे जीता है। अभिव्यजना की दृष्टि से भी यह काल लाक्षणिक, प्रतीकात्मक और कला-संचेतना का परिचायक है। पल्लव की भूमिका मे कवि ने भाषा के जिन गुणो की चर्चा की है वे सभी गु जन तक की रचनाओं मे मिलते हैं।

प्रगतिवादी चेतना का प्रारम्भ 'युगान्त' से होता है। इस कृति का नाम ही एक युग की समाप्ति की घोषणा करता जान पडता है। यह वह कृति है जब कवि छाया-स्वप्नो की दुनिया से निकल कर धरती पर आने को ललचा रहा है। पत की प्रगतिवादी रचनाओ मे जिस सामाजिक चेतना, मगलमयी अभिलाषा और व्यावहारिक दर्शन–प्रणाली के दर्शन होते है वह युगात-युगवाणी और ग्राम्या मे प्रतिफलित दिखाई देती है। इन तीनो ही कृतियो मे कवि मार्क्सवादी, व्यवहारवादी और भौतिकवादी रूप मे आता दिखाई देता है। इतने पर भी यह नही कहा जा सकता है कि कवि पूर्णतया भौतिकवादी है। वह भौतिकवाद को भी सशोधन के साथ स्वीकार करता है।

"इस नई चेतना के प्रति पंत का बौद्धिक आकर्षण हुआ है। शोषितों के प्रति सहानुभूति जगी है और शोषण के विरुद्ध भावुक विद्रोह। इसलिए वे विचारों से पूर्णतया मार्क्सवादी नहीं बन पाये, उनके इस बौद्धिक जागरण में प्रगतिवादी विचारधारा के गुण द्वन्द्वात्मक दर्शन की प्रेरणा का अभाव है किन्तु प्रारम्भिक युग की कल्पना और एकान्त सौन्दर्य भावना से हट कर कवि जन जीवन की ओर आकर्षित हुआ है। उसने ग्राम की पीड़ित और उपेक्षित जनता के चित्र खींचे और उनके प्रति बौद्धिक सहानुभूति दिखाते हुए शोषण के विरुद्ध और नवयुग की प्रशंसा में अपने उद्गार प्रकट किये। इस युग की युगवाणी ग्राम्या प्रतिनिधि रचनायें हैं।"

प्रगतिवादी चेतना से संयुक्त इन भावनाओं की वाहिका कविताओं की भाषा व्यावहारिक है। युगवाणी की भाषा यद्यपि सूक्ष्मता और विश्लेषण गुण से युक्त है, किन्तु ग्राम्या में मुहावरे और लोकोक्तियों की भरमार है। कवि इस युग में अधिक सरल और व्यावहारिक इसलिए बन गया है कि उसकी सतरंगी स्वप्नों की छाया में उतर कर धरती पर आ गई है। लोक जीवन और मंगलाशा-समन्वित ये कृतियां इस युग की प्रगतिवादी चेतना की परिचायिका हैं। प्रकृति का पुजारी पन्त यहां लोक-प्रेम और मानव प्रेम का वाहक बन गया है। "सच तो यह है कि पल्लव में शब्द-माधुर्य ने कवि को बहुत मोह लिया था। भावों के साथ उसका संतुलन गुञ्जन में शुरू हो जाता है, जो युगांत में गम्भीर होकर आगे युगवाणी में कवि को अखरने लगता है। यहां तक कि वह अक्सर लिरिक (Lyric) भावना को तिलांजलि तक दे देता है। वह पहले की कोमलता कहीं खो जाती है ग्राम्या में वह भी एक तरह से फिर लौट आती है, यानी प्रौढ़ और गंभीर होकर।"—(शमशेर बहादुरसिंह)

अध्यात्म युग का प्रारम्भ स्वर्णकिरण और स्वर्णधूलि से होता है। स्पष्ट शब्दों में यह काव्य कवि की विकास-यात्रा का उत्तमोत्तम शिखर है जिस पर आकर समन्वयवादी चेतना से मेल-जोल करता दिखाई देता है। स्वर्णकाव्य के प्रारम्भिक क्षणों में ही कवि अरविन्द से प्रभावित होता है और उसके दर्शन को हृदयंगम कर अपनी मन वाछित समन्वयवादी चेतना को पा लेता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि कवि ने अपने दर्शन का आधार अरविन्द दर्शन को ही पाया है। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है—'अरविन्द के जीवन-दर्शन में मुझे पूर्ण संतोष प्राप्त हुआ है। उनसे अधिक व्यापक, ऊर्ध्व तथा अतलस्पर्शी मैं व्यक्तित्व, जिनके जीवन–दर्शन में अध्यात्म का सूक्ष्म बुद्धि-अग्राह्य सत्य नवीन ऐश्वर्य तथा महिमा से मंडित हो उठा है, मुझे दूसरा कहीं देखने को नहीं मिला है। विश्व कल्याण के लिए श्री अरविन्द की देन को मैं इतिहास की सबसे बड़ी देन मानता हूँ। इसमें संदेह नहीं कि श्री अरविन्द के दिव्य जीवन दर्शन से मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ हूं। श्री अरविन्द आश्रम में योगयुक्त (जन्म संगठित) वातावरण के प्रभाव में, ऊर्ध्व मान्यताओं सम्बन्धी मेरी अनेक शंकायें दूर हुईं। स्वर्णकिरण और उसके बाद की रचनाओं में

यह प्रभाव मेरी सीमाओं के भीतर, किसी न किसी रूप में प्रत्यक्ष ही दृष्टिगोचर होता है।"

पिछले पृष्ठों में स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, उत्तरा, अतिमा आदि कृतियों के विवेचन में इसी अरविन्दवादी चेतना को स्पष्ट किया गया है। यहाँ केवल इतना संकेत पर्याप्त है कि समन्वयवादी चेतना का ही परिणाम है कि इन कृतियों की सर्जना हुई है। और कवि का अभीष्ट रहा है आध्यात्मिक मानववाद। 'सर्वोदय' शीर्षक रचना इसका प्रमाण है—

> सरचना का भूतिवाद युग,
>
> हुआ विश्व-इतिहास में उदित।
>
> सहिष्णुता सद्भाव शांति के,
>
> हों गत संस्कृत धर्म समन्वित।
>
> वृथा पूर्व पश्चिम का दिग्भ्रम,
>
> मानवता को करे न खण्डित।
>
> बहिर्नयन विज्ञान हो महत्,
>
> अन्तर्दृष्टि ज्ञान से योजित।
>
> एक निखिल धरणी का जीवन,
>
> एक मनुजता का संघर्षण।
>
> विपुल ज्ञान संग्रह भव-पथ का,
>
> विश्व क्षेम का करे उन्नयन॥

कहने की आवश्यकता नहीं कि कवि विश्व की अखिल मानवता के भेदों को मिटा कर एक विश्व-संस्कृति के निर्माण के लिए उत्सुक है, पूर्व और पश्चिम के देश-भेद, विज्ञान और ज्ञान के बुद्धि-भेद और धर्मों और मानवता के सांस्कृतिक भेद को [illegible] चेतना के समन्वय-सूत्र में जोड़ कर विश्व-संस्कृति का यह चरम उन्नयन चाहता है। [illegible] स्वर्ण किरण में प्रकृति और जीवन के प्रति आध्यात्मिक आकर्षण है। अनुभूति और चिन्तन की प्रमुखता है, मानव जीवन की कल्पना [illegible] है। स्वर्ण किरण में उपनिषद की भावनाओं में [illegible] आध्यात्मिक [illegible] है। [illegible] प्रकृति की चेतना [illegible]। 'स्वर्ण-धूलि' में [illegible] [illegible]।"

[illegible]

इन कृतियो के अनन्तर हम पंत काव्य का उन दो कृतियो को भी देखते हैं जो 'कला और बूढा चाद' व लोकायतन के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमे पहला कृति प्रयोगशील तत्वो से मडित है। इसमे कवि प्रयोग की धरा पर उतरता दिखाई देता है। लोकायतन एक ऐसी कृति है जिसमे पिछले दोनो तीनो युगो की कला-चेतना का सम्मिलित आकर्षण दिखाई देता है। इनका विस्तार से विवेचन कृतियो के मूल्याकन मे किया गया है।

निष्कर्ष रूप मे यही कहा जा सकता है कि कवि पत ने अपनी कृतियो के माध्यम से अपने विकास की कहानी को स्पष्ट किया है। पत की कृतियो का अध्ययन (जो पीछे किया जा चुका है) एक प्रकार से उनके काव्य विकास का ही द्योतक है। उसकी पुनरावृत्ति न हो, इसलिए यहा संक्षेप मे काव्य-विकास के सूत्रो को सूक्ष्मत स्पष्ट किया गया है। यहा केवल यह बताना ही हमारा उद्देश्य रहा है कि कवि ने अपनी कौन-कौन सी रचनाओ मे किस-किस पद्धति या दर्शन को रूपायित किया है। पत काव्य का विकास स्वाभाविक और व्यावहारिक इसलिए है कि कवि समय की गति से कदम मिलाकर चलता रहा है।

पंत का प्रकृति वर्णन

आदिकाल से लेकर आज तक साहित्य मे प्रकृति के विविध रूप स्थापित हुए हैं। मानव से प्रकृति को विलग नही किया जा सकता है ठीक उसी तरह जैसे शरीर से आत्मा को ! प्रकृति की ममतामयी गोद में जन्म लेने वाला व्यक्ति इतना निष्ठुर भी कैसे हो सकता है। सवेदनशील कवि इस तथ्य को स्वीकार करते हैं। वे प्रकृति की विभिन्न राग छवियो को भुला नही पाते हैं। हा यह बात अलग है कि प्रत्येक काल के कवि ने प्रकृति की अनन्य छवियो को कभी अनुराग और कभी विराग से देखा हो। प्रकृति मानव से अभिन्न है तो कवि से—विशेषकर सौन्दर्य द्रष्टा कवि से कैसे अलग हो सकती है ? प्रकृति के दो रूप सहज ही देखे जा सकते हैं—मानव प्रकृति और मानवेतर प्रकृति।

महत्व —मानव जीवन में प्रकृति का विशेष महत्व है। महादेवी वर्मा ने लिखा है कि "दृश्य प्रकृति मानव जीवन को अथ से इति तक चक्रवात की तरह घेरे हुए है। प्रकृति के विविध कोमल-परुष, सुन्दर-विरूप, व्यक्त रहस्यमय रूपो के आकर्षण-विकर्षण ने मानव की बुद्धि और हृदय को कितना विस्तार और परिष्कार दिया है इसका लेखा जोखा करने पर मनुष्य प्रकृति का सबसे अधिक ऋणी ठहरेगा। वस्तुत सस्कार क्रम में मानव जाति का भाव जगत ही नही उसके चिन्तन की दिशायें भी प्रकृति से विविध रूपात्मक परिचय द्वारा तथा उससे उत्पन्न अनुभूतियो से प्रभावित हैं। मानव का रुदन और हास, आनन्द और पीडा सब उसकी ही धरोहर हैं।" इस कथन मे प्रकृति का महत्व निहित है। लेकिन महादेवी ने बताया है कि मानव और प्रकृति विलग नहीं हैं। कारण इनका महत्व अवर्णनीय है। प्रकृति की महत्ता का उद्घाटन डा० किरण कुमारी गुप्ता ने भी किया है। प्रकृति से ही सम्बन्धित अपने

शोध प्रबन्ध मे वे कहती हैं—"आरम्भ से ही प्रकृती अपनी ममतामयी गोद मे मानव को धारण करती और उसका पोषण करती है। वायु व्यजन करता निर्झरो का कल कल शब्द सगीत सुनाता, नक्षत्रगण गुपचुप कहानिया कहते, कलिका चुटकी बजा कर पास बुलाती, चन्द्रिका खिलखिलाकर हस पडती, सूर्य अपनी ज्योति विकीर्ण कर देता और शीतल, मन्द सुगन्धित समीर नवीन स्फूर्ति का सचार कर देता।" ... ... कल कल निनादिनी सरितायें, परी जगत की कथाये कहते हुए सितारे, अज्ञात लोक का रहस्य बतलाता हुआ चाद, सुनहरे तीर बरसाती हुई जयलक्ष्मी सी उषा दिवसावसान का लोहित गगन मेघ भरा आसमान से परी के समान धीरे धीरे उतरती हुई सध्यारानी, बहार की बयार, हठीली कलियो को मनाता हुआ नशीला भ्रमर कही दूर टीले पर खडा हुआ पारिजात का वृक्ष कवि से अनदेखे नही रह सके।"

आदिकाल मे प्रकृति का सौन्दर्य कवियो की नजर को विशेष प्रभावित नही कर सका। कारण उस समय की परिस्थितिया प्रकृति के कोमल पक्ष के अनुकूल नही थी। सच भी तो है उस समय का युग शूल का युग था, फूल का नही। असिधाराओ की झनझनाहट उस समय के साहित्य पर हावी हो रही थी फिर ऐसी स्थिति मे कविगण मधुपो की गुनगुनाहट को कैसे सुन सकते थे। परिणाम यह हुआ कि हिन्दी साहित्य के आदिम युग मे प्रकृति को वह सम्मान नहीं मिला जो उसे आगे की रचनाओ मे मिल गया।

भक्तिकालीन काव्य मे कवियो को कुछ अवसर अवश्य मिले जब कि प्रकृति के विविध रूपो का वर्णन सभव था। "सगुणवादियो ने ब्रज की लता-पता, गोवर्धन कालिन्दी कूल कदम्ब की डालो के मनोहारी चित्र खीचे हैं। उधर अयोध्या मे भी सरयू बहती दिखाई पड गई, चित्रकूट नजर पड गया, दण्डक अरण्य भी अनदेखा न रह सका। इधर निर्गुणवादियो ने भी अपनी उलटवासियो की वशी प्रकृति के रन्ध्रो से ही फूकी। उन्हे कभी पानी मे लगी हुई आग, पेड पर चढती हुई मछलिया, सरोवर मे नाल तक डूबी हुई कुम्हिलाती हुई कमलिनी तो कभी मान सरोवर मे तैरते हुए हस आठ दलो वाला खिलाहुआ कमल, अपनी ओर इशारा दे देकर बुलाने लगे।"

"**रीतिकालीन कवि** तो मानव एव उसके कृत्रिम व्यापारो का ही गायक था, मनुष्येतर प्राणी अथवा अचेतन वस्तुओ का नही। लक की लचक कचुकी की कशमकश एव हृदय की कसक उसके ध्यान को घर की देहलीज नही लाघने देती थी, पर प्रकृति को पूर्णतया बिसार देना भी तो कृतघ्नता थी। फलत आचार्यों ने अपनी मा की स्तुति तो की, पर बचे हुए शब्दो मे उनके लिए कही भी देश, नगर, वन, भूत-प्रेत, रवि, शशि का वर्णन ही प्रकृति चित्रण हो जाता। इतना ही क्यो अपने शिष्यो को अनुभूति के अभाव मे बिलखता देख कर आचार्य ने पुकार लगाई कि वे जहा चाहें वनो का वर्णन कर दें। इसमे कोई जोखिम नही पर उन बेचारो ने वन भी

तो देखा हो। अब सहमे रहे आचार्य को उन पर बड़ी दया आई और वन की वस्तुएँ गिनाने लगे"—

मुगनि, इव वन जीव बहु भूत प्रेत भय भीर।
निलन भवन, वल्ली, विटप दल-बरनहु मति धीर॥

आधुनिक काल में प्रकृति को उपेक्षित नारी के पद से हटा कर सदाशया और सम्मान्या के पद पर प्रतिष्ठित किया। भारतेन्दु ने प्रकृति को पर्याप्त महत्व दिया, भले ही वे अलकारो के मोह मे आकर प्रकृति-वर्णन मे रमे हो। 'तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये' जैसी पक्तियो में यही बात है। श्रीधर पाठक उस समय के सबसे अच्छे प्रकृति चित्रकार थे। उन्होंने काश्मीर सुषमा' नामक रचना के माध्यम से अपने प्रकृति प्रेम को प्रकट किया। उनकी ये पक्तिया देखिये—

"प्रकृति यहा एकान्त बैठि निज रूप सवारति।
पल-पल पलटति भेस छनिक छवि छिन-छिन धरती।
विमल अम्बु सर मुकुरन मह मुख विम्ब निहारति,
अपनी छवि पै मोहि आप ही तन मन वारती।

द्विवेदी युग मे द्विवेदी जी ने कवियो को प्रकृति वर्णन की ओर प्रेरित किया। उन्होंने तो कवियों को अच्छी खासी फटकार बताई और कहा—' चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त, जल अनत आकाश अनत पृथ्वी, सभी से उपदेश मिल सकता है और सभी के वर्णन से मनोरजन हो सकता है फिर क्या कारण है कि इन विषयो को छोडकर कोई-कोई कवि स्त्रियो की चेष्टाओ का वर्णन करना ही कविता की चरम सीमा समझते हैं।" इस फटकार का परिणाम यह निकला कि हरिऔध, गुप्त और रामनरेश त्रिपाठी जैसे कवियो ने प्रकृति की भिन्न छवियो को कागज पर उतारा। ऐसी पक्तियो को देखिये जो प्रेरणा बनकर कवियो के लिए वरदान सिद्ध हुई।

कविता वह हाथ उठाये हुए,
चलिए कविवृन्द बुलाती वहा।

छायावादी युग मे तो प्रकृति को ओर सजल और स्निग्ध दृष्टि से देखा गया। पीछे की उपेक्षा छायावाद में ममता और मोह मे बदल गई। पत, प्रसाद, निराला और महादेवी की कल्पना-कानन की रानी प्रकृति ही तो है।

पत और प्रकृति—पत को प्रारभ से ही प्रकृति से अनुराग रहा है। वे प्रकृति के सहारे ही अपने व्यक्तित्व और कृतित्व को विकसित करते रहे हैं। उनकी काव्य चेतना का प्रेरणा-बिन्दु ही प्रकृति रहा है। आधुनिक कवि की भूमिका इस प्रकृति मोह की साक्षी है। पन्त प्रारभ से ही प्रकृति के पुजारी रहे हैं। कविता करने की प्रेरणा मुझे सब से पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है, जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्माचल प्रदेश को है। कवि जीवन से पहले भी मुझे याद है, मैं घंटो एकान्त में बैठा प्रकृति के दृश्यो को एक-टक देखा करता था, और कोई अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर एक अव्यक्त सौन्दर्य

का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था। जब कभी मै आखें मूंदकर लेटता था, तो वह दृश्यपट, चुपचाप मेरी आखो के सामने घूमा करता था। अब मै सोचता हू कि क्षितिज मे सुदूर तक फैली एक के ऊपर एक उठी ये हरित नील धूमिल कूर्मांचल की छायाकित पर्वत श्रेणियाँ जो अपने शिखरो पर रजत मुकुट हिमाचल को धारण किये हैं और अपनी ऊंचाई से आकाश की अवाक नीलिमा को और भी ऊपर उठाये हैं, किसी भी मनुष्य को अपने महान् नीरव समोहन के आश्चर्य मे डुबाकर कुछ काल के लिए भुला सकती हैं और यह शायद पर्वत प्रान्त के वातावरण का ही प्रभाव है कि मेरे भीतर विश्व और जीवन के प्रति एक गभीर आश्चर्य की भावना, पर्वत ही की तरह, निश्चित रूप से अवस्थित है। प्रकृति के साहचर्य ने जहा एक ओर मुझे सौन्दर्य, स्वप्न और कल्पनाजीवी बनाया, वहा दूसरी ओर जनभीरु भी बना दिया है।"[1]

कहने की आवश्यकता नही कि पत ने प्रकृति को महत्व दिया है और इसी महत्व के दौरान वे प्रकृति के कवि माने गये हैं। पत को प्रकृति से और प्रकृति को पन्त से अलग करना आसान काम नही है। प्रकृति का यह मोह पन्त की प्रारंभिक रचनाओ मे देखा जा सकता है। वीणा और पल्लव का कवि पूर्णत प्रकृति का ही कवि है। प्रकृति निरीक्षण से कवि को अपनी भावनाओ की अभिव्यक्ति मे सहायता मिल गई है। कवि का कथन है कि प्राकृतिक चित्रणो मे प्राय मैंने अपनी भावनाओ का सौन्दर्य मिलाकर उन्हे रजन्द्रिक चित्रण बनाया है। कभी-कभी भावनाओ को ही प्राकृतिक सौन्दर्य का लिबास पहना दिया गया है प्रकृति को मैंने अपने से अलग सजीव सत्ता रखने वाली नारी के रूप मे देखा है। कभी मैंने जब प्रकृति से तादात्म्य किया, तब मैंने अपने को भी नारी के रूप मे अंकित किया है। मेरी प्रारंभिक रचनाओ मे इस प्रकार के हिप्नोटिज्म के अनेक उदाहरण मिलेगें।

पत प्रकृति के कोमल पक्ष के ही पुजारी बन सके है। अपवाद स्वरूप 'परिवर्तन' जैसी कविताओ मे वे उसके परुष रूप की ओर आकर्षित हो सके हैं। कारण कवि सघर्षप्रिय और निराशावादी नही रहा है। यदि ऐसा होता तो उसे 'Nature Red in Tooth and Claw' वाला कठोर रूप जो जीवन विज्ञान का सत्य है उसे अपनी ओर अधिक खीचता। वीणा की प्रकृति परक कविताओ में छोटी-मोटी प्रकृति की वस्तुओ जैसे फूल पत्ते, चिड़िया, बादल, इन्द्रधनुष, ओस-तारे, नदी, झरने, उषा सन्ध्या, कलरव, मर्मर और निशा आदि का वर्णन मिलता है—

छोड द्रुमो की मृदु छाया
तोड प्रकृति से भी माया।

बाले तेरे बाल-जाल मे कैसे उलझा दू लोचन ? "उस समय का मेरा मन सौन्दर्य-ज्ञान उन ओसो के हसमुख वन सा था जिस पर स्वच्छ

---

1. आधुनिक कवि की भूमिका—पृ० २

निर्मल स्वप्नो से भरी चादनी चुपचाप सोयी हुई हो । उस शीतल वन मे जैसे अभी प्रभात की सुनहली ज्वाला नही प्रवेश कर पायी थी ।" पल्लव प्रकृति का ही काव्य है । प्रकृति सौन्दर्य और प्रकृति प्रेम की अभिव्यजना पल्लव मे अधिक प्राजल और परिपक्व रूप मे हुई है । वीणा की रहस्य प्रिय बालिका परिवर्तन के द्वार पर आ खडी होती है । सोने का गान, निर्झर गान, मधुकरी, निर्झरी, विश्व-वेणु-वीचि विलास आदि रचनाओ मे वह प्रकृति के रग अगन मे अभिनय करती सी दिखाई देती है । पल्लव की यह रचना देखिये—

मेरा पावन ऋतु सा जीवन
मानस-सा उमडा अपार मन
गहरे, धु धले, धुले सावले
मेघो से मेरे भरे नयन ।
इन्द्रधनुष सा आशा का सेत,
अनिल मे अटका कभी अछोर,
कभी कुहरे-सी धूमिल घोर
दीखती भावी चारो ओर ।

पल्लव की आसू कविता भी ऐसी ही है । पल्लव की प्रकृति के भीतर किसी रहस्यमय सत्ता को स्वीकार किया गया है । मौन निमत्रण इसका सफल उदाहरण है । 'नक्षत्र' और 'बादल' मे प्रकृति वर्णन उत्प्रेक्षा अलकार के सहारे किया गया है ।

गु जन मे कवि धरती पर आकर विहार करने लगता है । परिणामत वह प्रकृति मे मानव जीवन की छाया देखता है । 'लाई हू फूलो का हार, लोगी मोल लोगी मोल' मे प्रकृति स्वय तीनो प्रधान ऋतुओ के सौन्दर्य का दर्शन करती है और अन्त मे 'कुछ भी आज न लूगी मोल' उत्तर देकर प्रकृति की अनन्य विनम्र शीलता का परिचय मिलता है । एक तारा और नौका विहार गु जन की ऐसी कविताए हैं जिनमे प्रकृति के सुन्दर चित्र तो हैं किन्तु एक उदासी सर्वत्र विद्यमान है । 'चादनी' भी पत के लिए जग के दुख दैन्य शयन पर एक स्मरणा जीवन बाला है । युगात एक ऐसी रचना है जो युग की समाप्ति की सूचना है । इसमे कवि यही कहता है कि जीवन का रस लो, वही सर्वोत्तम लक्ष्य है । युगान्त की सर्वाधिक प्रभावित करने वाली रचना है ।

बासो का झुरमुट
सध्या का झुटपुट
हैं चहक रही चिडिया
टीवी-टी-टुट्-टुट् टु ट्

युगवाणी मे कवि का दृष्टिकोण बदला हुआ दिखाई देता है । वह यहा आकर यथार्थ की बाहो मे उलझ जाता है । उसने स्वय कहा है—युगवाणी मे मैंने टेढी-मेढी पतली सूखी टहनियो के वन का दूर तक फैला हुआ [illegible] सौन्दर्य देखा, जिनमे नवप्रभात की सुनहली किरणे [illegible] की तरह लिपटी हुई हैं जहा ओसो के [illegible]

हुए अश्रु, आगत स्वर्णोदय की आभा मे हसते हुए से दिखाई देते है।" कहने की आवश्यकता नही कवि पन्त का दृष्टिकोण प्रकृति के प्रति बदल गया है। यो कुछेक प्रकृति परक कविताए भी इस सकलन मे है। कवि प्रकृति के प्रति कहता है—

हार गई तुम
प्रकृति !
रच निरूपम
मानव कृति।
निखिल रूप रेखा स्वर
हुए निछावर
मानव के तन, मन पर
धातु, वर्ण, रस, सार।

चिन्तन के क्षेत्र मे बौद्धिकता की ओर कवि का झुकाव रहा है परिणामत प्रकृति वर्णनात्मक नही है वह तो प्राकृतिक शक्ति के रूप मे प्रयुक्त है। 'ग्राम्या' मे प्रकृति का अनुपम शृगार है, भले ही वह लोक जावन से सप्रक्त हो। 'ग्राम्या' की 'ग्राम श्री मे गावो की सब्जी, पौधे और पक्षियो तक के रम्य वर्णन किये गये हैं। फैली खेतो मे दूर तलक मखमल की कोमल हरियाली से लेकर फूले फिरते हो फूल स्वय उड उड वृन्तो से वृन्तो पर तक मे प्रकृति का सौन्दर्य देखते ही बनता है। ग्राम्या की सध्या के बाद कविता भी प्रकृति चित्रण की दृष्टि से बडी महत्वपूर्ण रचना है। स्वर्ण किरण और स्वर्णधूलि मे प्रकृति केवल प्रतीको का काम देती है। यहा पर उसका वैसा विशद वर्णन नही हो सका है जैसा कि पल्लव कालीन कविताओ मे मिलता है। स्वर्ण किरण मे हिमालय का वर्णन लीजिए तो स्पष्ट होगा कि प्रकृति प्रतीकवत् रह गई है। प्रभात का चाद शीर्षक रचना की ये पक्तिया भी देखिये।

नीलपक मे धसा अ श जिसका उस श्वेत कमल-सा शोभन
नभो नीलिमा मे प्रभात का चाद उनीदा हरता लोचन
इसमे वह न निशा की आभा, दुग्ध फेन सा यह नव कोमल
मानवीय लगता नयनो को स्नेह पक्व सकरुण मुख मण्डल।

यह वर्णन सूचित करता है कि कवि मानव की याद करता दिखाई देता है। स्वर्णधूलि की प्रकृति के विषय मे शातिप्रिय द्विवेदी ने लिखा है कि यहा कवि के अर्द्ध चेतन मे लामार्क की परिस्थितियो के अनुकूल अपने आपको ढाल लेने वाले ऊट की लचीली गर्दन मे जिराफ की सख्त गर्दन का विकासवाद विषयक सिद्धान्त झाक रहा है। प्रकृति के सूक्ष्म, मसृण, मधुर पक्ष मे जाकर अब एक बौद्धिक स्थिति प्रज्ञता आ गई है। 'क्रोटन की टहनी' मे पन्त ने लिखा है—पौधे ही क्या मानव का भी यह भू-जीवी नि सशय और चादनी को देखकर अब नौका विहार वाला उल्लास भी लुप्त हो गया है और स्थविर औदासीन्य छाने लगा है, यथा—

शरद चाँदनी।
विहस उठी मौन अतल

नीलिमा उदासिनी ।
जगी कुसुम कलि थर् थर्
जगे गंध सिहर-सिहर ।
शशि-ग्रास सी प्रेयसि स्मृति
जगी हृदय-ह्लादिनी ।

युगपथ मे कवि का दृष्टिकोण पर्याप्त बदला हुआ है, किन्तु फिर भी कवि कभी-कभी अपनी रोमांटिक भावना को प्रकाशित कर ही देता है। 'मानसी' की पंक्तिया इसी रंगीलेपन को उद्घाटित करती है। 'अन्तर घन' शीर्षक से लिखा गया गीत भी प्रकृति के इसी रोमांटिक मूड को व्यक्त करता है। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी ने लिखा है कि इधर पन्त में प्रकृति और मनोभावों का ऐसा उत्कृष्ट समन्वय बहुत कम मिलता है। 'युगान्तर' मे भी 'युगवाणी' की तरह से ही बौद्धिकता की अपेक्षा आध्यात्मिक दर्शनाभास वाली चिन्ता का कुहासा फैला हुआ है। कवि का बाल-प्राकृतिक भाव जैसे निर्भ्रान्त अधिक शिक्षित अथवा यों कहे कि तिरोहित सा हो गया है। यहा आकर पंत जीवन और जगत की समस्याओ मे समन्वयात्मक समाधान खोजने मे लगे हैं।

उत्तरा मे आकर नासर्गिक विषाद का भाव पर्याप्त गहरा हो गया है। इतने पर भी शरद ऋतु के तीन चित्र 'शरदागम', शरद-चेतना और 'शरदश्री' शीर्षक से मिलते हैं। ये प्रकृतिचित्र रमणीय अवश्य है, किन्तु फिर भी प्रतीकाश्रित होने के कारण बहुत ज्यादा मनोहरता नही आ पाई है। कही-कही पल्लव की प्रकृति वर्णन की शब्दावली भी दिखाई दे जाती है—

मर्मर करते तरुदल मर्मर
कलकल झरते निमल निर्झर।
कुह कुह उठती कोमल ध्वनि,
गुंजन रह रह भरते मधुकर।

कला और बूढा चांद मे भी प्रकृति की कुछ रचनायें दिखाई देती है। सबसे बडी बात तो यह है कि कवि पन्त अपने लोकायतन मे भी प्रकृति से अलग नही हुए हैं। 'ग्राम्या' के सदर्भ से ही इन पंक्तियों को पढा जा सकता है—

अध गदराये वन तरुओ पर।
गंध मत्त मडलाते अलि दल।
सूंघ आम्र मंजरियो का मुख।
जाग रहे गा-गा नर कोयल।

इसके साथ ही इन पंक्तियों को भी पढिये प्रकृति का शुद्ध रूप दिखाई देता है। कवि की दृष्टिगत सूक्ष्मता इस वर्णन मे देखी जा सकती है। 'लोकायतन' की ये पंक्तियाँ अविस्मरणीय हैं—

आस-पास थे खेत, सुहाती
खडी अंगूठे के बल अरहर,

भरमाता चाँदनी रात मे
अलसी के फूलो का सागर।
गोरी म:रो पर परियो सी
सुरग तितलिया फिरती चचल

प्राय कहा जाता है कि पत का प्रकृति प्रेम उनकी परवर्ती रचनाश्रो मे समाप्त हो गया है, किन्तु प्रोफेसर हरिचरण शर्मा ने अपनी कृति समीक्षा और मूल्याकन मे लिखा है—"यदि कुछ गहराई से देखें तो यह प्रकृतिगत सौन्दर्य आगे की 'ग्राम्या', अतिमा, 'उत्तरा' और यहा तक कि लोकायतन में भी विद्यमान है। लोकायतन महाकाव्य के अनेक स्थल ऐसे हैं जहा प्रकृति का स्वरूप 'पल्लव' और 'वीणा' की कविताओं की तुला पर टिक सकता है। रूप रग का उतना ही वैभव और उल्लास इस महाकाव्य मे है जितना कि इनकी प्रारभिक प्रकृति परक कृतियो मे।"

विविध रूप—प्रकृति को काव्य मे कई रूपो मे प्रस्तुत किया जाता है। कभी तो उसके परुष रूप को और कभी कोमल रूप को वर्णित किया जाता है। इतना ही नही प्रकृति वर्णन के विविध रूप को कवियों ने अपने काव्य मे अपनाया है। प्रकृति वर्णन की पद्धतिया इस प्रकार हैं—

१. आलम्बन रूप २ उद्दीपन रूप ३. अलकार रूप ४ रहस्यात्मक रूप ५ उपदेशात्मक रूप ६ मानवीकरण ७ बिम्ब-प्रतिबिम्ब रूप ८. पृष्ठभूमि के रूप ९ प्रतीक रूप १० मानवीय भावनाओ की सहचरी के रूप ११ दूतिका के रूप।

१ **आलम्बन रूप**—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल प्रकृति के आलम्बन वर्णन के बहुत पक्षपाती थे। उन्होने कहा था कि अनत रूपो से भरा हुआ प्रकृति का विस्तृत क्षेत्र उस 'महामानव' की कल्पनाओ का अनत प्रसार है। सूक्ष्मदर्शी सहृदयो को उसके भीतर नाना ावो की व्यजना मिलेगी। नाना रूप जिन नाना भावो की सचमुच व्यजना कर रहे हैं, उन्हें छोड अपने परिचित अन्त कोटर की वासनाओ से उन्हे छोपकर एक झूठे खिलवाड के ही अन्तर्गत होगा। यह बात मैं स्वतन्त्र दृश्य विधान के सम्बध मे कह रहा हू जिसमें दृश्य ही प्रस्तुत विषय होता है। जहा किसी पूर्व प्रतिष्ठित भाव की प्रबलता व्यजित करने के लिए ही प्रकृति के क्षेत्र से वस्तु व्यापार लिए जायेंगे, वहा तो वे उस भाव में रंगे दिखाई ही देंगे। पद्माकर की विरहिणी का यह कहना कि 'किसुक गुलाव कचनार और अनारन की डारन पै डोरत अ गारन के पु ज हैं,' ठीक ही है किन्तु बराबर इसी रूप मे प्रकृति को देखना दृष्टि को सकुचित करना है। अपने ही सुख दुख के रग मे रगकर प्रकृति को देखा तो क्या देखा? मनुष्य ही सब कुछ नही है। प्रकृति का अपना रूप भी हैं।

पत के प्रकृति के आलम्बन रूप का पर्याप्त वर्णन किया है। हां, इस प्रणाली मे उन्होने सश्लिष्ट प्रणाली अपनाई है। यथातथ्यात्मक चित्रण की कमी है। पत की 'बादल', आसू, बसतश्री, परिवर्तन और गु जन आदि की

अनेकानेक रचनाओं में प्रकृति का संश्लिष्ट रूप देखते ही बनता है।

सुरपति के हम ही हैं अनुचर
जगत्प्राण के भी सहचर,
मेघदूत की सजल कल्पना
चातक के चिर जीवन धर।

इसी प्रकार का संश्लिष्ट वर्णन 'वायु के प्रति' रचना की इन पंक्तियों में देखा जा सकता है—

प्राण ! तुम लघु-लघु गात।
नील नभ के निकुंज में लीन,
नित्य नीरव निस्संग नवीन,
निखिल छवि की छवि ! तुम छविहीन
अप्सरा सी अज्ञात !

प्रकृति का शुद्ध वर्णन भी 'पर्वत प्रदेश में पावस' कविता की इन पंक्तियों में देखा जा सकता है। पावस में प्रकृति का क्षण-क्षण परिवर्तित रूप इस प्रकार चित्रित किया गया है।

पावस ऋतु थी पर्वत प्रदेश
पल-पल परिवर्तित प्रकृति वेश
मेखलाकार पर्वत अपार
अपने सहस्र दृग सुमन फाड
अवलोक रहा है बार बार
नीचे जल में निज महाकार
जिसके चरणों में पला ताल,
दर्पण सा फैला है विशाल।

इस प्रकार प्रकृति के आलम्बन पक्ष का वर्णन पंत काव्य में पर्याप्त मात्रा में मिल जाता है। यथातथ्यात्मक चित्रण की दृष्टि 'बांसों का झुरमुट' और ग्राम्या की ग्राम श्री विशेषोल्लेख्य है।

२ उद्दीपन रूप—प्रकृति का उद्दीपन रूप पंत काव्य में पर्याप्त मात्रा में मिलता है। जिस किसी स्थल पर प्रकृति मानव भावनाओं को अधिकाधिक जागृत और उद्दीप्त करती है वहीं पर प्रकृति का उद्दीपन रूप चित्रित किया जाता है। उद्दीपन के अन्तर्गत भी व्यक्ति की सुखद और दुखद दो प्रकार की मनोवृत्तियां हो सकती हैं। आदि काल से प्रकृति का यह उद्दीपन रूप काव्य में आता रहा है। हिन्दी के शृंगार-कवियों ने तो प्रकृति बाला को उद्दीपन के द्वारा ही अधिक व्यक्त किया है। पन्त ने भी कविताओं में अपनी मानसिक स्थिति के अनुसार प्रकृति को देखा है। वियोगी कवि विषम परिस्थितियों प्रकृति के प्रति विराग का अनुभव करता है। उस समय उसे प्रकृति के मधुर रूप के प्रति आकर्षण नहीं होता है। प्रिय का वियोग जीवन का विषाद उसकी समस्त सरसता का अपहरण कर लेता है। कोकिल वियोग दग्ध हृदय में वेदना को तीव्र करती है और वसन्त उसे उत्तप्त बनाता है।

काली कोकिल सुलगा उर मे
स्वरमयी वेदना का अ गार
आया वसन्त घोषित दिगन्त
करती, भर पावक की पुकार।

इसी प्रकार जब वसन्त की शोभा सर्वत्र बिखर जाती है तो कवि को उपवन के पौधे उद्दीप्त करते हैं। कवि अनुभव करता है कि उपवन अपने यौवन रस को फूलो के प्याले मे भर-भर कर पिलाता है तो नवोढा बाल लहर किनारे पर जाकर थोडा रुकती है फिर आगे सरक जाती है। अत जहा देखो वहा मिलन ही मिलन देखाई देता है। ऐसी स्थिति मे कवि के प्राण व्याकुल हो उठते हैं—

देखता हू जब उपवन
पियालो मे फूलों के
प्रिय भर-भर अपना यौवन
पिलाता है मधुकर को।
नवोढा बाल लहर
अचानक उपकूलो के
प्रसूनो के ढिग रुक कर
सरकती है सत्वर।
अकेली आकुलता—सी प्राण
कही तब करती मृदु आघात
सिहर उठता कृश गात,
ठहर जाते पग अज्ञात।

वसत अठखेलिया करता हुआ पात पात को छेड रहा है, लगता है भौंरे पागल हो गये है, उधर कोकिल अपने पचम स्वर से दिशाओ को भरे दे रही है तब वियोग पूरित हृदय उसे जलाये दे रहा है, जलधरो की मस्ती अब हूक भरे दे रही है, स्वर्णमयी सध्या जतुगृह के समान जलती दिखाई देती हैं। थोडी ही देर मे वातास चलने लगती है और कवि प्राणो की प्राण का सम्पर्क प्राप्त करने के लिए ललक उठता है। उसकी प्रिया गृह-कार्य मे दत्त चित्त है। कवि अनुरोध करता है कि आज तो काम का वक्त नही है, आज तो हमारे-तुम्हारे मिलन का समय है। कारण सर्वत्र सौरभमयी स्थिति उत्पन्न हो गई है—

आज रहने दो यह गृह-काज
प्राण ! रहने दो यह गृह-काज
आज जाने कैसी वातास
छोडती सौरभ श्लथ उच्छ्वास
प्रिये लालस-सालस वातास
जगा रोओ मे सौ अभिलाष॥

इसी क्रम मे 'उत्तरा' की 'शरदागम' शीर्षक रचना भी देखी और पढ़ी जा सकती है।

३ अलकार रूप मे प्रकृति का वर्णन भी पन्त ने किया है। मनुष्य निसर्गत सौन्दर्य प्रेमी होता है। ऐसी स्थिति मे उसे प्रकृति के सुन्दर क्षेत्र से उपमान चुनने का अधिकार बराबर बना रहता है। इसी पद्धति को प्रकृति का अलकारिक रूप कहते हैं। कवि प्रकृति के उपादानो मे अपनी प्रिय का सौन्दर्य देखते रहे हैं। कमल मे मुख की सुषमा, नेत्रों मे मीन की समता, कु चित अलको मे मधुपो का समूह दिखाई देता रहता है। पत छायावादी कवि है और छायावादियो की विशेषता ही यह है कि वे प्रकृति के वर्णन मे आलकारिक वर्णन को अपनाते रहते हैं। पन्त ने अपने इस प्रकार के वर्णन मे नवीनता का परिचय दिया है। केशो के लिए परम्परागत उपमान सर्प, मधुप के साथ-साथ और भी नवीन उपमान जुटाये हैं।

घने लहरे रेशम से वाल,
मलिन्दो से उलझी गु जार,
मृणालो से मृदु तार,
मेघ से सध्या का शृ गार,
वारि से उर्मि उभार,
मिले है इन्हे विविध उपहार।
तरुण तम से विस्तार।

ग्र थि की शशि कला सी वाला के मुख कमल पर वैठे खजन (नयन) बडे ही मनोहारी प्रतीत होते हैं। आसू मे पन्त जी अपने जीवन को पावस ऋतु से उपमित करते हैं। देखिये तो सही—

मेरा पावस ऋतु सा जीवन,
मानस सा उमडा अपार मन,
गहरे, धु धले, धुले सावले,
मेघो से मेरे भरे नयन!
कभी उर मे अगणित मृदु भाव,
कूजते है विहगो से हाय,
अरुण कलियों से कोमल घाव,
कभी खुल पडते है असहाय!

४ उपदेश ग्रहण के रूप मे भी पन्त ने प्राकृतिक सौन्दर्य को देखा है। वे प्रकृति को विशेष महत्त्व देते है और इसलिए कहते हैं कि मनुष्य की शिक्षिका के रूप मे प्रकृति बहुत बडा काम करती है। 'मानव' ने प्रकृति के कण-कण में आदर्श को देखा है, पृथ्वी की क्षमा तथा सहिष्णुता से वह मुग्ध रह गया है, कल कल शब्द करते हुए निर्भरो की गतिशीलता मे उसे जीवन का सदेश मिलता है, वृक्षों और पौधो की उदारता प्रेम मे जीवन की सफलता का रहस्य मिला है। फलत वह सभी को अपना गुरु मान बैठा। प्रकृति के क्रिया कलाप भी मानो उसके आदर्श थे, जो उसको तरह-तरह के उपदेश देते थे। कवियो ने भी मानव-जीवन के लिए आवश्यक शिक्षायें प्रकृति से ग्रहण की है। पन्त भी इस क्षेत्र मे किसी से पीछे नही ह। वे कभी प्रसूनो से तो कभी लहरो से और कभी चीटी से उपदेश ग्रहण करते हैं। देखिये प्रसून और

लहरो को देखकर कवि मानव जीवन के लिए क्या उपदेश ग्रहण करता है। वस्तुत वह अनुभव करता है कि पुष्पो का हसना जीवन के लिए प्रफुल्लता का सदेश देता है तो लहरें और चीटी गतिशीलता और कर्मठता का उपदेश देती हैं। इसी संदर्भ में कवि ने कहा है--

चीटी को देखो ?
+ +
देखो ना किस भाति,
काम करती वह सतत,
दिन भर मे वह मीलो चलती,
अथक कार्य से कभी न टलती,
चिर सक्रिय वह, नही स्थाणु,

इसके साथ ही वह प्रसून और लहरो को देखकर गतिशीलता और प्रफुल्लता का उपदेश ग्रहण करता है। उसने लिखा है--

हस मुख प्रसून सिखलाते,
पलभर तो हस जाओ।
अपने उर के सौरभ से,
जग का आगन भर जाओ।
उठ-उठ लहरें कहती यह,
हम कूल विलोक न पावें।
पर इस उमग मे बह-वह,
नित आगे वढती जावे।

'पल्लव' की प्रसिद्ध कविता 'परिवर्तन' मे पन्त ने प्रकृति के माध्यम से मानव-जीवन के लिए वहुत से उपदेश ग्रहण किये है। प्रकृति मे अचिरता है ठीक वैसे ही मानव जीवन मे भी नश्वरता का गुण विद्यमान है। इसी प्रकार फली फूली डालें जब पत्रहीन हो जाती हैं ले जीवन के यौवन और जरा-दो पक्ष स्पष्ट ही उद्घाटित हो जाते हैं। इसी प्रकार समय की परिवर्तनशीलता और जीवन की क्षणभगुरता आदि के विषय मे भी 'परिवर्तन' कविता मे काफी विस्तृत चर्चा की गयी है। कवि ने लिखा है--

वहा मधु ऋतु की गु जित डाल,
झुकी थी जो यौवन के भार,
अकिंचनता मे भर तत्काल
सिहर उठती जीवन है भार।
आज पावस नद के उद्गार,
काल के वनते चिह्न कराल,
प्रात का सोने का ससार,
जला देती सध्या की ज्वाल।
गू जते हैं सबके दिन चार,
सभी फिर हाहाकार।

कहने का तात्पर्य यह है कि पंत ने प्रकृति के माध्यम से उपदेश ग्रहण किया है। किन्तु पन्त में इस प्रकार के वर्णन की बहुतायत नहीं है। इसका कारण पन्त का सौन्दर्य रूप ही है। वे सौन्दर्य को श्री हीन और रूखा-सूखा नहीं देखना चाहते है, इसी कारण उपदेशात्मकता कम ही मिलती है।

५ रहस्यात्मक रूप—'कालरिज' की मान्यता थी कि कवि को थोड़ा बहुत रहस्यात्मक होना ही चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं रहता है तो फिर वह कवि नाम का अधिकारी नहीं है। प्राय देखा जाता है कि कवि किसी वस्तु का वर्णन करते-करते उसी परमतत्त्व की ओर इंगित करने लगता है। उसकी यही प्रकृति रहस्यात्मक कहलाती है। भागवतकार ने कहा भी है कि एक ही ईश्वरीय तन्तु आकाश, वायु, अग्नि और समुद्र मे समाया हुआ है। कहा गया है—

> खं वायुरग्निं सलिलं महीं च,
> ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
> सरित् समुद्रांश्च हरेः शरीरम्
> यत्किंचिदेतद् प्रणमेदनन्य।

वर्ड्सवर्थ को भी यही अनुभव हुआ था। वह भी मिटते सूर्य, जलधि, वायु, गगन आदि मे एक ही आत्मतत्व गुथा हुआ प्रतिभसित हुआ—

> I have felt.
> A presence that Disturbs me with Joy.
> Of Elevated thoughts, a sense subling
> Of some thing for more deeply Interfused
> Whose dwelling is the light of the setting sun
> And the round ocean and the living air
> And the blue SLy and in the mind of man
> A motion and Spirit that Impels
> All thinking things, all objects of all thoughts
> And rolls through all things

पन्त और प्रसाद भी प्रकृति के रहस्यात्मक रूप के वर्णन मे पीछे नहीं रहे हैं। प्रसाद ने 'हे अनन्त रमणीय कौन तुम' कह कर यही भाव व्यक्त किया है और पन्त ने भी प्रकृति के कण-कण मे एक ही ईश्वरीय सत्ता के विविध रूप देखे हैं। स्तब्ध ज्योत्स्ना में इङ्गित करते हुए नक्षत्र मानो उसका रहस्य जानने का मौन निमन्त्रण देते हैं। मधु ऋतु मे जब वसुधा के यौवन पर भ्रमर मतवाला हो जाता है तब विधुर उर के मृदु उच्छ्वासों की तरह खिलते हुए प्रसूनों की सुगंधि के माध्यम से न जाने कौन 'अज्ञात शक्ति' उसका सन्देश सुनाती है। वायु जब क्षुब्ध जल शिखरों को सागर मे मथ कर फेन बनाती रहती है—बुलबुलों की सृष्टि को बनाती और बिगाड़ती रहती है, तब लहरों के हाथ उठा-उठा कर न जाने कौन उसे पुकारता है—

> क्षुब्ध जल शिखरों को जब वात,
> सिन्धु में मथकर फेनाकार,
> बुलबुलों का व्याकुल संसार,
> बना विथुरा देती अज्ञात।

उठा तव लहरो से कर कौन ।
न जाने मुझे बुलाता मौन ।।

इसी प्रकार कवि की ये पक्तिया भी देखिये--

शात सरोवर का उर,
किस इच्छा मे लहरा कर,
हो उठता चचल चचल ?
सोये वीणा के स्वर,
क्यो मधुर स्पर्श से भर भर,
जब उठते प्रतिपल प्रतिपल ।

मानवीकरण के रूप मे---प्रकृति वर्णन के दौरान कवि जब मानवीय भावनाओ का आरोपण करते हैं तो उसे मानवीकरण या 'परमोनीफिकेशन' (Personification) कहते हैं । छायावादी कविता मे मानवीकरण की प्रवृति पर्याप्त मात्रा मे पाई जाती है । पन्त और प्रसाद के मानवीकरण हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधिया हैं । पन्त ने चादनी छाया, सध्या और गगा के जो मानवीकरण किये हैं, वे सदैव याद किये जाते रहेंगे । चादनी का यह मानवीकरण देखिये--

नीले नभ के शतदल पर,
बैठी वह शारद हासिन,
मृदु करतल पर शशि मुख धर,
नीरव, अनिमिष एकाकिनी
वह स्वप्न जडित नत चितवन,
छू लेती अग-जग का मन
श्यामल, कोमल चल चितवन,
जो लहराती जग--जीवन ।।

इसी प्रकार गगा का मानवीकरण किया गया है । कवि पन्त को वह तापस बाला प्रतीत होती है--ऐसी तापस बाला जो 'सैकत शय्या पर श्रात क्लात और निश्चल पडी हुई है । उसकी लहरें, उसके कोमल केश हैं और चन्द्र की रेशमी विभा से पूर्ण वर्तुल लहरें उसकी साडी की सिकुडन है--

सैकत शय्या पर दुग्ध धवल, तन्वगी गगा ग्रीष्म विरल,
लेटी है श्रात क्लान्त निश्चल ।
तापसबाला गगा निर्मल, शशिमुख से दीपित मृदु करतल,
लहरें उर पर कोमल कुतल ।
गोरे अङ्गो पर सिहर-सिहर लहराता तार तरल सुन्दर,
चचल अचल सा नीलाम्बर,
साडी सी सिकुडन-सी जिस पर शशि की रेशमी विभा से भर,
सिमटी है वर्तुल मृदुल लहर ।

प्रतीक रूप में---जो प्रकृति वर्णन पत के काव्य मे मिलता है वह भी बडा मनोहारी है । मानव अपनी स्वाभाविक अभिव्यक्ति के लिए सर्वत्र शब्दो

माचवे ने कहा है कि पन्त मे प्रकृति का रूप सर्वदा एकसा ही रहा हो यह बात नही है। उनकी रचनाग्रो के क्रमिक विकास के साथ-साथ उनका प्रकृति विषयक दृष्टिकोण भी परिवर्तित होता गया है। अपने प्रारम्भिक युग मे कवि ने प्रकृति को मानव से अधिक महत्व दिया है। वह मानव के रूप, सौन्दर्य और इच्छाग्रो से अधिक प्रकृति प्रागण के नाना विहगो, वृक्षो, लताग्रो आदि से मोह करता है। उस समय के कवि पन्त के लिए वायरन के शब्दो मे कहा जा सकता है। 'I love not man less but nature more' ! पन्त तब प्रकृति के सौन्दर्य पर मुग्ध थे, एक बालक की भाति, परन्तु धीरे-धीरे यह काव्य-तरु मजरित हुआ। अपने वसन्त मे उसने ग्राम्या, 'युगवाणी' लिखी अब अपनी परिपक्वावस्था मे, जो एक प्रकार से शिशिर भी है, वे स्वर्णधूल और स्वर्णकिरण लिखते हैं।

पन्त का लोकायतन भी प्रकृति-वर्णन-शून्य नही है। उन्होंने प्रकृति के दोनो रूप—कोमल और परुष, अपनाये हैं। यद्यपि यह ठीक है कि वे कोमल रूप की ओर विशेषत झुके दिखाई देते है। प्रकृति की सुन्दर रचनायें पन्त काव्य की अमूल्य निधिया हैं, किन्तु जहा कवि प्रकृति वर्णन करते-करते दार्शनिक हो गया है, वही पर वह बोझिल और बौद्धिक हो जाने के कारण शुष्क होना चला गया है। नौका विहार, और 'एक तारा' शीर्षक से लिखी गई कवितायें इसी क्रम और सदर्भ मे देखी जा सकती हैं। कवि ने लिखा है—

इस धारा सा ही जग का क्रम,
शाश्वत इस जीवन का उद्गम
शाश्वत है गति शाश्वत सगम।

कहने की आवश्यता नही कि पन्त प्रकृति के सुकुमार कवि हैं, उनके व्यक्तित्व मे सौन्दर्य-चेतना का प्रबलतम अंश है और उनकी सौन्दर्य-चेतना का सर्वोत्तम प्रतिफलन प्रकृति के क्षेत्र मे ही हुआ है।

पन्त काव्य में नारी

आदिम युग से लेकर आज तक नारी के इतिहास ने अनेक मोड लिये है। वह कभी सम्मान्या, कभी उपेक्षिता और कभी अनादृता रही है। भारतीय सस्कृति मे नारी को महान् और आराध्या बताया गया है। कहा गया है कि जहा नारी की पूजा होती है, वही देवताओ का निवास होता है। 'यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' इतने पर भी सत्य यह है कि ससार की परिवर्तनशील चेतना कभी किसी दृष्टिकोण को जन्म और विकास देती है तो कभी किसी विचारधारा को। नारी का इतिहास इसी चेतना का परिणाम है।

छायावादी कविता ही क्यो प्रत्येक कविता मे नारी को स्थान मिला है, चाहे वह बडा हो या छोटा। नारी का महत्व सभी कवियो ने स्वीकार किया है। प्रेम और सौन्दर्य की प्रतिमा नारी मानव की प्रेरिका रही है। विश्व के समस्त श्रेष्ठ कवि नारी के प्रेम सौन्दर्य, त्याग व आत्मोत्सर्ग आदि गुणों के प्रशसक और उद्घोषक रहे हैं। कारण नारी सृजन शक्ति है।

मातृत्व के गुणों से मण्डित होती है। नारी की इसी शक्ति को वड्सवर्थ (Wordsworth) ने पहचाना था, तभी तो उसने कहा था—

She gives me eyes, she gives me ears
And humble cares and delicate fears
A heart, the fountain of sweet tears
And love, and thought and joy

पूर्वाधुनिक काल में नारी को स्थान मिला वह भी किसी एक प्रकार का नहीं रहा है। कारण जीवन के प्रति बदलती दृष्टि ने उसमें सदैव नयी ज्योति व नयी किरण के दर्शन किये हैं। वीर गाथा काल में नारी का पारम्परिक सौन्दर्य ही सामने आया है। "वह व्यक्तित्व विहीन और यशेच्छारत राजा महाराजाओं के लिए मात्र एक युद्ध का बहाना है। उसमें प्रेम है, सौन्दर्य है, त्याग है, करुणा है—पर व्यक्तित्व विहीन। वह केवल पुरुष की छाया ही लगती है, एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखने वाली पूर्ण मानवी नहीं।" भक्तिकाल में भी नारी अस्पृश्य ही बनी रही है। 'मानस' के अमर गायक तुलसीदास ने तो उसे अनादृत समझा तथा यहा तक कह डाला—

ढोल गवार शूद्र पशु नारी।
ये सब ताडन के अधिकारी॥

भक्तिकाल के क्रांति पुरुष कबीर ने भी नारी को पतन का द्वार बतलाया है। वे नारी को कभी सम्मान नहीं दे सके, उन्होंने जी भर कर नारी की निन्दा की। कबीर की दृष्टि में नारी न तो सौन्दर्य का आलोक थी और न प्रेम की पावन प्रतिमा ही थी, वरन् वह तो मानव को निम्नगामी बनाने का एकमात्र साधन है।' वे तो स्पष्ट ही नारी को 'बडा विकार' मानते थे—

नारी तो हमहू करी जाना नही विचार।
जब जाना तब परिहरि नारी बडा विकार॥

रीतिकाल में नारी शृंगार का साधन थी, वासना की पुतली थी। यही कारण है कि उष्ण और मदिर वासनात्मक आकर्षण ही कवियों की दृष्टि का केन्द्र रहा। "रीति काव्य के कवियों की मुख्य धुरी नारी की शरीरयष्टि थी जिससे कि वासना का रंग उस काव्य में गहरी रेखाओं के साथ उभरा है। उनकी नारी न तो कालिदास की शकुन्तला की जैसी वन-कन्या है, न रवीन्द्र की उर्वशी की भांति अर्ध कल्पना और अर्ध-मानवी है, वरन् वह नख से शिख तक मांसल सौन्दर्य की साकार प्रतिमा है। वह नर की अन्तर्वासिनी न होकर मात्र अंकशायिनी है, जिसका लक्ष्य है अपने उन्मद यौवन और मदिर सौन्दर्य से मात्र पुरुष की विविध ऐन्द्रिक संवेदनाओं को तृप्त करना।"

हिन्दी के छायावादी कवि पन्त ने रीतिकाल के इस दृष्टिकोण की निन्दा की है। उन्होंने 'पल्लव' की भूमिका में इस पर पर्याप्त विचार किया है—"भक्ति के स्वर में भारत की जन्म-जन्मांतर की सुप्त मूक आसक्ति बाधा-

विहीन बौछारो से बरसा दी। ईश्वरानुराग की वासुरी ग्रन्थ विलो मे छिपे हुए वासना के विषधरो को छेड-छेडकर नचाने लगी। श्याम तथा राधा की खोज मे सौ सौ परतो मे लपेटी हुई देश की समस्त आवाल वृद्धायें नग्न प्राय कर के भारतीय गृहस्त के वन्द द्वारो के वाहर निकाल दी गई फिर शृ गार कवियों के लिए रह ही क्या गया। उनकी अपरिमेय कल्पना शक्ति कामना के हाथों द्रौपदी के दुकूल की तरह फैल कर नायिका के अ ग-प्रत्यग से लिपट गई। वाल्यकाल से वृद्धावस्था पर्यन्त जव तक कि कोई मृगलोचनी तरस खाकर बखान कह दे उनकी रस-लोलुप दृष्टि केवल नख से शिख तक—दक्षिणी ध्रुव से उत्तरी ध्रुव तक यात्रा कर सकी काव्य का ऐसा काव्य-व्यूह शीशमहल बना दिया कि आर्य नारी की एकनिष्ठ निश्चल पवित्र प्रतिमा वासना के रग विरगे विम्बो में बदल गई, जिनकी भूलभुलैया मे फसकर अपनी सरल, सुशील कृति को पहचानना कठिन हो गया। पवित्र प्रेम का चन्दन सूख गया, भारत का मानस भी दरक गया और उसकी सती इन कवियो की नुकीली लेखनी उस गहरी खुदी दरार मे समा गई, सत्य के भवर मे खो गई। समस्त दुर्वलता का नाम अवला पड़ गया।"

भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग मे रीतिकाल की वासना करीव-करीब समाप्त हो गई। "रीतिकालीन नारी के कपोलो पर जो पान-पीक के धब्बे लगे हुए थे वे द्विवेदी युगीन पवित्रता की सुरभि से सुवासित हो गये। द्विवेदीजी का पवित्रतावाद नारी को संयम और शील के वातावरण मे ले आया। यही पवित्रावादी दृष्टि छायावादियो को प्राप्त हुई है। द्विवेदीजी की पवित्रता से सुवासित नारी की कचनवर्णी देह इन कवियो के लिए विशेष आकर्षण था। छायावादियो ने इस सुन्दर नारी को लपक कर अपने दोनो हाथो से पकड लिया—"उनका एक हाथ तो गगाजल से धुला था, दूसरा इत्र से सुवासित था। एक के स्पर्श से युग की नारी पावन हो गई, दूसरे ने उसे सुगन्धित कर दिया। पावनता और सुगन्ध ने मिलकर नारी का जो गगा-जमुनी रूप छायावाद मे बनाया, वह किसी सीमा तक अपने पूर्ववर्ती युग से श्रेष्ठ कहा जा सकता है।"

पन्त की नारी दृष्टि भी छायावादियो की भाति पवित्रतावाद और सयम से युक्त है। उसमे एक ओर जीन की लालसा विद्यमान है और दूसरी ओर सरलता और सौम्यता की प्रतिमूर्ति वाली नारी है। पन्त नारी रूप के उपासक हैं। उन्होने कई स्थानो पर अपना चित्रण नारी के रूप मे किया है। यह तथ्य पल्लव की प्रारम्भिक रचनाओ मे मिलता है—

घने लहरे रेशम के वाल,
धरा है सिर मे मैने देवि।
तुम्हारा यह स्वर्गिक-शृ गार,
स्वर्ण का सुरभित भार॥

"पल्लव मे कवि का व्यक्तित्व दुहरा है। वह 'नारी' शैशव और यौवन से तदाकार है। अर्धनारीश्वर मे स्वय कवि कही पर नारी है कही पर ईश्वर। जहा पर वह पुरुष है, प्रणयी है, वहा वह अपने ही अर्द्धा श की सुषमा पर

मुग्ध है, अपनी ही छवि पर विस्मित।" कहने की आवश्यकता नही कि कवि नारी के अपूर्व सौन्दर्य पर मुग्ध है, तभी तो वह नारी को 'अकेली' 'सुन्दरता कल्याणि' मानता है—

"स्नेहमयि सुन्दरतामयि,
तुम्हारे रोम रोम से, नारि,
मुझे है स्नेह अपार,
तुम्हारा मृदु उर ही-सुकुमार !
मुझे है स्वर्गागार,
तुम्हारे गुण हैं मेरे गान,
मृदुल दुर्बलता, ध्यान,
तुम्हारी पावनता अभिमान,
शक्ति, पूजन सम्मान,
अकेली सुन्दरता कल्याणि,
सकल ऐश्वर्यों की सधान।"

पन्त की छायावादी कविताओ मे जिस नारी की महिमा गाई गई है, वह ऐन्द्रिय-विलास और भोग से पूर्णत दूर है। इतना ही नही उसमे प्रेम की पवित्रता है और है वह पावनता जो गगा के जल मे होती है या त्रिवेणी की लहरो मे जो सगीत होता है, वही सगीत उनकी नारी की वाणी मे मिलता है। नारी की ऐसी ही पावनता और सगीतमय वाणी 'आसू' कविता मे मिलता है। कवि ने लिखा है—

तुम्हारे छूने मे था प्राण,
सग में पावन गंगा स्नान,
तुम्हारी वाणी मे कल्याणि,
त्रिवेणी की लहरो का गान।

यही भाव 'उच्छ्वास वालिका' मे विद्यमान है। हा, उसमे शैशव का भोलापन भी दिखाई देता है। 'सरलपन ही था उसका मन, निरालापन ही आभूषन' जैसी पक्तियो में यही शुचिता और सरलता देखी जा सकती है। छायावादी रचनाओ मे ही कवि पन्त ने कुछ कविताओ के माध्यम से नारी को 'रहस्यमय' रूप मे भी प्रस्तुत किया है। विन्दु मे सिन्धु का, एक स्वर मे समस्त सगीत का आभास, एक कली मे अखिल वसन्त और धरती पर स्वर्ग के समान मनोरम और पावनता की अनुभूति इसी रहस्यता की ओर सकेत करती है। ग्रन्थि की प्रेम प्रधान कविताओ मे नारी को प्रणय की मूर्ति के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। ग्रन्थि मे जिस अपरिचिता और अनाम नारी का वर्णन है वह प्रणय शून्य नही है, उसमे प्रेम की मादकता भी है और सौन्दर्य की उल्लासमय चमक भी है। नारी-सौन्दर्य के प्रति पन्त का जो दृष्टिकोण है वह मानवीय दृष्टिकोण से विरहित नही है। 'यह सौन्दर्य स्थूल न होकर कवि की अपनी आत्मा से उद्भूत सूक्ष्म अन्तर्जगत का सौन्दर्य है।' 'प्रिये प्राणो की प्राण, कविता में पन्त ने नारी सौन्दर्य का चित्रण बडे ही

भावपूर्ण ढग से किया है ।' यह वह सौन्दर्य है जिसमे न तो शरीरगत वासना की गन्ध है और न कृत्रिमता का लेशमात्र आभास है—

नवल मधु ऋतु निकुज मे प्रात,
प्रथम कलिका सी अस्फुट गात,
नील नभ अन्त पुर मे तन्वि !
दूज की कला सदृश नवजात,
मधुरता मृदुता-सी तुम प्राण,
न जिसका स्वाद स्पर्श कुछ ज्ञात,
कल्पना हो जाने परिणाम ?
प्रिये प्राणो के प्राण ।

इस प्रकार के उदाहरणो से तो यही स्पष्ट होता है कि पन्त की नारी मे जो प्रेम भाव विद्यमान है वह उदात्तीकृत रूप है । यही कारण है कि वह प्रेम को शरीर की भूख नही मानते हैं, अपितु आत्मा की अनिवार्यता समझते हैं । पन्त ने अपनी छायावादी रचनाओ मे नारी को प्रेम और सौन्दर्य की खान माना है—ऐसी खान जो पावनता के रग से रगी हुई है । वह जीवन को प्रेरणा देने वाली शक्ति मानी गई है । उसको पूज्य ही समझा गया है । पन्त ने उसे देवी, मा, सहचर और प्राण सभी रूपो मे आदरणीया माना है । शातिप्रिय द्विवेदी ने ठीक ही लिखा है—'मूल मे नारी एक सहृदय सृजन शक्ति है । सामाजिक सीमाओ के अनुसार उसके अनेक अवस्थान हैं, वह देवी, मा, सहचरी प्राण है । इन विविध रूपो मे मातृत्व का स्थान सर्वोपरि है । नारी के शेष सम्बन्धो मे उसी मातृत्व का सुसस्कृत सामाजिक सगठन है । पारिवारिक दृष्टि से मातृत्व पूज्य है, किन्तु फ्रायडिन दृष्टि से वह भी घृण्य जान पडता है । मनुष्य जड-देह नही, सचेतन प्राणी है, उसकी अनुभूतियो मे अन्तः सज्ञा है । इसीलिए वैज्ञानिक सम्बन्धो को उसने हार्दिक सौष्ठव दे दिया है । काव्य की अप्सरा और विज्ञान की अपरा नारी समाज की वसुन्धरा है—माता, कन्या, बहन और पत्नी ।

प्रगतिवादी रचनाओं में नारी के प्रति कवि का दृष्टिकोण थोडा परिवर्तित रूप मे सामने आता है । कवि नारी को उसकी सामाजिक स्थिति मे देखता है । इस भमिका पर नारी उसे दलित और पतित दिखाई देती है । परिणाम यह निकलता है कि कवि उसकी मुक्ति की कामना करता है—

मुक्त करो नारी को मानव चिरवदिन नारी को ।
युग-युग की निर्मम कारा से, जननि, सखी प्यारी को ।।

श्री शाति प्रिय द्विवेदी ने लिखा है कि छायावाद-युग मे पत ने नारी को उसकी सास्कृतिक महिमा सुषमा में देखा था । छायावाद के बाद ज्यो-ज्यो सामाजिक वास्तविकता स्पष्ट होने लगी, त्यो-त्यो न केवल नारी का बल्कि समस्त मानव-समुदाय का अशोभन मुख कवि के सम्मुख प्रत्यक्ष होने लगा । कवि ने शोषित और पीडित समूह की भाति ही नारी के माध्यम से भी युगो का कदर्थ्य इतिहास देखा है । ऐतिहासिक दृष्टि से आर्थिक स्थिति के

अनुसार समाज की नैतिक सीमाएं निर्धारित होती आई हैं। मध्य युगों की ओर देखकर कवि ने कहा है—

नहीं रहे जीवनोपाय तब विकसित,
जीवन यापन कर न सके सब इच्छित,
नैतिक सीमाएं बहुकर निर्धारित,
जीवन-इच्छा की जन ने मर्यादित।
(युगवाणी से)

वास्तव में नारी एक सम्पत्ति मात्र रह गई तभी तो कवि ने कहा है—

क्षुधा काम वश गत युग ने,
पशु बल से कर जन शासित,
जीवन के उपकरण सदृश,
नारी भी कर ली अधिकृत।
(युगवाणी से)

कवि अनुभव करता है कि नारी नर की छाया भर है। उसके सदाचार की सीमा का प्रमाण उसका शरीर है। उसका अंग-अंग नर के वासना चिन्ह से कलंकित है। वह समाज की इकाई भी नहीं है एक बृहत् शून्य मात्र है। नर की छाया मात्र होने के कारण नर का जीवन-मात्र ही उसका मानदण्ड है। वह नैतिकता और सदाचार की झूठी बेड़ियों से जकड़ी हुई है जिससे उसका मुक्त हृदय समाप्त हो चुका है। कवि नर-नारी दोनों को इस जड़ चेतना से उदबुद्ध होने की प्रेरणा देता है। वह आमन्त्रित करता है कि वह अपने मानव-मन को न खो दें—

धिक् रे मनुष्य तुम स्वच्छ, स्वस्थ, निश्छल चुम्बन,
अंकित कर सकते नहीं प्रिया के अधरों पर ?

जो लोग नारी को केवल 'योनि मात्र' समझते हैं वे असम्माननीय हैं क्योंकि नारी के प्रति यह दृष्टिकोण गर्हित है। नारी को स्वाधीन करना चाहिए। यह इसलिए कि जिससे वह नर पर आश्रित न रहे। इसके साथ ही ऐसा करना इसलिए भी आवश्यक है कि नारी अपने अस्तित्व को भूलकर स्वयं को पुरुष की ही दृष्टि से देखने लगी है। उसकी यही आत्महीनता उसे 'नर की छाया' बने रहने को मजबूर करती है और करती रहेगी। वासना के घेरे में जकड़ी हुई यह नारी पुरुष और नारी के स्वभाविक स्वर्गिक आकर्षण से बहुत दूर जा पड़ी है। पन्त इसी कारण नर-नारी दोनों से आग्रह करते हैं कि 'खोलो वासना के वसन नारी-नर।' मनुष्य जिस स्वाभाविक गरिमा और प्रणयकला को भूल गया है वह उसे पशु-पक्षी से सीखनी होगी—'पशु-पक्षी से सीखो प्रणय कला मानव' जैसी पंक्तियों में यही भाव व्यक्त किया गया है। शान्ति-प्रिय जी के शब्दों में यह आत्मविस्मृत मानव के प्रति कवि का व्यंग्य है। "मनुष्य में मानवीय चेतना तो है ही नहीं, अपनी कृत्रिमता में पशु-पक्षियों से भी निकृष्ट हो गया है। यदि वह पशु पक्षियों की

नैसर्गिक चेतना पा जाय, तो एक स्वाभाविक क्रम से वह पुन: मानवीय मनोविकास की ओर अग्रसर हो सकता है।" कवि प्रेम के निमित्त दैहिक सस्कारो का मानसिक परिमार्जन चाहता है। यद्यपि क्षुधा-तृषा ही के समान युग्मेच्छा प्रकृति प्रवर्तित है, तथापि मनोयोग से कामेच्छा प्रेमेच्छा बनकर मनुजोचित हो जाती है। स्वर्ण किरण मे देह के साथ प्रणय के सम्बन्ध पर प्रकाश डाला गया है--

क्या है प्रणय ? एक दिन बोली--उसका वास कहा है ?
इस समाज मे ? देह मोह का
देह-द्रोह का त्रास जहा है ?
देह नही है परिधि प्रणय की
प्रणय दिव्य है मुक्ति हृदय की
यह अनहोनी गीति
देह वेदी हो प्राणो के परिणय की ?

पन्त शरीर के कलकित होने को मन का कलकित होना नही समझते हैं, इसका प्रमाण है स्वर्णधूलि की पतिता कविता की ये पक्तिया--

मन से होते मनुज कलकित।
रज की देह सदा से कलुषित।।

प्रगतिवादी युग मे पन्त प्रगतिवादियो की ही भाति समाज का गहराई से अध्ययन करते हैं, किन्तु उनका जीवन दर्शन दृष्टिगत ही नही, अन्तर्गत भी है' यही पर वे प्रगतिवादियो से भिन्न हैं। उनकी ऐतिहासिक दृष्टि देखती है योनि मात्र रह गई मानवी, किन्तु सास्कृतिक आत्मा कहती है योनि नही है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित। इसलिए पल्लव की देवि, मा, सहचरि, प्राण युगवाणी मे भी जननि, सखी प्यारी है। पन्त की प्रगतिशीलता मे गार्हस्थिक गरिमा है, आर्योचित आभिजात्य है, सामाजिक साधना है। वे नारी के व्यक्तित्व की स्थापना चाहते हैं। पन्त की अन्तर्दृष्टि मे मध्ययुग की सकीर्ण नैतिकता और आधुनिक युग की अति-भौतिकता दोनो एक ही जैसी निष्प्राण हैं। मध्यम युग की ओर देखकर वे कहते हैं—उसका नैतिक मानदण्ड स्त्री की शरीरयष्टि रहा है। उस सदाचार के एक चचल छोर को हमारी मध्ययुग की सती और हमारी बाल विधवा अपनी छाती मे चिपकाये हुए है और दूसरे छोर को उस युग की देन-वेश्या।"

पन्त ने आधुनिका की निन्दा की है। 'स्वीट पी' मे यह निंदा देखी जा सकती है। आधुनिका निन्दनीय है क्योकि उसका हृदय विकसित नहीं हुआ है, अत वह मानवता के निमित्त बधिरा निष्ठुरा बनकर ही रह गई है। कवि ने आधुनिका की निन्दा और उपेक्षा की है। नरो के समकक्ष रहने और बैठने वाली इस नारी को तितली, विहगी, मार्जारी आदि सभी कुछ कहने को तत्पर है किन्तु नारी नही कह सकता है। कारण उसमे न तो कोई नारीत्व का गुण ही है और न वह सयम व मर्यादा ही बरत सकती है--

तुम सब कुछ हो फूल लहर
तितली, विहगी, मार्जारी
आधुनिके तुम नही अगर
कुछ नही सिर्फ तुम नारी ।

पन्त ने आधुनिक युगीन नारी को भी देखा है और प्राचीन सामन्त युगीन नारी को भी देखा है । वे यह मानते हैं कि भारतीय नारी या तो सामंती युग की शोभादायिनी है, या आधुनिक युग की ऐश्वर्य विलासिनी । उसमे अपने व्यक्तित्व का अभाव है, वह पुरुषो के ही भावो की भागिनी है । इसी से पन्त आज की आधुनिका की भर्त्सना करते हैं और नारी का उज्ज्वल रूप ग्राम नारी की नैसर्गिक सुषमा और शोभा में देख पाते हैं । यद्यपि ग्राम की नारी न शोभा मात्र है न कुसुमादीप मृदुलगात्र न यत्नो से रक्षित और न ही वैभव से पोषित फिर भी वह स्नेह, शील, सेवा, ममता आदि नारी गुणो से परिपूर्ण होने के कारण आधुनिका की तुलना मे कही अधिक श्रेष्ठ है—

वह स्नेह शील सेवा ममता की मधुर मूर्ति,
यद्यपि चिर दैन्य अविद्या तम से पीडित ।
कर रही मानवी के अभाव की आज पूर्ति,
अग्रजा नागरी की यह ग्रामवधू निश्चिन्त ।

वास्तविकता यह है कि आज की शिक्षिता नारी नरो के साथ बैठकर, स्वतन्त्र इच्छा से निर्णय भले ही लेने लगी हो, किन्तु आज भी वह मध्ययुगीन नारी की आत्महीनता से मुक्त नही है । कवि उसे इसी आत्महीनता से ऊपर ले जाना चाहता है । 'ग्राम्या' की निम्नाकित पक्तिया देखिये जिनमे कवि ने नारी को उद्बोधित किया है—

तुम मे सब गुण हैं तोडो अपने भय कल्पित बधन ।
जड समाज के कर्दम से उठकर सरोज सी ऊपर ।
अपने अन्तर के विकास से जीवन के दल दो भर ।
सत्य नही बाहर, नारी का सत्य तुम्हारे भीतर ।।

कवि ने उस नारी को नरक का घर कहा है जो वासना के गर्त में डूबी हुई है तथा जिसे स्वर्गागार कहा है वह शुद्ध सात्विक नारी है । वास्तव मे कवि पन्त नारी को उसके नारीजनोचित गुणो से देखना चाहते हैं— उसकी आत्मा का उत्कर्ष चाहते हैं उससे श्रेय और प्रेम की मिली-जुली भूमिका तैयार करना चाहते हैं । ग्राम्या में कहा भी है—

नारी की सुन्दरता पर मैं होता नही विमोहित ।
शोभा का ऐश्वर्य मुझे करता अवश्य आनदित ।

पत काव्य मे प्रेम भावना

सामान्य परिचय—प्रेम जीवन का सर्वस्व है । जीवन में इसका कितना महत्व है, यह किसी से छिपा नही है । पत छायावादी कवि हैं और इस काव्यधारा की विशेषता रही है—प्रेम, सौन्दर्य और कल्पना का व्यापक

प्रसार। पंत इस प्रसार में किसी से छिपे नहीं रहे हैं। सामान्यत नर नारी के बीच के आकर्षण को प्रेम कहा जा सकता है, किन्तु तभी जब कि यह आकर्षण स्थिर हो जाय। यौवन की उत्तप्त दुपहरी मे नर नारी मे दृष्टि विनिमय होता है तो हृदय कमल खिल-खिल उठता है। जीवन मे हरियाली ही हरियाली छा जाती है। छायावादी कवि प्रकृति के प्रेमी रहे हैं और उसके प्रति प्रेम प्रदर्शित करते समय उनके जीवन मे कुछ ऐसे क्षण भी आये हैं जब कि उन्हे नारी-प्रेम के बीच से गुजरना पडा है। प्रोफेसर हरिचरण शर्मा ने लिखा है कि "पंत की कविता की मूल प्रेरक शक्ति के रूप में जब प्रकृति ने अपना रूप सवारा था तभी प्रेम मकरन्द के रूप मे विकसित पुष्पो के रूप मे आ छिपा। कहने का अर्थ यही है कि पन्त काव्य की सौन्दर्य चेतना का सर्वोत्तम प्रतिफलन प्रकृति के क्षेत्र मे हुआ है—जहा प्रेम है, सौन्दर्य है, प्रकृति के दर्पण मे नारी की छवि देखते-देखते पन्त के हृदय मे प्रेम के अंकुर फूटे हैं। उनकी 'नवल मेरे जीवन की डाल बन गई प्रेम-विहग का वास, पंक्ति इसी भाव की द्योतक है। प्रेम को कई रूपो मे देखा परखा जा सकता हैं। पन्त की 'वीणा' की कविताओं में कवि का प्रकृति प्रेम अभिव्यक्ति पा सका है तो ग्रंथि, पल्लव और गुन्जन मे नारी प्रेम या प्रणय को आसानी से देखा जा सकता है। उनकी परवर्ती रचनाओ मे भी प्रेम कहीं हल्के, कही गहरे रूप मे चित्रित किया गया है।" [समीक्षा और मूल्यांकन से]

सामान्य सी बात यह है कि जो सौन्दर्य का कवि है, वह प्रेम से कटा हुआ नही रह सकता है। पन्त सौन्दर्य के कवि हैं, उनके व्यक्तित्व का कण-कण सौन्दर्य के रंग में रंगा है फिर उनकी चेतना प्रेम विरहित कैसे हो सकती है? अर्थात् नही हो सकती है। वे प्रेम और सौन्दर्य के कवि है। पन्त के अलावा अन्य छायावादियो मे प्रसाद, निराला और महादेवी का काव्य भी प्रेम से अछूता नही है। प्रेम जन्य वेदना व निराशा के चित्र प्रसाद और महादेवी मे भी मिलते हैं। प्रसाद का आंसू वेदना का काव्य है, उसमें प्रेम जनित वेदना के विविध उद्‌गार एक-एक कर सामने आते गये हैं। प्रसाद ने आंसू के प्रारम्भिक पृष्ठ पर ही यह बता दिया है कि घनीभूत पीडा ही इस काव्य की सृजन प्रेरणा है—

जो घनीभूत पीडा थी
मस्तक मे स्मृति सी छाई,
दुर्दिन मे आंसू बन कर वह
आज बरसने आई।

महादेवी के प्रेम मे निराशा का भाव अधिक मुखरित हुआ है। महादेवी की नीरजा मे इसी वेदना का चरमोत्कर्ष देखा जा सकता है। निराला मे मानव प्रेम का प्रसार है।

प्रेम की व्याख्या —प्रेम वह अनुकूल वेदनीय मनोवृत्ति है जो किसी व्यक्ति, अन्य जीव या पदार्थ के सौन्दर्य, गुण, शील, सामीप्य आदि के कारण

उत्पन्न होता है। प्रेम मे रूप का आकर्षण होता है। रूप प्रत्यक्षतः आत्मा से सम्बन्धित होता है। किसी के रूप सौन्दर्य को सुन कर हमारे ऊपर उसका उतना तीव्र प्रभाव नहीं पड़ेगा जितना कि प्रत्यक्ष दर्शन से। दान्ते ने कहा है कि रूप दर्शन मे नारी के प्रेम को पुनर्जीवित किया जा सकता है। प्रेम की वास्तविक स्थिति प्रत्यक्ष दर्शन के बाद ही आती है। रूप दर्शनोपरान्त प्रेमी प्रिय की मधुर वाणी को सुनने के लिए व्यग्र हो उठता है। एक बार उसकी वाणी से परिचित हो जाने के बाद वह उसे बार बार सुन कर भी अतृप्त रहता है।

जिस प्रकार प्रत्यक्ष दर्शन से प्रेम निरन्तर बढता जाता है और आकर्षण की आग और भी अधिक भड़कती जाती है उसी प्रकार स्पर्श से भी प्रेम द्विगुणित हो कर सामने आता है। कहा जाता है—स्पर्श का उतना ही महत्व है जितना रूप दर्शन का। "स्त्री पुरुष के स्पर्श मे विद्युत की तरगे उठा करती हैं, इन तरगो की उत्पत्ति शरीरगत रासायनिक प्रक्रिया द्वारा होती है इसमे ऐन्द्रिय कुण्ठाओ को बहिर्जगत होने का मार्ग मिलता है। फीडलैण्डर की तरह वात्स्यायन ने भी स्पर्श के महत्व को स्वीकार किया है। उनका कथन है—चुम्बनादि प्रासगिक सुख के सहित जो विशेष अगो का स्पर्श होने से फलवती आनन्द की प्रतीति होती है वह प्रधानतया काम है।" प्रथम दर्शन की सौन्दर्यानुभूति होती है उसके मूल मे जबरदस्त शारीरिक आकर्षण निहित है। 'सच्चा प्रेम न तो यौनसभोग है और न केवल शारीरिक आकर्षण ही। इसमे प्रिय और प्रेमी के शरीर, मन और आत्मा मे पूर्ण तादात्म्य स्थापित होता है।' प्रेम की उदात्तता के सम्बन्ध मे भवभूति ने चार बातें बताई हैं—

१: सच्चा प्रेम सुख या दुख मे अद्वैत रहता है।
२ प्रत्येक अवस्था मे वहा हृदय को विश्राम मिलता है।
३: वृद्धावस्था आने पर भी उसमे इसकी कमी नहीं रहती।
४: प्रेम किसी अनिर्वचनीय कारण से प्रादुर्भूत होता है।

छायावादियों में पन्त प्रेम के विविध स्तरो पर दिखाई देते हैं। वे प्रेम की प्रथम दर्शनजन्य स्थिति से गुजरते हुए उदात्त भूमिका पर आते हैं। उनका मानस यौवनारम्भ के क्षणो मे जितना मादक और सरस रहा उतना उसके अवसान पर नहीं। कारण परवर्ती रचनाओ मे पन्त चिन्तन करने लगते हैं। पन्त के काव्य विकास के दौरान भी यह बात स्पष्ट की जा चुकी है कि वे प्रकृति के सुकुमार कवि से ही प्रेम के मादक और उससे भी बौद्धिक कवि बनते गये हैं। यही कारण है कि अधिकाश रचनाओ का प्रारम प्रणय और प्राकृतिक सौन्दर्य से हुआ है, किन्तु अवसान दर्शनोचित मीमासा या चिन्तना मे।

वीणा मे कवि प्रेम की असलियत से बेखबर है। वह प्रकृति के समक्ष किसी अन्य का महत्व मानने को तैयार नहीं है। वह द्रुमो की मृदु

छाया मे सास लेना ज्यादा पसन्द करता है, उसे बालिका के भ्रू-भागो में उलझना रुचिकर नही लगता है।

तज कर तरल तरगो को,
इन्द्र धनुष के रगो को।
बाले तेरे बाल-जाल मे,
कैसे उलझा दू लोचन।

हा, रहस्यात्मक गीतो मे घूमिल प्रेम की हल्की सी झाकी मिलती है! आगे चल कर ग्रथि मे प्रणय भाव विकसित और परिवर्धित दिखाई देता है। ग्रन्थि और पल्लव मे प्रेम के स्वर को प्रणय के नाद ने डुबो दिया। यह कवि की असफलता नही है। यह मानव जीवन की एक स्वाभाविक घटना है। बाला का तिरस्कार कर प्रकृति प्रेम मे लीन रहने की कामना करने वाला व्यक्ति प्रेम की लहरो में बेसुध हो गया। प्रकृति पीछे पड गई। नारी सुषमा प्रधान हो गई। स्वभावत ही प्रणय का नशा बढने पर प्रकृति और ससार विलीन हो जाते है। प्रणय की असफलता ने जलते मे घी का काम किया। कोमल हृदय रो उठा। प्रणय की असफलता के लिए भी कहा जा सकता है विरह है अथवा यह वरदान। एक ओर जहा इस निराशा ने कवि को ससार से विमुख कर दिया, वहा उसकी खोई हुई शक्तियो को झकझोर दिया। कला भी निखर उठी और भाव भी। रूप भी लहरा उठा और हृदय भी। बौद्धिक चेतना अभी सोई हुई थी। कवि के लिए दूसरा आघात था विश्व की क्षणभगुरता का अटट्हास। इसने कवि की बौद्धिक चेतना को भी जगा दिया। फलत गुन्जन मे एक ओर तो ज्योतिर्मय जीवन से जग के उर्वर आगन मे बरसने की प्रार्थना करता है, मन को विश्व वेदना मे प्रतिपल तपने की प्रेरणा देता है तो दूसरी ओर कामिनी से यह विनम्र अनुरोध भी करता है कि—

'आज रहने दो यह गृह काज' किन्तु यह सत्य है कि यहा ग्रन्थि पल्लव जैसा प्रणय का उच्छ्वासित वेग नही। हा, प्रार्थना का स्वर तो वही है जो वीणा मे है, किन्तु अधिक सुरीला और निखरा हुआ।

कवि वीणा से लेकर गुन्जन तक की कविताओ मे प्रेम और उसकी भावनाओ मे ही लीन रहा है। उसने इन दोनों के आलम्बनो—नारी और मानव की यथार्थ दशा का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न नही किया है। ग्रथि एक प्रणय कथा है जिसमे कवि प्रेम की व्याख्या भी करता है और विवेचना भी। कुछ विद्वानो की दृष्टि मे ग्रन्थि की घटना वास्तविक है और कुछ की दृष्टि मे काल्पनिक। स्वय पन्त इसे काल्पनिक मानते हैं। कवि नौका विहार को जाता है। उसकी थोडी सी असावधानी मे नौका डूबने की स्थिति तक ले आती है। सयोग देखिये कि एक युवती, जो वहा है, पन्त को डूबने से बचा लेती है। पन्त नायिका को जैसे ही देखते है वैसे ही उस पर रीझ जाते है, उसके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं। प्रेम का यह प्रारम नाटकीय या फिल्मी ढग का है। सयोग तत्व प्रधान और उसी के आधार पर विकसित यह वर्णन पन्त की प्रेम भावना को स्पष्ट कर देता है। पन्त ने नायिका के

सौन्दय का वर्णन बडे मनोयाग से किया है। पिछले पृष्ठों मे प्रेम के विवेचन के सदर्भ से जिस आकर्षण की बात की गई वह इन पक्तियों मे देखा जा सकता है :—

इन्दु पर उस इन्दु मुख पर, साथ ही
थे पडे मेरे नयन जो उदय से
लाज से रक्तिम हुए थे—पूर्व को
पूर्व था, पर वह द्वितीय अपूर्व था।
बाल रजनी सी अलक थी डोलती
भ्रमित हो शशि के वदन के बीच मे;
अचल रेखाकित कभी थी कर रही
प्रमुखता मुख की सुछवि के काव्य मे!

प्रथम दर्शन मे जो आकर्षण होता है और उसके आधार पर Love at first Sight (प्रथम दर्शन जन्य प्रेम) की जो बात कही जाती है वह भी पन्त की इसी कविता मे है। क्षण भर के लिए दोनो के नेत्रों की भाषा मे बातें होती हैं—दोनो के नेत्र थोडे उठ कर क्षण भर मे ही सहज भाव से नीचे झुक जाते है। आनन्द जग उठता है। नायिका भी प्रेमोन्मत्त हो उठती है। परिणामत उसके मुख मण्डल पर लज्जा की लाली दौड जाती है। वह थोडी सी मुस्कराती है तो उसके कपोलो मे लज्जावश गड्ढे पड जाते हैं। सौन्दर्य की बाढ आ जाती है। कवि की पक्तिया देखिये —

एक पल मेरे प्रिया के दृग पलक
थे उठे ऊपर, सहज नीचे गिरे,
चपलता ने इस विकम्पित पुलक से
दृढ किया मानो प्रणय सम्बन्ध था
लाज की मादक सुरा की लालिमा
फैल गालो मे नवीन गुलाब-से
छलकती थी बाढ सी सौन्दर्य की
अधखुले सस्मित गढो से, सीप से
इन गढो मे—रूप के आवर्त से—
घूम फिर कर, नाव से किसके नयन
हैं नही डूबे भटक कर, अटक कर
भार से दब कर तरुण सौन्दर्य के ?

कहने की आवश्यकता नही कि पन्त ने प्रेम के प्रथम परिचय का जो वर्णन किया है वह बडा आकर्षक है, मूक है। मौन ही के सहारे जो दोनो प्रेमियो की बात कराई गई वह अभिव्यजना का विषय नही है वरन् अनुभूति का विषय है। ग्रथि के इस प्रेम के सम्बन्ध मे डॉ हरिचरण शर्मा के ये शब्द ध्यान देने योग्य हैं-"ग्रथि मे जो प्रेम है उसके मूल मे कर्म सौन्दर्य की योजना की गई है पर मूलत इसमे प्रदर्शित प्रेम उस कोटि का प्रेम है जो पहली दृष्टि मे ही नायक-नायिका के हृदय म घर कर लेता है। कवि ने प्रेम की अनेक व्याख्यायें प्रस्तुत की हैं, उन व्याख्याओ मे प्रेम की अनुभूति पन्त जी

की अनुभूति अपनी अनुभूति है। प्रेम के विषय मे कहा जा सकता है कि वह पास रहने से उतना नही बढता जितना कि दूर रहने से। दूसरी बात जो कवि ने प्रेम के सम्बध मे 'वारि पीकर पूछता है घर सदा' जैसी पक्तियो मे कही है वह बडी स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक है।" [सुमित्रानदन पन्त से उद्धृत]

प्रेम की परिभाषा स्वरूप पन्त की इन पंक्तियो को लिया जा सकता है—

यह अनोखी रीति है क्या प्रेम की,
जो अपागो से अधिक है देखता,
दूर होकर और बढता है तथा,
वारि पीकर पूछता है घर सदा ?
....
कौन दोषी ? यही तो अन्याय है,
वह मधुप विध कर तडफता है, उधर,
दग्ध चातक तरसता है-विश्व का,
नियम है यह, रो अभागे हृदय ! रो !!

'ग्रंथि' असफल प्रेम की कहानी कहने वाली कृति है। प्रेमिका जब पराये घर जाने लगती है तो प्रेमी का हृदय टूक-टूक हो जाता है। प्रेम की दुनिया के इस व्यापार को भी पन्त ने काव्य मे वर्णित किया है। प्रेमी और प्रेमिका चाहते हैं परस्पर मिलन—शाश्वत सगम किन्तु मिलता है विरह-कष्ट का ससार। प्रेमी अनुभव करता है कि शैवलिनि सिंधु से मिलने जा रही है अनिल गगन से मिलने को व्याकुल है और चन्द्रिका की छिटकी तरगो के अधरो का पान कर रही है किन्तु वह (प्रेमी) हृदय मे शून्यता का अनुभव कर रहा है—

शैवलिनी ! जाओ मिलो तुम सिंधु से,
अनिल ! आलिगन करो तुम गगन का,
चन्द्रिके चूमो तरगो के अधर,
उडुगणो ! गाओ पवन वीणा बजा,
पर हृदय ! सब भाति तू कगाल है,
जा रो, किसी निर्जन बिपिन मे बैठकर।

'पल्लव' मे भी प्रेम विषयक कवितायें हैं उच्छ्वास और आसू। उच्छ्वास ग्रंथि की ही पुनरावृत्ति है-वही असफल प्रेम की कहानी। आसू मे भी कवि उसी को स्पष्ट कर रहा है—

आह यह मेरा गीला गान,
वर्ण वर्ण है उर की कम्पन,
शब्द-शब्द है सुधि का दशन,
चरण-चरण है आह,
कथा है कण-कण करुण थाह।

कवि विरह के क्षणो मे जीवित है। कवि अपने प्रेमी जीवन की

विभिन्न अनुभूतियो मे गोजित है। उनकी याद आते ही उनके मुख मे ये शब्द निकलते है--

सिहर उठना कृशगात,
ठहर जाते है पग अज्ञात।

कवि का दुखी मन सर्वत्र अपने दुख की प्रतिकृति देखता है। स्वाभाविक ही तो है कि व्यक्ति का दुख उसका दुख हो जाता है और फिर उसे समस्त वातावरण अपने ही समान दुखी और व्यथातुर दिखाई देता है। पन्त ने इस स्थिति का भी वर्णन किया है। उसे गगन के हृदय मे भी प्रेम जनित घाव दिखाई देते हैं, तारागण प्रेम मे प्रतीक्षारत और चन्द्रमा की चितवन में मिलन की आकाक्षा का आभास होता है--

गगन के उर मे भी है घाव,
देखती तारायें भी राह,
बधा विद्युत छवि मे जलवाह,
चन्द्र की चितवन मे भी चाह,
दिखाते जड भी तो अपनाव,
अनिल भी भरती ठडी आह।

डॉ० हरिचरण शर्मा के शब्दो मे "आसू के विरह मे भी पावनता है। कवि ने प्रेम को गगाजल के समान पवित्र बताया है पर ससार की कलिमा उसे पाप से विदूषित करना चाहती है। कवि तो अपनी प्रेयसी की मूर्ति पलकों मे सवार कर उसके रूप का पान करता रहता है। 'पल्लव' की स्मृति नामक कविता मे प्रेम का यही रूप चित्रित है, जो आसू और उच्छ्वास के प्रेम से सम्बध रखता है।"

'पल्लव' के बाद के गीतो मे असफल प्रेम की व्यजना हुई है! गुजन मे भावी पत्नी के प्रति कविता में सयोग के लिए उल्लसित और मादक प्रेम का वर्णन है। "शैशव में अकुरित होने वाले यौवन को छाया मे अधखिले अगो पर" कवि की दृष्टि रुक-रुककर पडती रही है। गुजन तक आते-आते कवि के मन का विषाद छूट जाता है। इसलिए वह अपनी प्रेमिका की मधुर मुस्कान की स्मृति में कविता पर कविता लिखता चला जाता है। बसन्त मास मे वह प्रेयसी की प्रतीक्षा मे समय बिताता देखा जा सकता है। उषा, सध्या मुकुल, कोकिल आदि सभी आशान्वित हैं कि प्रेयसी से मिलन अनिवार्यत होगा--

तुम आओगी आशा मे,
अपलक हैं निशि के उडुगण!
आओगी अभिलाषा से,
चचल चिर नव, जीवन क्षण।

प्रेम जनित वियोग को अभिव्यक्त करने वाली ये पक्तियां देखिये जिनमें मार्मिकता छिपाये नहीं छिप सकी है--

"कब से विलोकती तुम को,
उषा आ वातायन से,

सध्या उदास फिर जाती,
सूने गृह के आगन से"

और

लहरें अधीर सरसी मे,
तुमको तकती उठ-उठकर,
सौरभ समीर रह जाता,
प्रेयसि ठन्डी सासें भर ।

यह विराट प्रतीक्षा मिलन मे वदल जाती है । सयोग के क्षण आ पहुचते हैं । पवन वहने लगता है, वातावरण मादक हो उठा है, किंतु प्रेयसी को प्रेमी से बात करने तक की फुर्सत नही है । प्रेमी का सुरभित वातावरण मे शान्त और मौन धारण किये वने रहना सभव नही है--हो भी कैसे जब चारो ओर से शीतल हवा के झोंके कानो मे प्रेम की मादक कहानी कह जाते हो और वातावरण की मादक सुगध प्रेमी के हृदय को आच्छादित किये हो तो किस का मन आन्दोलित न होगा ? इसी सन्दर्भ मे प्रेमी का यह आग्रह देखिये जो प्रेम और काम की मिली जुली तस्वीर है—

आज जाने कैसी वातास
छोडती सौरभ-श्लथ उच्छ्वास,
प्रिये लालस-सालस वातास,
जगा रोओ मे सौ अभिलाष !

'लालस-सालस और जगा रोओ मे सौ अभिलाष' की स्थिति तक कवि पहुच तो गया है किन्तु फिर भी उर्दू के आशिको का सा मिजाज उसमे नही आ पाया है । इतना ही क्यो उसमे रीतिपरक शृगार और तज्जन्य वासना भी नही है । ठीक भी है प्रेमी के मन-प्राण वातावरण की गर्मी से चचल भले ही हो गये हो और शरीर का भार भी शैथिल्य और मस्ती आ जाने से भले ही वढ गया हो किन्तु फिर भी उसमे वासना की गध नही है । यहा कवि केवल यह कहकर चुप है कि-"आज क्या तुम्हे सुहाती लाज ?" आगे युगान्त की प्रेम परक रचनाओ मे वासना का ज्वार अवश्य मिलता है । युगात की कविता मे चुम्बन, आलिगन भी आ गया है । "मजरित आमुवन मे नायिका से कवि की भेंट होती है । नायिका के शशिमुख पर छनती हुई ज्योत्स्ना मे वह उसकी मुख सुधा का पान कर रहा था परन्तु उसे अव आगे वढने का साहस नही हुआ तो नायिका ने ही पहल की"—

तुम ने अधरो पर धरे अधर,
मैंने कोमल वपु धरा गोद,
था आत्म समर्पण सरल मधुर,
मिल गये सहज मारुतामोद !

युगात से लेकर ग्राम्या तक कवि ने सजग होकर वहिरग जीवन की अवस्था का अध्ययन किया । प्रणय की आलम्वन नारी की दशा भी देखी और प्रेम के आलम्वन का रूप भी समझा । गत युगो मे पुरुष ने नारी को जड उपयोगी पदार्थ के समान ही पाल रखा था । वह पुरुष की तुष्टि का साधन मात्र थी ।

पुरुष के सभी विधानो ने नारी परतन्त्रता की महिमा का गान किया। राजनीति ने नारी को दवाया, धर्म ने उसे कुचला, समाज ने उसे मिटा दिया। मानव यह भूल गया कि नारी का भी समाज मे कुछ स्थान होता है। नारी की इस दुर्दशा का उत्तरदायित्व मनुष्य पर हैं (डॉ तारकनाथ बाली)।

कहने का अर्थ यह है कि जो समाज नारी को पददलित और कुलटा बनाकर छोड गया हो, वह उसे शुद्ध प्रेम क्या दे सकता है? उसके हृदय में वासना के विषधर भले ही फुफकार उठें किन्तु प्रेम की सरिता का निनाद सभव नहीं है। पन्त प्रेमी कवि हैं, ऐसे प्रेमी कवि जो प्रेम का उदात्तीकृत रूप पसद करते हैं और उसमे स्थायित्व की गरिमा लाना चाहते हैं। नारी जो पुरुष को प्रेमविष्ट होकर हृदय सौंप देती है वह पवित्र प्रेम का भोग करे, समाज में उसी प्रेम के कारण वह आदर पा सके, यही पन्त की कामना है—विचारणा है।

यही कारण है कि युगात के उपरान्त युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्णधूलि और स्वर्णकिरण में कवि प्रेम के ससार को छोडकर मानव और समाज के चिन्तन मे व्यस्त हो जाता है। समाज की हित-चिन्तना उसका विषय वन जाती है। इतने पर भी यह निष्कर्ष देना अनुपयुक्त होगा कि पन्त इस स्थल पर आकर प्रेम को छोड देते हैं। यह सभव नही है क्योंकि पन्त तो सौन्दर्य और प्रेम के कवि हैं। ऐसी स्थिति मे वे कितने ही लोक हित के चिन्तक क्यो न वन जावें किन्तु वीते युगो की प्रेमिल भावनाए उनका दामन नहीं छोड पाती हैं। 'ग्राम्या' की याद शीर्षक कविता मे उसे बीते क्षणो की याद आती है—

नव असाढ की सध्या मे मेघो के तम में कोमल।
पीडित एकाकी शय्या पर, शत भावो से विह्वल,
एक मधुरतम स्मृति पलभर विद्युत सी जलकर उज्जवल
याद दिलाती मुझे हृदय मे रहती जो तुम निश्चल।

स्वर्णकिरण की 'अगुठिता' कविता में प्रणय और नारी का उलझा हुआ रूप सामने आता है। यह प्रेम को विषय बनाकर लिखी गई है। नायिका परकीया है वह पूछती है—

देह नहीं है परिधि प्रणय की।
प्रणय दिव्य है मुक्ति हृदय की।।

तात्पर्य यह है कि प्रेम का सम्बध शरीर से कम आत्मा से अधिक है। देह प्रेम तक पहुंचने का माध्यम भले ही हो, किन्तु सर्वस्व नही है। इसी कारण कवि ने कहा है कि नारी जिसे हृदय देगी उसे शरीर नही और जिसे शरीर देगी उसे हृदय नही। अत प्रणय हृदय की मुक्ति का नाम है। हृदय और शरीर का प्रेम मदन मे किया गया विभाजन अव्यावहारिक है। इसी अव्यावहारिकता के कारण डा० हरिचरण शर्मा ने लिखा है। "यह सही है कि हृदय की मुक्ति ही प्रेम है। प्रेम का सम्बध हृदय से है, शरीर से नहीं,

परन्तु यह भी नही भूलना चाहिए कि जिसके साथ हृदय जाता है उसके साथ शरीर और शरीर के साथ हृदय चला ही जाता है। यदि यह सभव भी हो तो भी यह मानना ही पडेगा कि इन प्रकार का विभाजन आदर्शवादी अधिक है, व्यावहारिक कम। प्रेम जब आदर्श के शिखर पर जा विराजता है तो वह कल्पना की वस्तु बन जाता है। इस विचार बिन्दु से पन्त की प्रेम-भावना एक प्रकार से काल्पनिक ही ठहरती है। सच्चाई यह है कि अपनी परवर्ती रचनाओ मे कवि ने प्रेम को भी चिन्तन के धागो मे लपेट लिया है। पन्त की कवितायें यह स्पष्ट बता देती हैं कि उनके जीवन मे आकर्षण अनेक बार आये हैं, पर कवि का जनभीरु स्वभाव उनमे से किसी को भी चिर स्थायी नही बना सका है। इन आकर्षणो का पता हमे कवि की उन कविताओ से लग जाता है जो 'स्वर्ण धूलि' मे स्मृति स्वरूप लिखी गई है।'[1]

कवि पन्त हृदय की मुक्ति को स्वीकार करते हैं और इसी कारण उनका देह के प्रति आकर्षण नरायनाम है। उनकी प्रेमिका की ये पक्तिया देखिये जिनमे इसी भाव को दुहराया गया है—

तुम हो स्वप्न लोक के वासी,
तुम को केवल प्रेम चाहिए,
प्रेम तुम्हे देनी मैं अबला,
मुझ को घर की क्षेम चाहिए।
हृदय तुम्हे देती हू प्रियतम,
देह नही दे सकती
जिसे देह दूगी अब निश्चित,
स्नेह नही दे सकती।

स्वर्णधूलि मे प्रणयपरक कई रचनायें है और वे पर्याप्त भाव-प्रवण भी हैं। इतने पर भी ये रचनायें स्मृति की द्योतक है। कवि की प्रौढता प्रेम भावना को बतलाती है, किन्तु 'मेच्योरिटी' के प्रभाव वश उसमे भाव-सजलता कम हो गई है। कवि देश और समाज की ओर झुक गया है और इस झुकने मे उसे सास्कृतिक स्तर दिखाई देता है। कवि कर्म से विरत होकर प्रेमिल क्षणो को केवल स्मृति मे जीता है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

बाध दिये क्यो प्राण प्राण से।
तुमने चिर अनजान प्राणो से।
गोपन रह न सकेगी
अब यह मर्म कथा।
प्राणो की न रुकेगी
बढती विरह व्यथा।
विवश फूटते गाम प्राणो से
बाध दिये क्यो प्राण प्राण से।

यह वह स्थल है जब कवि की किशोर-मन की भावुकता चिन्तन मे

---

1 डा० हरिचरण शर्मा-समीक्षा और मूल्याकन, पृ० 202

बदलती गई है। वह स्थूल (वासना) से सूक्ष्म की ओर बढ़ता गया है। इसी विकास मे वह प्रेम को शरीर से ऊपर हृदय का मुक्त रूप स्वीकार करता है। प्रेम विश्वास समन्वित होकर ही उदात्त भूमिका पर पहुच सकता है। फूल जैसे नाल से विद्ध होकर भी पृथ्वी पर अपनी सुगधि वितरित करता है ठीक वैसे ही स्नेह शरीर से जुडा होकर भी अपनी सुरभित सासो से व्यक्ति का मन मोह लेता है। यदि इस प्रेम मे विश्वास और आकर मिल जावे तो सोने में सुहागे की कहावत चरितार्थ होगी। 'उत्तरा' की कविताओ मे भी प्रेम की यही सूक्ष्मता दिखाई देती है। 'स्मृति' कविता मे कवि अपने अन्तर और बाह्य दोनो के बदलने की सूचना देता है। परिणामत वीणा और ग्रथि की प्रणय-धारा अवरुद्ध हो जाती है और स्मृति का जमाव भी पिघल जाता है क्योकि विरहोज्ज्वल भावना का ताप सभी कुछ बहा देता है। कवि ने लिखा है—

अब वह प्रेमी मन नही रहा।
ध्रुव प्रेम रह गया है केवल॥
प्रेयसि स्मृति भी अब नही रही।
भावना रह गई विरहोज्ज्वल॥
बाहर जो कुछ भी बदला हो।
मन का पट बदल गया भीतर॥

"प्रेम की यह सूक्ष्मता निरतर विकसित होती गई है। जिन कवि ने प्रणय कला के लिए मुक्त विहार की अनुमति दी थी, वही प्रेम के क्षेत्र में उत्तरोत्तर विकास की सीमाओ का स्पर्श करना है। कला और बूढा चाँद में कवि आत्मज्योति लेकर सभी युवक युवतियो को नग्न गात्र और नग्न-मन से स्वच्छ चाँदनी मे नहाने का निमत्रण देता है लोकायतन महाकाव्य मे प्रेम का व्यापक और निष्काम रूप ही चित्रित हुआ है। यहा भी कवि ने हृदय मे रस का आनद लेने के लिए नर और नारी दोनों से मन से तन के बधन खोलने की बात कही है। कवि यहा प्रेम को निष्काम और ईश्वर के प्रेम मे परिणति देता हुआ प्रतीत होता है—तुम जीवन ईश्वर को पूजो, वह प्रेम अनिर्वच परम और पर्याय प्रेम, ईश्वर जीवन सेवक जिसके श्रुति-स्मृति दर्शन जैसी पक्तियो मे इसी भाव का पोषण है। कवि ने लोकायतन के उत्तर स्वप्न मे लिखा है।'[1]

अब प्रकृति मुक्त निष्काम प्रेम
शोभा भू पर चलती निर्भय,
मन सहज बोध से उन्मेषित,
सित प्रकृति पुरुष का रस परिणय।

पन्त काव्य मे मानव

प्रमुखत कवि पन्त प्रकृति के कवि हैं किन्तु उनकी विकसित चेतना उन्हे एक सा नहीं रहने देती है। यही कारण है कि पन्त यदि प्रारभ मे प्रकृति सौन्दर्य के गायक रहे हैं तो बाद मे मानव के। वे वीणा और पल्लव मे

---

1. डॉ० हरिचरण शर्मा . समीक्षा और मूल्याकन पृष्ठ 203

सौन्दर्य के प्रति आसक्त हैं तो गुंजन मे मानव के प्रति। अत वीणा और 'पल्लव' का कवि गुंजन का कवि बन जाय तो आश्चर्य नहीं है। मानव का पक्षपाती कवि जीवन के विविध क्षणो मे जीता हुआ उसे सर्वोपरि प्रतिष्ठित करता है। प्रकृति सौन्दर्य से शिवत्व की मजिल तय करती दिखाई देती है।

मानव और प्रकृति का घनिष्ट सम्बन्ध है। जो प्रकृति कभी सौन्दर्य की वाहिका थी वही ग्राम्या, युगात और युगवाणी मे आकर मानव की महिमा को उद्घाटित करती दिखाई देती है। प्रकृति को कवि कितना ही महत्व क्यो न देता रहा हो, किन्तु जैसे ही वास्तविकता की कठोर धरती पर कवि के कदम उतरते हैं, वैसे ही वह मानव का सच्चा समर्थक बन जाता है। प्रकृति मे जो भी गुण है चाहे उसका विकास हो हसना हो रोना हो और खिलना या मिलना हो वह सभी मानव की देन है। इस प्रकार पन्त जी की दृष्टि मे प्रकृति मानव की छाया मात्र है। कवि ने तो यहा तक लिखा है—

सीखा तुम से फूलो ने
मुख मद मद मुस्काना,
तारो ने सजल नयन हो,
करुणा किरणें बरसाना।

मानव के पारस्परिक मिलन सम्बन्ध भी लहरो के मिलन का परिणाम है। कवि ने कहा भी है—

सीखा हसमुख लहरो ने
आपस मे मिल खोजाना,
अलि ने जीवन का मधु पी,
मृदु राग प्रणय का गाना।

मानव की ओर झुकने का तात्पर्य है समाज की ओर झुकना और समाज की ओर झुकना सौन्दर्य से शिवम् की ओर आना है। यह समव नही जान पडता है कि मनुष्य सदैव सौन्दर्य से ही चिपका रहे, उसे कभी न कभी तो मानव की ओर झुककर उसकी हित-चितना करनी होगी। पन्त जी सौन्दर्यवादी हैं, किन्तु मानव के महत्व से अपरिचित भी नही है। वे यह जान गये हैं कि मानव की उपेक्षा जीवन की उपेक्षा है और जीवन की उपेक्षा कभी भी हितकारी सिद्ध नही हो सकती है। पन्त सजग कलाकार होने के कारण इस तथ्य से अनवगत नहीं हैं। वे मानव का गुणगान करते हैं। मानव के महत्व को पहचानते हुए कवि ने किस प्रकार प्रकृति को तिरस्कृत किया है, यह 'ताज' कविता से स्पष्ट हो जाता है। 'मानव ऐसी भी विरक्ति क्या जीवन के प्रति आत्मा का अवमान प्रेत औ छाया से रति' पक्तियो से यह स्पष्ट है। ताजमहल की भव्यता भी कवि के मन में उदासी भर देती है। कवि कराह उठता है—

हाय ! मृत्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन,
जब विषण्ण निर्जीव पडा हो जग का जीवन।

कवि जैसे ही मानव की ओर मुडता है वैसे ही वह मनुष्य को सृष्टि का सर्वोत्तम प्राणी घोषित करता है। सृष्टि का समस्त सौन्दर्य मानव के शरीर में सन्निहित है और शेष सृष्टि मे जो भी सौन्दर्य का प्रसार है वह सब मानव का ही है। इसका अर्थ यह नही कि विहग, पशु-पक्षी और फूल आदि मे सौन्दर्य नही है, किन्तु इन सबसे भी अधिक सौन्दर्य तो मानव मे है—

सुन्दर है विहग सुमन सुन्दर
मानव । तुम सबसे सुन्दरतम,
निर्मित सब की तिल सुषमा से,
तुम निखिल सृष्टि मे चिर निरुपम,
यौवन ज्वाला से वेष्ठित तन,
मृदु त्वच, सौन्दर्य प्ररोह अङ्ग,
न्योछावर जिन पर निखिल प्रकृति
छाया प्रकाश के रूप रग ।

मानव जिसका गुणगान पन्त ने किया है वह सभी विभूतियो और गुणो का पुंज है। उसमे स्वर्गिक गुणो का निवास है। ये गुण हैं—सहृदयता, त्याग, सहानुभूति और करुणा ! मनुष्य ससार मे इसलिए आता है कि उसे नित नये अनुभव हो, इसलिए नही आता कि वह शोषण करे, पीडा प्रदान करे। मानव सृष्टि का सर्वोत्तम प्राणी है उसे यह वरदान प्राप्त है कि वह सृष्टि के समस्त सौन्दर्य का प्रत्येक क्षण उपभोग करे और इस प्रकार वह सब प्राप्त करे जो कि उसके लिए अपेक्षित है। कवि की मानवता का सबसे बडा मापदण्ड यह है कि वह मानव बना रहे, सभवत इसीलिए कहा गया है।

प्रभु का अनन्त वरदान तुम्हे,
उपभोग करने प्रतिक्षण नव-नव ।
क्या कमी तुम्हें है त्रिभुवन मे,
यदि बने रह सको तुम मानव ।

मानव की इस महत्ता का गुणगान कवि ने तब किया जब कि उसे यह अनुभव हुआ कि सृष्टि निरन्तर विकास कर रही है। मानव भी विकास कर रहा है। प्रकृति का सौन्दर्य मन को कब तक भरमाये रख सकता है। वास्तविकता यह है कि मानव के समक्ष प्रकृति के सौन्दर्य का महत्व है ही क्या जो कवि उसमे अपने आपको भुलाये रखे ? दूसरी बात यह है कि आज की प्रगतिशील दुनिया मे मानव के समक्ष अनेक समस्यायें हैं, वह सभी को सुलझा रहा है, फिर ऐसी परिस्थिति मे उसे अवसर ही कहा है कि वह प्रकृति की सुषमा को निहारे। यदि इतने पर मनुष्य प्राकृतिक सौदर्य को देखे तो भी उसे सन्तोष नही मिल सकता है क्योकि अभाव और असफलताओ के ससार में उसे यह सौन्दर्य शाति कहां तक और कब तक दे सकता है। अत ससार के विकास क्रम मे सभी की सुन्दरता नष्ट हो गई है। तितली, पक्षी और विविध पुष्पो मे भी सौन्दर्य तत्त्व नही रहा है। सौन्दर्य वैसे भी क्षणिक है। आज अङ्गो मे जो उल्लास दिखाई देता है वह कल समाप्त हो जाता है, अतः

ऐसी परिस्थिति मे तो मानव के उर मे विकसित सौन्दर्य की भावनायें ही काम दे सकती है। कवि ने लिखा है—

जग-विकास क्रम मे सुन्दरता सब की हुई पराजित,
तितली पक्षी, पुष्प वर्ग इसके प्रमाण हैं जीवित।
हृदय नही इस सुन्दरता के भावोन्मेष न मन मे,
अङ्गो का उल्लास न चिर रहता है, कुम्हलाता क्षण मे।
हुआ सृष्टि मे बुद्ध हृदय जीवो का तभी पदार्पण
जड सुन्दरता को निसर्ग कर सका न आत्म समर्पण।
मानव उर मे भर ममत्व जीवो के जीवन के प्रति,
चिर विकास प्रिय प्रकृति देखती तब से मानव परिणति।

कहने की आवश्यकता नही कि मानव जीवन की ओर आते समय कवि ने प्रकृति से मुख मोड लिया है। गुञ्जन और ज्योत्स्ना मे कवि की सौन्दर्य कल्पना क्रमश आत्मकल्याण और विश्वमगल की भावना को अभिव्यक्त करने के लिए उपादान की तरह प्रयुक्त हुई है। 'प्राप्त नही मानव जग को यह मर्मोज्वल उल्लास' पक्ति इस सदर्भ मे कितनी महत्ता रखती है, यह सहज ही जाना जा सकता है। प्रकृति धाम मे जो उल्लास है वह इसलिए विगलित हो गया है कि पृथ्वी पर अकेला मानव ही चिर विषण्ण और जीवन-मृत है। स्पष्टत यह कहा जा सकता है कि ज्योत्स्ना तक कवि के सौन्दर्य बोध की भावना उसके ऐन्द्रिय बोध को प्रभावित करती है। वह यहा तक भावना से ही जगत का परिचय प्राप्त करता रहा है। उसके पश्चात् कवि ने बुद्धि से ससार को समझने की चेष्टा की है। "भावना की समग्रता को खो बैठने के कारण मैं खण्ड खण्ड रूप मे ससार को, जग जीवन को समझने का प्रयत्न करने लगा है। यह कहा जा सकता है कि यहा से मेरी काव्य साधना का दूसरा युग आरम्भ होता है। जीवन के प्रति एक अन्तर्विश्वास मेरी बुद्धि को अज्ञात रूप से परिचालित करने लगा और दिशा-भ्रम के क्षणो मे प्रकाश स्तम्भ का काम देने लगा।" जैसा कि युगात मे लिखा गया है—

• • ••••••• जीवन लोकोत्तर,
बढती लहर, बुद्धि से दुस्तर,
पार करो विश्वास चरण धर !

चण्डीदास ने भी मानव की महत्ता का गुणगान किया था—सुनो रे मानस भाई, सावार ऊपर मानुष सत्य ताहार ऊपर नाई। ऐसा ही गुणगान पन्त ने भी किया है। वे कोकिल से मानव का सनातन सदेश गाने की प्रार्थना करते हैं। कोकिल के माध्यम से कवि कहता है—

गा कोकिल सदेश सनातन !
मानव दिव्य स्फुलिंग चिरन्तन,
वह न देह का नश्वर रजकण,
देशकाल है उसे न बन्धन,
मानव का परिचय मानवपन।

कवि मानव के विकास के लिए प्रयत्नशील है तभी तो वह सभी कुछ छोड़ कर मानव का गुणगान करता है। वह सभी प्रकार से मानव का प्रशंसक हो गया है। हां, इस कार्य के लिए उनने मानव की असंगतियो का वर्णन किया है। इतना ही नही उसने मानव को रूढ़ियो की जकड से बाहर निकाला है। इसलिए पन्त ने सबसे पहले हाड मास के यथार्थ मानव की स्वाभाविक प्रणय-भावना को समादृत बनाने के निमित्त इन्द्रिय-सुख का समर्थन किया है। प्रगति का अर्थ मानव-सुख की अभिवृद्धि मान कर कवि ने कहा है कि मास मुक्ति ही भाव-मुक्ति है और भाव मुक्ति ही जीवन का उल्लास है। मास-मुक्ति से ही लोक की मुक्ति सम्भव है जो कि जीवन का चरम विकास है। कवि पन्त ने मानव के सदर्भ से ही जो पक्तिया कही हैं वे देखिये कितनी महत्वपूर्ण हैं। कवि लिखता है—

जीवन की क्षण-धूलि रह सके जहा सुरक्षित,
रक्त-मास की इच्छायें जन की हो पूरित,
मनुज प्रेम से जहा रह सकें-मानव ईश्वर,
और कौन सा स्वर्ग चाहिये तुझे धरा पर।

इस पृथ्वी को ही स्वर्गोपम बनाने के लिए बाहरी और भीतरी दोनो सुधारो को अपनाये बिना काम नही चल सकता है। सासारिक विभेद जैसे जाति, धर्म, भाषा, और धनी-निर्धन आदि मानव को प्रगति पथ का पथिक बनने से रोक देते हैं। इन्ही कारणो से कवि बाह्य और आन्तरिक विकास करना चाहता है। वह अपने भीतर ही भीतर भावी मानव के निमित्त सृष्टि रच रहा है। मानव को इसे पहचान कर तथा इनके द्वन्द्वात्मक स्वरूप को स्वीकार कर आगे बढना चाहिए। युगवाणी की 'खोज' शीर्षक कविता मे कवि ने कहा कि आज नये मानव की आवश्यकता है। देश, जाति और राष्ट्र के विविध भेदो को हटा कर धर्म और नीतियो में समत्व रखना चाहिए। यह तभी सभव होगा जब कि प्राचीन विश्वासो और रूढियों की अन्धी यवनिका हमारे सामने से हट जावे—

आज मनुज को खोज निकालो,
जाति वर्ण संस्कृति समाज से।
मूल व्यक्ति को फिर से चालो,
देश राष्ट्र के विविध भेद हर,
धर्म नीतियो मे समत्व भर।
रूढि रीति गत विश्वासो की,
अन्ध यवनिका आज उठा लो।

मनुष्य का महत्व तो तभी स्पष्ट हो सकेगा जबकि वह जीवन मे श्रम को महत्व दे और कर्मठ बने। इस कार्य के लिए उसे चींटी से शिक्षा लेनी चाहिए। [illegible] के विकास की पर्याप्त आवश्यकता है और इस कार्य के लिए मनुष्योचित [illegible] का भी विकास आवश्यक है। मानव को कुछ [illegible] और विविध संस्कृति के तत्वों को अपनाना चाहिए क्योंकि संस्कृति [illegible] वस्तु है। [illegible] 'मानवता' प्रदान

नही कर सकता है क्योकि सभ्यता बाह्य आवरण है जो बधन स्वरूप है। मानव का ब्रह्म तो उसकी अन्तरात्मा के भीतर है। देखिये न कवि ने क्या कहा है—

मानव को आदर्श चाहिए,
सस्कृति आत्मोत्कर्ष चाहिए,
बाह्य विधान उसे हैं बधन,
यदि न साम्य उनमे अन्तरत,
पूर्ण तत्र मानव वह, ईश्वर,
मानव का विधि उसके भीतर।

डा० हरिचरण शर्मा ने अपनी कृति समीक्षा और मूल्याकन मे मानव पर विचार करते हुए लिखा है—"किसी युग मे मानव की व्याख्या मे आध्यात्मिकता प्रधान थी। इसका कारण था—ईश्वर अ श जीव अविनाशी की भावना, किन्तु आज मानव का सम्बन्ध भौतिकता से जोडा जाता है। पन्त ने धरित्री को प्रधान बताया है और कहा है कि इसके रोम-रोम मे सहज स्वाभाविक सौन्दर्य है। मानव मिट्टी का पुतला है और मिट्टी और पृथ्वी अभिन्न है, इसी कारण पन्त के मन मे धरती का प्रेम व्यापक भूमिका पर प्रतिष्ठित है। यह धरती प्रेम मानवता का ही एक पक्ष है। पन्त जी कहते हैं कि सस्कृति प्राणिमात्र की सहज भावना है और मानवता जीवो के प्रति आत्मीयता है। मिट्टी के ढूहो मे बसने वाले व्यक्तियो की ओर जब पन्त जी की दृष्टि जाती है तो वे बडे दुःखी होते है क्योकि ग्राम मानवोचित साधनो के अभाव मे नर्क बने हुए है। ये स्वर्ग बन सकते हैं यदि इनमे से सकीर्णता और क्षुद्रता का वातावरण निकाल दिया जाय।"[1]

ग्रामीण जीवन जिसे कवि ने नाटकीय जीवन कहा है, वह उस सदर्भ मे है जबकि क्षुद्रता और सकीर्णता का राज्य रहता है। अन्यथा यदि ग्रामों मे भी मानव को सभी सुविधायें प्रदान की जायें तो वे कीडे मकोडो की मे गति छोड कर स्वर्गीय जीवन बिताने लगेंगे। सच बात तो यह है कि जीवन सास्कृतिक समन्वय आवश्यक है और सस्कृति के मूल तत्त्व ग्रामो में ही निवास करते हैं। कवि ने कहा है—

मनुष्यत्व के मूल तत्त्व गामो मे ही अन्तर्हित,
उपादान भावी सस्कृति के भरे यहा हैं अविकृत।
शिक्षा के सत्याभासो से ग्राम नही है पीडित,
जीवन के सस्कार अविद्या तम मे जन के रक्षित।

कवि पन्त मानव पर विचार करते समय ही मानवता की बात करते है। मानवता की प्रतिष्ठापना के निमित्त कभी उन्हे गाधीवाद प्रभावित

---

१. समीक्षा और मूल्याकन—पृष्ठ १६५-१६६ से उद्धृत।

करता है तो कभी मार्क्सवाद और कभी अरविन्द दर्शन। उन्होंने 'मनुष्यत्व का तत्त्व सिखाता निश्चय हमको गांधीवाद' जैसी पंक्तियों से यही भावना व्यक्त की है। पन्त ने मानव के सम्बन्ध मे दि० के० वेडेकर ने लिखा है कि "पन्त जी का मानव सम्पूर्ण रूप से हाड-मास का, वास्तविक दुनिया का मानव है। यह बात ध्यान मे रखने योग्य है। साथ ही साथ यह भी समझ लेना चाहिए कि उनको 'सुखवाद' मे मास-पूजा मे केवल मध्य युग की साम्प्रदायिक रूढियो का ही निषेध है, इसमें कतिपय योरोपीय अथवा भारतीय साहित्यिको की लैंगिकता नही है। उदाहरणार्थ डी० एच० लारेन्स की लैंगिकता आधुनिक योरोपीय सुशिक्षितों मे से कुछ लोगों के केवल निराशामूल, अगतिक, विपरीत्यासक्ति का प्रतिबिम्ब है, और उसकी छाप हमारे ऊपर भी पड जाती है। पन्त जी की मानसिक वृत्ति एकदम हट्टी-कट्टी और स्वस्थ है, वह ऐन्द्रिक शरीर-पूजा के रुग्ण-विलास मे नही फसे। इसका प्रमाण उनकी यह आकाक्षा है जिसको उन्होंने स्पष्ट स्वरो मे व्यक्त किया है"—

जीवन की क्षणधूलि रह सके जहा सुरक्षित,
रक्त मास की इच्छायें जन की हो पूरित।
—मनुज प्रेम से जहा रह सके मानव-ईश्वर,
और कौन सा स्वर्ग चाहिए मुझे धरा पर।

पन्त मानव को महान्, विशाल और जन-समाज के रूप मे देखने के आकाक्षी व्यक्ति के सुख-दुःख और राग मे ही लिप्त नही हो गये हैं, वरन् वे तो मानव से समाज और समाज से मानवता की ओर अग्रसर हुए हैं। पन्त जी की कवितायें प्रगति की राह दिखाती हैं और प्रयत्नशील, कर्मठ व्यक्तियों की व्याख्या प्रस्तुत करती हैं। "इस दृष्टिकोण से उन्हें जन-समाज का कवि कहना योग्य होगा तथापि यह देखना आवश्यक है कि कही-कहीं उनके मानव का जो चित्र हमारे सम्मुख आता है वह वास्तविकता मे हटा हुआ और गलत होता है उनकी आधुनिक रचनाओ मे 'मार्क्स के प्रति', यन्त्र के प्रति, मजदूर के प्रति आदि कवितायें है जिनमे मार्क्सवाद का समर्थन और स्पष्टीकरण परिलक्षित होता है किन्तु इनमे उनका मानव अभी तक पुरानी चैतन्यवाद की सज्ञा के कोष से मुक्त नही हो सका है।"

पन्त जी के मतानुसार मानव की अविकृत आत्मा इस जग जीवन का एक अंश है। वे कहते हैं कि इस नित्य शुद्ध और पवित्र सत्य अर्थात् मनुष्य आत्मा को भौतिकता के मद ने ग्रस लिया है। इससे भी आगे बढ कर वे हाड-मास के मानव को इस प्रकार सम्बोधित करते हैं—

भूतवाद उस स्वर्ग के लिए है केवल सोपान,
जहा आत्म-दर्शन अनादि से समासीन, अम्लान।

मानव का विकास पन्त जी की दृष्टि मे जीव-चैतन्य के सहारे ही सभव है। यह धारणा सामाजिकता के लिए उत्तम बन सकती है। वे मानव

के सम्पूर्ण इतिहास को समझते हैं, किन्तु फिर भी ससार का मूल तत्त्व प्रेम ही मानते हैं और कहते हैं—

भव तत्त्व प्रेम ! साधन है उभय विनाश, सृजन,
साधन बन सकते नही सृष्टि गति मे बन्धन !

निष्कर्ष रूप मे यही कहा जा सकता है कि पन्त प्रकृति की पूजा करते-करते मानव की ओर झुके हैं तथा मानव को उन्होने पूर्ण सामाजिक और व्यावहारिक धरा पर प्रतिष्ठित किया है। प्रगतिवादी रचनाओ मे मानव की प्रतिष्ठा पूर्ण गौरव के साथ की गई है। कहने की आवश्यकता नही कि पन्त का मानव ऐहिक और आदर्शवादी दोनो ही गुणो से युक्त है। वह अपने मानवपन के द्वारा ही 'मानव' की सच्चाई का परिचय दे सकता है।

पन्त पर पड़े प्रभाव

सुमित्रानदन पन्त हिन्दी के उन यशस्वी कवियो मे से हैं जो समय की आवाज को पहचानते है और उसकी गतिविधियो को हृदयगम करके काव्य-कानन मे सौन्दर्य और यथार्थ जीवन का प्रसार करते हैं। पन्त अपने जीवन मे अनेक स्थलो, सदर्भो और व्यक्तित्वो से प्रभावित हुए है। किसी भी कवि के लिए यह असमव होता है कि वह अपने समय की विभूतियो अथवा प्रभावशाली व्यक्तित्वो से अप्रभावित रहे। यह बात अलग है कि कवि रूढियो की जकड से बाहर ही आना नही चाहता हो। पन्त एक ऐसे कवि रहे हैं जो समाज को कभी भुला नही सके हैं। डा० हरिचरण शर्मा ने लिखा है कि "पन्त का व्यक्तित्व आज के कवियो मे सर्वाधिक गतिशील रहा है। यही कारण है कि उनके द्वारा सृजित साहित्य मे समाज की हर धडकन और हर विश्वास की ध्वनि सुनी जा सकती है। पन्त ने अपने जीवन काल मे जो लिखा है, पढा है, सुना है और समझा है उसे आत्मसात् कर बडे मनोहर ढग से अभिव्यक्त किया है। कहने का तात्पर्य यही है कि कवि के जीवन के विभिन्न क्षण ,विभिन्न दर्शनो और सिद्धान्तो से प्रभावित रहे हैं और कवि ने इस प्रभाव को सहर्ष स्वीकार किया है। इसका अर्थ नही कि कवि मे मौलिक प्रतिभा की कमी है। किसी प्रभाव को स्वीकार करने या किसी दार्शनिक के दर्शन को स्वीकार करने से मौलिकता मे कोई दोष नही आता है क्योकि मौलिकता के लिए सर्वाधिक अवकाश अभिव्यक्ति के क्षेत्र मे वर्तमान रहता है न कि विषय के चयन मे।"[1]

स्वय पन्त ने स्थान-स्थान पर अपने ऊपर पडे प्रभावो की चर्चा की है। वे लिखते हैं—"मेरी कल्पना को जिन-जिन विचारधाराओ से प्रेरणा मिली है, उन सबका समीकरण करने की मैंने चेष्टा की है"। सामान्यत पन्त पर दो प्रकार के प्रभाव पडे हैं—एक तो वातावरण का प्रभाव और दूसरा सैद्धान्तिक अथवा दार्शनिक प्रभाव। वातावरण के प्रभाव मे वह

1. डा० हरिचरण शर्मा समीक्षा और मूल्याकन पृ० २०४ मे उद्धृत।

सौन्दर्य का सागर है जो प्रकृति के अंचल से शुरू होता है और जो काव्य का प्रेरक बिन्दु है। सैद्धान्तिक प्रभावों या दार्शनिक प्रभावों मे—गांधीवाद, मार्क्सवाद, अरविन्द भारतीय दर्शन—विवेकानंद और रामतीर्थ का प्रभाव। अरविन्द का प्रभाव ही आध्यात्मिक चेतना का वाहक है। हम यह तो नहीं कह सकते कि पन्त सदैव आध्यात्मिक आस्था के कवि रहे हैं। हा, यह चेतना प्रमुख अवश्य रही है। डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने यह कह कर एकांगी और आग्रह मत ही प्रस्तुत किया है कि 'पन्त जी के सारे काव्य में एक ही आध्यात्मिक आस्था का विकास मिलता है। अरविन्द से प्रभावित होने के पूर्व भी वह ब्रह्मवादी था और अरविन्द से प्रभावित काव्य मे तो वह उसको स्पष्ट रूप से स्वीकार ही करता है। बीच के काव्यों मे—युगवाणी, युगान्त आदि मे— मार्क्सवाद से प्रभावित कुछ कविताए हैं, साथ ही अध्यात्मवाद से प्रभावित प्राचीन धारा की कविताए भी हैं।'

कहने की आवश्यकता नही कि पन्त समय-समय पर न केवल युग के स्पर्शों को ग्रहण करते रहे हैं अतः स्वाभाविक ही रूप से उनकी कविता मे विविधता विद्यमान है। श्रीमती शचीरानी गुर्टू ने भी पन्त की समग्र काव्य-चेतना को निम्नांकित विभागो मे विभाजित किया है—

१ प्रारम्भ मे अर्थात् वीणा से गुंजन तक उनकी कविता का मूल भाव प्रकृति-प्रेम और ऐन्द्रिय उल्लास है, जिसमे वस्तु सत्य के साथ आत्म सत्य के समन्वय का प्रयास है।

२ गुंजन के बाद युगांत से युगवाणी और ग्राम्या तक कवि की अनुभूति और जिज्ञासा वृत्ति अधिक सजग और सचेष्ट हो उठी है। उसके भावोन्माद का अब प्रौढ विकास हुआ है और उसकी चिन्ता सरणि भाव जगत मे बैठने की अपेक्षा वस्तु जगत में अधिक खुलकर विचरण करती है।

३ स्वर्णकिरण और स्वर्णधूलि में कवि का सूक्ष्मचेतामन मार्क्सवादी भौतिक संघर्षों से ऊबकर अध्यात्मवाद की ओर मुड़ा है।

४. युगपथ उत्तरा आदि इसकी इधर की कृतियो में आत्मोन्मुख मनोभूमि अर्थात् उसके अवचेतन मन के साथ ऊर्ध्वमुखी वृत्तियो का समाहार है, जहा उसकी अन्तर्भेदिनी दृष्टि स्थूल तथ्यों पर उतराती हुई सूक्ष्म सत्यो में रम गई है।"

१ **रोमांटिक प्रभाव**—छायावादी रचनाओं मे इसकी प्रधानता है। स्वय कवि ने इस तथ्य को स्वीकार किया है। उसके आस-पास के वातावरण का पर्याप्त प्रभाव चेतना मे आन्दोलित दिखाई देता है। कवि के शब्द हैं—"कवि जीवन से पहले घंटों एकान्त मे बैठा, प्राकृतिक दृश्यो को एकटक देखा करता था। कोई अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था। जब कभी मैं आंख मूंदकर बैठता तो वह दृश्यपट चुपचाप मेरी आंखो के सामने घूमा करता था। अब मैं सोचता हू क्षितिज मे दूर तक फैली एक के ऊपर एक उठी ये हरित नील धूमिल कूर्मांचल की छायांकित पर्वत श्रेणिया जो अपने शिखरो पर रजत-मुकुट हिमाचल को धारण किये हुए हैं और अपनी ऊंचाई से आकाश की

अवाक् नीलिमा को और भी ऊपर उठाये हुए है किसी भी मनुष्य को अपने महान् नीरव सम्मोहन के आश्चर्य मे डुबाकर कुछ काल के लिए भुला सकती हैं।"

पन्त के प्रकृति-चित्रण के दौरान हम इस प्रभाव की व्यापकता सिद्ध कर चुके हैं। विद्वान आलोचकों के मन की छाया मे यह प्रतिपादित किया गया है कि कवि वीणा से लेकर कला और बूढा चाद व लोकायतन तक मे प्रकृति के प्रारम्भिक प्रभाव को नही भुला सका है। यह बात अलग है कि कभी यह प्रभाव हल्का और कभी गहरा रहा हो किन्तु कवि की मूल-चेतना के रूप में यह सौन्दर्य उसके साथ सदैव ही छाया की भाति रहा है। प्रकृति के विविध रूपो की झाकी—आलम्बनगत या उद्दीपनगत पन्त की छायावादी (रोमाटिक) कृतियो मे रही हैं। इसके बाद कवि धीरे-धीरे चिन्तक और अध्ययनरत बनता गया है।

२ प्रगतिवादी युग मे आकर कवि मार्क्सवाद और गाधीवाद के सिद्धान्तो से प्रभावित दिखाई देता है। युगान्त मे ही कवि राजनैतिक विचार-धारा को प्रश्रय देता दिखाई देता है। यही वह स्थल है जहा कवि गाधीवादी दर्शन से प्रभावित दिखाई देता है। किन्तु "भारतीय स्वातन्त्र्य-आन्दोलन को और भी तीव्रगति से चलाने के लिए विभिन्न राजनैतिक दलो की भी स्थापना हुई तथा रूस मे होने वाली समाजवादी क्राति से प्रभावित हो भारतीय नवयुवको ने भी समाजवादी दल स्थापित किया। इस समाजवादी विचारधारा मे दो वर्ग थे जिनमे से प्रथम मे क्राति के लिए हिंसा और अहिंसा सभी कुछ उपयुक्त समझा जाता तथा द्वितीय मे शोषण की समाप्ति-हेतु शोषक वर्ग की सत्ता से सक्रिय विद्रोह अनिवार्य माना गया। वस्तुत साम्यवादी विचारधारा ने शोषण और अन्याय के प्रति विद्रोह भावना जाग्रत कर साहित्य मे नयी प्रवृत्तियो की उद्भावना की है तथा भारत की सभी भाषाओ मे प्रगतिवाद एक विद्रोही चेतना के रूप मे अग्रसर हुआ है।" प्रगतिवाद से प्रभावित पन्त जी प्रारम्भ से ही अपने विचारों मे प्रगतिशील रहे हैं। पल्लव मे 'परिवर्तन' जैसी कविताओ की अवस्थिति इसका प्रमाण है। युगवाणी मे तो वे पूरी तरह प्रगतिवादी हो गये हैं। वे स्वय इस बात की ओर सकेत करते हैं। कविता के स्वप्न भवन को छोडकर हम इस खुरदरे पथ पर क्यो उतर आये ? इस युग की वास्तविकता ने जैसा उग्र आकार धारण किया है, उससे प्राचीन विश्वासो मे प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गये हैं। श्रद्धा अवकाश मे पलने वाली सस्कृति का वातावरण आदोलित हो उठा और काव्य की स्वप्न जडित आत्मा जीवन की कठोर आवश्यकता के उस नग्न रूप से सहम गयी। उसकी जडो को अपनी पोषण सामग्री ग्रहण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड रहा है और युगजीवन ने उसके चिरसचित सुख स्वप्नो को चुनौती दी है, उसको उसे स्वीकार करना पडा है।'

मार्क्सवाद और प्रगतिवादी चेतना के प्रभाववश ही कवि ने लिखा है—

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र
हे स्त्रस्त ध्वस्त, हे शुष्क शीर्ण ।।
हिम ताप पीत मधु वात भीत
तुम वीतराग जड पुरा चीन ।।

युगवाणी मे मार्क्सवाद का प्रभाव स्पष्ट है । कवि ने 'मार्क्स के प्रति' रचना मे मार्क्स को प्रलयकारी शिव का तृतीय ज्ञानचक्षु बतलाया है । अनेक कविताए ऐसी मिलती हैं, जिनमे मार्क्सवादी दर्शन की स्पष्ट छाप मिलती है । विश्वभर मानव के शब्दो मे 'वही ससार को सत्य मानना, वही सामूहिक हित की दृष्टि से सब कुछ सोचना वही पू जीवाद को सब प्रकार के कष्टो के लिए उत्तरदायी ठहराते हुए मरणासन्न घोषित करना, वही द्वन्द्वात्मक तर्क प्रणाली से काम लेना, वही साम्यवाद के साथ स्वर्णयुग का पदार्पण मानना—सब कुछ वही है साम्राज्यवाद और पू जीपतियो की निन्दा भी कवि ने साम्यवादी दृष्टिकोण से की है। दूसरी दिशा मे इसी दृष्टिकोण से प्रभावित होकर किसानो और मजदूरो की प्रशसा भी की गई है । यही तक नही, हथौडे पर भी एक रचना प्रस्तुत है ।"

मानवजी ने यह भी स्वीकार किया है कि साम्यवादी दर्शन और साम्यवादी दृष्टिकोण को अब तक एक स्थल पर जिस स्पष्टता, विश्वास और पूर्णता से पन्त जी ने उपस्थित किया है उस प्रकार अन्य किसी साम्यवादी कवि ने नही । उन जैसी चिन्तन की व्यापकता और गहराई भी दूसरे छोटे-मोटे साम्यवादी कवियो मे नही पायी जाती । ये रचनायें कवि की दृढ आस्था से उद्भूत हैं । अत कही कही ये रचनायें सिद्धान्तो और परिचित विचारो को चाहे दुहराने वाली हो गई हो किन्तु उस कट्टर प्रचारात्मक प्रवृत्ति की गन्ध इनमे नही है । इतने पर यह स्मरणीय है कि पन्त ने मार्क्सवाद को ज्यो के त्यो रूप मे स्वीकार नही किया है। स्वय कवि की मान्यता है कि मार्क्सवाद का आकर्षण उसके खोखले दर्शन पक्ष मे नही है । उसके वैज्ञानिक लोकतन्त्र के रूप मे मूर्त आदर्शवाद मे है जो जनहित अथवा सर्वहारा का पक्ष है, किन्तु उसे वर्ग-क्रान्ति का रूप देना अनिवार्य नही है । वर्ग युद्ध का पहलू फासिज्म की तरह ही निकट भविष्य मे पू जीवाद तथा साम्राज्यवादी युग की दूसरी प्रतिक्रिया के रूप मे विकृत और विकीर्ण हो जायेगा । हीगेल के द्वन्द्व तर्क मे बिम्बित पश्चिम के मनोजगत का अन्तर्द्वन्द्व मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद मे बहिर्द्वन्द्व का रूप धारण कर लेता है। इस दृष्टि से इन युग प्रवर्तको का मानव चिन्तन ऐन्जिल्स के अनुसार 'अपनी युग सीमाओ से बाहर अवश्य नही जा सका है हीगेल और मार्क्स दोनो ही अपने युग के बहुत बडे मनस्वी हुए हैं, किन्तु इनकी मन शक्ति ही उनकी सीमाए बन गयी ।

कहने की आवश्यकता नही कि पन्त ने मार्क्सवाद को व्यापक सिद्धान्त के रूप मे स्वीकार किया है । ग्राम्या, युगवाणी में यही साम्यवादी दृष्टि प्रतिध्वनित है । मार्क्सवादियो की भाति कवि की आत्मा ग्रामीणो के शोषण को सहन नहीं कर सकी है—

यह तो मानव लोक नहीं रे, यह है नरक अपरिचित,
यह भारत का ग्राम सभ्यता, सस्कृति से निर्वासित ।

समाज मे दो वर्ग है—शोषक और शोषित अधिकारी और अधिकृत। शोषक और अधिकारी शोषण मे विश्वास करते हैं। कवि की कामना है कि यदि समाज को उन्नति करनी है तो उसे इस सबसे ऊपर उठाना होगा। इसी सदर्भ मे कवि ने मार्क्स का गुणगान किया है। कवि ने लिखा है—

धन्य मार्क्स ! चिर तिमिराच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर,
तुम त्रिनेत्र के ज्ञान चक्षु से प्रकट हुए प्रलयकर।

आगे की पक्तिया भी देखिये जिनमें मार्क्स के प्रति श्रद्धा और आदर व्यक्त किया गया है—

साक्षी इतिहास आज होने को पुन युगान्तर,
श्रमिको का शासन होगा अब उत्पादन यन्त्रो पर,
वर्गहीन सामाजिकता देगी सबको सम साधन।
पूरित होगे जन के भव जीवन के निखिल प्रयोजन।

मार्क्सवाद के राजनीतिक पक्ष को कवि-दृष्टि ग्रहण नही कर सकी है। कारण कवि प्रचार को ही सर्वस्व नही समझता है, वह तो ससार के समक्ष आयी सास्कृतिक समस्या का समाधान चाहता है। वह भौतिकवादी दृष्टि की अवहेलना करता है—

राजनीति का प्रश्न नही रे आज जगत के सम्मुख,
आज वृहत् सास्कृतिक समस्या जग के निकट उपस्थित।

कवि ने यन्त्रो का पक्ष भी इसलिए ग्रहण किया है कि वे मानव समूह की सास्कृतिक चेतना के विकास मे सहायक हुए हैं—

जड नही यन्त्र वे भाव रूप सस्कृतिक द्योतक,
... .
वे कृत्रिम निर्मित नही, जगत क्रम से विकसित,
....
दार्शनिक सत्य यह नही—यन्त्र जड मानवकृत,
वे हैं अमूर्त. जीवन विकास की कृति निश्चित।

मनुष्य की सास्कृतिक चेतना उसकी वस्तु परिस्थितियो से निर्मित सामाजिक सम्बन्धो का प्रतिबिम्ब है। यदि हम वाह्य परिस्थितियों मे परिवर्तन ला सकें तो हमारी आन्तरिक धारणाये भी उसी के अनुरूप वदल जायेंगी—

कहता भौतिकवाद वस्तु जग का कर तत्वान्वेषण,
भौतिक भव ही एकमात्र मानव का अन्तर दर्पण,
स्थूल सत्य आधार सूक्ष्म आधेय हमारा जो मन,
बाह्य विवर्तन से होता युगपत् अन्तर परिवर्तन।

'ग्राम्या' यथार्थवादी कृति है। उसमे कवि की आन्तरिक चेतना नये चित्रपट प्रस्तुत करती चली गई है। इन चित्रणो मे मार्क्सीय भावना का रग है

किन्तु प्रचारात्मक कम और संवेदनाजन्य अधिक है। अतः वे संकीर्ण सीमाओं में घिरे प्रगतिवादी नहीं हैं, वरन् शान्तिप्रियजी के शब्दों में सच्चे प्रगतिशील समाजवादी हैं। पहले उन्होंने छायावाद की ललित कला दी थी आज समाजवाद की वस्तु दे रहे हैं। पहले उन्होंने भू पलकों पर स्वप्न-जाल सी छाया का रेशमी ससार बुन दिया था। आज वे भूपृष्ठों पर जीवन के स्थापत्य के कठिन उपकरण चुन रहे हैं। आज वे सौन्दर्य के नये आकार और जीवन के नये मोड की रचना कर रहे हैं।" यही है पन्त का सशोधित मार्क्सवाद जो उनकी अन्तरवर्ती भावनाओं का ही दूसरा नाम है।

गाँधीवाद—मार्क्स के साथ ही गाधी को भी कवि ने निकट से देखा है। मार्क्सवाद और गाधीवाद दोनों का लक्ष्य तत्वतः भिन्न नहीं है। गाधीवाद को पन्त ने मनुष्यता का द्योतक बताया है। वास्तव मे पन्तजी मार्क्सवाद और गाधीवाद के समन्वय को पसन्द करते थे।

> मनुष्यत्व का तत्व सिखाता निश्चय हमको गाधीवाद,
> सामूहिक जीवन विकास की साम्य योजना है अविवाद।

श्री दिनकर ने लिखा है कि प्रगतिशील तत्वों से मडित कविता ही पन्त की असली वाणी है। यह उनकी उस मनोदशा की कविता है जब वे मार्क्स और गाधी के बीच झटके खा रहे थे, जब वे भूत और आत्मा के द्वन्द्व से ग्रसित थे, जब वे राजनीति और सस्कृति मे से प्रत्येक को आवश्यक और प्रत्येक को अपर्याप्त समझ कर किसी द्विधा की स्थिति मे ठहरे हुए थे। चिन्तन की प्रक्रिया में अकसर ऐसा होता है कि प्रश्न ही बदलकर उत्तर बन जाते हैं। जैसे कली की परिणति फूल मे, और फूल की परिणति फल मे हो जाती है। पन्तजी के सम्बन्ध मे भी यही हुआ है। उनके भीतर शका यह चल रही थी कि भूत और आत्मा मे वरेण्य कौन है। द्रव्य आधार और आत्मा आधेय होती है। अब द्रव्य की उपेक्षा करने से यह कैसे सम्भव है कि आत्मा उपेक्षा से बचायी जा सके? यही प्रश्न मार्क्स और गाधी के बीच का प्रश्न बन गया। गाधीजी आत्मा को उत्थान देना चाहते थे, किन्तु जिसे खाने को अन्न और पहनने को वस्त्र तथा शीतघाम से बचने को घर नहीं हैं, उनकी आत्मा क्या उत्थान पा सकती है? निदान पन्त ने स्वीकार किया कि गाधीजी को स्वीकार करते समय किसी न किसी दूरी तक मार्क्स को भी स्वीकार करना ही पडेगा और आत्मा का वरण करते समय भूत या द्रव्य का भी सर्वथा त्याग नहीं चल सकता है। गाधीवाद के प्रभाव के कारण ही तो कवि को लिखना पडा है कि यही वह सिद्धान्त है जो मानवता का पोषक है। गाधीवाद और मार्क्सवाद दो बिन्दुओं पर खड़े हैं किन्तु पन्त ने उन्हें एक साथ रखने की कोशिश की है। गाधीवाद के विषय में पन्त ने कहा है—

> गाधीवाद जगत मे आया ले मानवता का नवमान,
> सत्य अहिंसा से मनुजोचित नव सस्कृति करने निर्माण।
> गाधीवाद हमें जीवन पर देता अन्तर्गत विश्वास।
> मानव को निस्सीम शक्ति का मिलता उससे चिर आभास!

गाधीवाद मानववादी दर्शन है जो भौतिक सघर्ष की अपेक्षा भीतरी सघर्प को महत्व देता है। मार्क्सवाद वर्गयुद्ध का पक्षपाती है और गाधीवाद समझौतावाद का ! पन्त ने इसलिए दोनो का सशोधित रूप ही स्वीकार किया है। गाधीवाद और मार्क्सवाद का प्रभाव पन्त पर क्रमश. युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या आदि रचनाओ मे मिलता है। युगान्त मे कवि ने गाधी की प्रशसा मे कविता लिखी है। कवि ने बापू और उनके दर्शन को भावी सस्कृति के समासीन होने की आधारशिला बतलाया है। पन्त इस विश्वास मे जीवित है कि भविष्य मे जिस भावना की प्रतिष्ठा होगी वह सत्य-अहिंसा की नीव पर खडी होगी। यही कारण है कि कवि ने गाधी को चिर पुरातन, चिर नवीन और शुद्ध-बुद्ध आत्मा आदि सज्ञाओ से अभिहित किया है। कवि के शब्द है —

आये तुम मुक्त पुरुष कहने,
मिथ्या जड बघन सत्यराम,
नानृत जयति सत्य मा भै
जय ज्ञान ज्योति तुमको प्रणाम।

आगे चलकर कवि की यह विचारधारा बदल जाती है। वह गाधी दर्शन की अव्यावहारिकता को स्पष्ट कर देता है।

किये प्रयोग नीति सत्यो के तुमने जन जीवन पर,
भावादर्श न सिद्ध कर सके सामूहिक जीवन हित
अघोमूल अश्वत्थ विश्व, शाखायें सस्कृतियो व॰,
वस्तु विभव पर ही जनगण का भाव विभव अवलम्बित।

यह उदासीनता लोकायतन मे आकर फिर बदल जाती है। कवि ने लोकायतन मे गाधी के प्रति विशेप श्रद्धा भाव व्यक्त किये है। उन्हे सस्कृति के नवनीत, त्याग की मूर्ति आदि नामो से अभिहित किया गया है। गाधी जी के जीवन के अनेक आन्दोलन भी वर्णित हैं। लोकायतन मे तकली, चरखा और वेशभूपा तक के वर्णन में गाधी और उनके सिद्धान्त हैं। कारण कवि गाधी और अरविन्द के मिलन की कामना मे है। भूत और अध्यात्म का मिलन भी कवि ने चित्रित किया है। गाधी दर्शन के पथ से गुजरते हुए कवि अरविन्द की ओर बढ गया है।

अरविन्द दर्शन—गाधी और मार्क्सवाद को मिलाते समय कवि पन्त ने आन्तरिक विकास की बात कही थी। वे धीरे-धीरे सोचने लगे कि इनमे कोई भी दर्शन ऐसा नही है जो मानव के चरम विकास का हामी हो। ऐसी स्थिति मे पन्त को अरविन्द दिखाई पड गये। उन्होने अरविन्द का The Life Devine (भगवत जीवन) पढा और उससे पर्याप्त प्रभावित हुए। उत्तरा की भूमिका मे वे स्वय लिखते है—'मेरी पिछली मान्यतायें भीतर ही भीतर ध्वस्त हो चुकी थी और नवीन प्रेरणायें उदय हो रही थी अपनी नवीन अनुभूतियो के लिए, जिन्हे मै अपनी सृजन चेतना का स्वप्न सचरण या काल्पनिक आरोहण समझता था, मुझे किसी प्रकार के बौद्धिक

तथा आध्यात्मिक अवलम्ब की आवश्यकता थी। इन्हीं दिनो मेरा परिचय अरविन्द के भागवत जीवन से हुआ। उसके प्रथम खण्ड को पढते समय ऐसा लगा जैसे मेरे अस्पष्ट स्वप्न चिन्तन को अत्यन्त सुस्पष्ट, सुगठित और पूर्ण दर्शन के रूप में रख दिया गया है। इसमे सदेह नही कि श्री अरविन्द के दिव्य जीवन दर्शन से मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ हू। स्वर्णकिरण और उसके बाद की रचनाओ मे यह प्रभाव मेरी सीमाओ के भीतर किसी न किसी रूप मे प्रत्यक्ष ही दृष्टिगोचर होता है।"

कहने की आवश्यकता नही कि पन्त पर अरविन्द का प्रभाव पडा है। अरविन्द की ही तरह पन्त ने भौतिक वास्तविकता को आध्यात्मिक चेतना के रूप में परिवर्तित होते देखा है—

दीप भवन युग, विद्युत युग में ज्यो दिक् शोभित,
मन का युग हो रहा, चेतना युग में विकसित।

स्वर्णकिरण और स्वर्णधूलि आदि रचनाओ मे स्वर्ण चेतना का पदार्थ है। कवि ने उसके स्वागत मे लिखा है—

हसी लो स्वर्ण किरण,
सरो में हसी लहर,
ज्योति का जगा प्रहर,
चेतना उठी सहर,
स्पर्श यह दिव्य अमर!
तुहिन के स्वर्णिम क्षण,
वितरती स्वर्ण किरण!

दिनकर ने पन्त काल पर अरविन्द दर्शन की चर्चा की तो है, किन्तु साथ ही यह भी स्पष्ट बता दिया है कि पन्त की मुख्य प्रवृत्ति सामाजिकता की ओर है जबकि अरविन्द का सारा जोर अध्यात्म पर दीखता है, फिर भी अरविन्द के आध्यात्मिक दर्शन मे सामाजिकता का उतना ही गहरा पुट है जितना गहरा पुट पन्त जी अपनी कल्पना के समाज मे डालना चाहते हैं।

विश्वम्भर नाथ उपाध्याय ने अरविन्द दर्शन के ६ तत्वो की विवेचना की है—

१. योरोपीय सस्कृति के अतिपरिचय के प्रति घोर प्रतिक्रिया।

२. राष्ट्रीय गौरव के पुनरुत्थान का प्रयत्न।

३ पुनरुत्थानवादी युग में उत्पन्न होने के कारण तटस्थता का अभाव।

४ एकान्तिक साधनाओ का अभ्यास करने के पश्चात् आधुनिक तर्क पद्धति द्वारा रहस्यमय ज्ञान को वैज्ञानिक बनाने का प्रयत्न।

५ अध्यात्मवादी मान्यताओं की अनवचेतनात्मक व्याख्या तथा उनको श्रेष्ठ प्रमाणित करने के प्रयत्न में वेद उपनिषद आदि को प्रमाण रूप में प्रस्तुत करना।

६. वेद उपनिषद व गीता को आदर्श मानना उसकी स।धनात्मक व्याख्या कर, मध्यकालीन आस्तिक दार्शनिको का खण्डन करके अपने दृष्टिकोण की मौलिकता का प्रतिपादन।

७. समन्वय की खोज करने का प्रयत्न-जगत की सत्ता सिद्ध करना परन्तु जगत के सुधार तक ही न रुक कर अध्यात्म सम्बन्धी उपलब्धियो के लिए योग साधना पर जोर देना।

८. समाजशास्त्र व इतिहास की नूतन व्याख्या और उस व्याख्या से अध्यात्मवादी शिविर की ऐतिहासिक आवश्यकता को प्रमाणित करना।

९ दैव जीवन की प्राप्ति ही उद्देश्य—

(अ) चेतना के अनेक स्तरो की कल्पना कर जड चेतन की समस्या का सुलझाव और उच्च स्तरो की ओर बढने का प्रयत्न आज के युग के सम्मुख रखने का प्रयत्न।

(ब) भौतिकवाद व अध्यात्मवाद के समन्वय का प्रचार कर मार्क्स-वादी शिविर के विरुद्ध प्रचार का प्रयत्न करते रहना।

उपर्युक्त सभी तत्वों का विधान पन्त काव्य मे मिल जाता है। अरविन्द ने परमात्मा को दिव्य करुणा कहा है तथा उसे मा भी माना है। इसे उन्होंने परमशक्ति, आध्यात्मिक शक्ति, विज्ञानमयी शक्ति, भागवती शक्ति, परा शक्ति आदि अनेक नाम दिये हैं और उनकी धारणा हैं कि दिव्य रूपातर के निमित्त इसी शक्ति अर्थात् मा का आवाहन करना पडता है। अन्त करण की निर्मलता के पश्चात् यदि आत्म-समर्पण की भावना बलवती हो तभी शक्ति अपरा शक्ति बन कर काम कर सकती है। अरविन्द की दृष्टि मे मा का परिचय देना कठिन है। पन्त काव्य मे भी यही प्रवृत्ति दिखलाई देती है। दिव्य शक्ति के आरोहण-अवरोहरण के कई चित्र पन्त काव्य में देखे जा सकते हैं—

यह प्रतिमा,
मन से उठ ऊपर,
पख खोल शोभा क्षितिजो पर,
स्वर्ण नील आरोहो को तर,
गध शुभ्र रज सासो मे भर,
गीतो के नि स्वर झरनो मे,
स्वप्न द्रवित सुरधनु वर्णों मे,
अन्तर शिखरो को नहलाती।

"पन्त जी ने अरविन्द की विचारधारा के अनुकूल इस दिव्य करुणा के रूपातर का वर्णन किया है तथा उन्होंने विस्तारपूर्वक यह भी बतलाया है कि दिव्य करुणा जैसे-जैसे अवतरण करेगी और नव चेतना जैसे-जैसे उच्च स्तरो को पार कर विकास पथ मे आरोहण करेगी वैसे ही वैसे मानव अन्त-करण का रूपातर भी होगा। पन्त जी का कहना है कि आतरिक क्राति के कारण ही बाह्य जगत मे परिवर्तन हो रहे हैं और यद्यपि नव चेतना के

विकसित होने पर मन की जो आनन्दपूर्ण दशा होती है वह अवर्णनीय है।"
पन्त काव्य मे इसके चित्र मिलते हैं—

नये रुपहले क्षितिज निखरते मन के भीतर,
आभा के रस स्रोत फूटते पुलकित अन्तर,
आ! वह ऊपर छाया स्वर्णिम ज्वाला का घन,
दीप्त प्रेरणा तडितो मे लिपटा अति चेतन,
अमृत विन्दुओ से झरते स्मित ज्योति प्रतिकण,
अमरो के सुख वैभव मे उर करता मज्जन।

बाहरी दुनिया मे जो अभाव और कूटनीतिक कुचक्र फैले हैं वे सबके सब जभी विनष्ट हो सकते हैं जबकि अन्त करण की शुद्धि हो। नव चेतना (अरविन्द चेतना–पन्त के सदर्भ से) का उद्देश्य व्यक्ति और विश्व के जीवन में सामरस्य लाना है—

आओ इस स्वर्गीक वाडव मे अवगाहन कर,
लौट चलें पावक पराग मधुका नव तन धर,
नव प्रकाश के बीच करें जर भू पर रोपण,
शोभा महिमा से कृतार्थ हो मानव जीवन।

पन्त ने अपनी साहित्य साधना के दौरान जिस समन्वयवाद की चर्चा की है वह भी अरविन्द से ही प्रभावित है। वास्तव मे आज के भौतिकतावादी युग मे अरविन्द का यह दर्शन ही आत्मा के उन्नयन का मार्ग तैयार कर सकता है—

आज आलोक सघर्षो से जब मानव जर्जर,
अति मानव बन तुम युग सभव हुए धरा पर।
अन्न प्राण मन के त्रिदलो का कर रूपातर,
वसुधा पर नव स्वर्ग सँजोने आये सुन्दर।।

अग्रेजी कवियों का प्रभाव—पत काव्य पर अग्रेजी कवियो का प्रभाव देखा जा सकता है। यह तथ्य उन्होंने स्वय ही स्वीकार किया है—पल्लव काल मे मैं उन्नसवी सदी के अग्रेजी कवियों—मुख्यत शैली वड्र्सवर्थ कीट्स और टेनीसन से विशेष रूप से प्रभावित रहा हू, क्योकि इन कवियो ने मुझे मशीन-युग का सौन्दर्य बोध और मध्यवर्गीय सस्कृति का जीवन स्वप्न दिया है। रवि बाबू ने भी भारत की आत्मा को पश्चिम की, मशीन-युग की, सौन्दर्य कल्पना मे ही परिधानित किया है। पूर्व और पश्चिम की मेल उनके युग का स्लोगन भी रहा है। इस प्रकार मैं कवीन्द्र की प्रतिभा के गहरे प्रभाव को भी कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करता हू और यदि लिखना Unconcious-Conscious Process है तो मेरे उपचेतन ने इन कवियो की निधियो का यत्र-तत्र उपयोग भी किया है और उसे अपने विकास का अङ्ग बनाने की चेष्टा भी की है।

शैली का पर्याप्त प्रभाव पन्त की रचनाओ मे दिखाई देता है। बादल कविता शैली के The Cloud की ही छाया मे लिखी गई जान पडती है।

'बादल' में पन्त की उद्दीप्त भावुकता प्रखर कल्पना के साथ-साथ नि सृत हुई है। इसी से बादल मे जो विभिन्न चित्र दिखाये गये है वे बडे भव्य और मनोहर है, परन्तु पन्त ने Clouo क। अनुवाद ही करके नही रख दिया है वरन् उसका भारतीयकरण करके ही प्रस्तुत किया है। यह चित्र देखिये—

"धूम धुआरे काजर कारे,
हम ही विकरारे बादल,
मदन राज के वीर बहादुर,
पावस के उडते कणिधर।

चमक-चमक मय मत्र वशीकर,
घहर घहर मय विष सीकर,
स्वर्ग सेतुसे इन्द्र धनुष पर,
काम रूप घनश्याम अमर।

पन्त के प्रकृति प्रेम पर वर्डसवर्थ का प्रभाव है। पन्त की 'छोड द्रुमो की मृदु छाया तोड प्रकृति से भी माया, बाले तेरे बाल-जाल मे कैसे उलझा दू लोचन आदि पक्तियो मे प्रकृति के प्रति जो प्रेम प्रदर्शित किया गया है वही भाव वर्ड्सवर्थ की इन पक्तियो मे है—I love not man less but nature more.

टेनीसन का प्रभाव पन्त की कला पर दिखाई देता है। ' पन्त की कला का रेशमी मार्दव जो उनकी एक बडी विशेषता है इसका प्रमाण है। उनकी ध्वन्यात्मकता भावानुकूल शब्द-चयन के कारण है। कहना न होगा किन्ही अ शो मे यह ध्वन्यात्मकता आदि की विशेषतायें टेनीसन से प्रभावित हैं जा अपनी चित्रमयता, ध्वन्यात्मकता और उपयुक्त शब्द-चयन के लिए प्रसिद्ध था।

पन्त पर रामतीर्थ और विवेकानन्द का प्रभाव भी दिखाई पडता है। आधुनिक कवि की भूमिका मे इसकी स्पष्ट स्वीकृति देखी जा सकती है— "स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थ के अध्ययन से प्रकृति प्रेम के साथ ही मेरे प्राकृतिक दर्शन के ज्ञान और विश्वास मे भी अभिवृद्धि हुई। परिवर्तन मे इस विचारधारा का पर्याप्त प्रभाव है पल्लव और गु जनकाल के बीच मे मेरी किशोर भावना का सौन्दर्य स्वप्न टूट गया। पल्लव की परिवर्तन कविता दूसरी दृष्टि से मेरे इस मानसिक परिवर्तन की भी द्योतक है। दर्शन शास्त्र और उपनिषद् के अध्ययन ने मेरे राग तत्व मे मथन पैदा कर दिया और उसके प्रवाह की दिशा बदल दी।"

विवेकानद आध्यात्मिकता के माध्यम से प्रेम, सेवा का सदेश देते हैं और रामतीर्थ का दर्शन जगत के माध्यम से आध्यात्मिकता को प्राप्त करने के लिए प्रेरित करता है। पन्त के शब्द भी इसी अर्थ को व्यक्त करते हैं। कवि पन्त ससार की नश्वरता का अनुभव भी करते रहे हैं। उन्होने एक

ही तत्व को सर्वत्र व्याप्त देखा है। यह भावना और धारणा विवेकानन्द के प्रभाव को व्यक्त करती है—

एक ही तो असीम उल्लास,
विश्व मे पाता विविधाभास,
तरल जल निधि मे हरित विलास,
शान्त अम्बर मे नील विकास,
वही उर-उर मे प्रेमोच्छ्वास।
काव्य मे रस कुसुमो मे वास,
अचल तारक पलको में हास,
लोल लहरों मे लास,
विविध द्रव्यो मे विविध प्रकार,
एक ही मर्म मधुर झंकार।

विद्वान् आलोचको ने पंत के परिवर्तन पर रवीन्द्र की उर्वशी की छाया का उल्लेख किया है जो कला पक्ष पर देखा जा सकता है। परिवर्तन का भाव पक्ष तो दर्शन से अनुप्राणित है पर उसके वृहत् रूपको, बिम्बो, प्रतीकों और ध्वन्यात्मकता अथवा लाक्षणिकता का उर्वशी से अद्‌भुत साम्य है।" पन्त ने लिखा है—

लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरन्तर,
छोड रहे हैं जग के विक्षत वक्षस्थल पर,
शत शत फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार भयकर,
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अम्बर।

रवीन्द्र की उर्वशी का चित्र इस प्रकार है—
तरगित महासिंधु मन्त्रश्चात भुजगेर मत,
पडे छिल पद प्रान्ते उच्छ्वासित फण लक्ष शतकरि अवनत।

कहने की आवश्यकता नही कि पन्त पर विविध क्षेत्रो से प्रभाव आये है, किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि पन्त के काव्य मे मौलिकता की कमी है। वस्तुत उन्होंने प्रभावित होकर भी अपनी प्रतिभा के आधार पर अपनी मान्यतायें प्रस्तुत की हैं और अन्त मे अब तो वे अपने व्यावहारिक दर्शन अरविन्द मे राह पा गये हैं।

छायावाद और पन्त का काव्य

सामान्य परिचय—छायावाद आधुनिक कविता की विशेष प्रवृति है। इसका सम्बन्ध विषय और शैली दोनो से है। छायावाद के उद्‌भव के पूर्व काव्य मे जो विषय आते थे वे सूक्ष्म की अपेक्षा स्थूल और शैली वर्णनात्मक या विवरणात्मक होती थी। ऐसी परिस्थितियो मे काव्य के अन्तर्गत सरसता का सचार करने वाली काव्य-धारा के रूप मे छायावाद का आगमन हुआ। छायावाद को दो विन्दुओ से देखा जा सकता है—एक तो स्थूल विन्दु से वस्तु की सूक्ष्म और आन्तरिक विशेषताओं के विश्लेपण मे तथा दूसरे सूक्ष्म अनुभूतियो का सूक्ष्म शैली मे वर्णन या अभिव्यजना।

छायावाद क्या है ? और उसकी विशेषतायें क्या है ? आदि बातो का विवेचन पिछले पृष्ठो मे किया जा चुका है। यहा उसकी पुनरावृत्ति की आवश्यकता नही जान पडती है। हमे यहा तो केवल यही कहना है कि छायावाद एक ऐसी काव्यधारा है जिसमे वैयक्तिक भावनाओ को कल्पना के पखो पर बैठ कर नये शब्द-शिल्प मे प्रस्तुत किया गया है। इतना ही नही इसमे प्रकृति की ओर से विभिन्न अनुभूतियो को सुन्दरतम रूप मे अभिव्यक्त किया गया है । पन्त, प्रसाद और निराला छायावादी है। इन्होने छायावाद के मर्म को समझा और उसी को अपनी कविता मे वाणी दी किन्तु इनमे भी पन्त "छायावाद के प्रथम उन्नायको मे हैं और उन्होने अपने पल्लव तथा गुजन शीर्षक काव्यो मे छायावाद की सूक्ष्म सौन्दर्य चेतना का सफल समावेश किया है, उनके अनुसार छायावाद के प्राकृतिक चित्रो मे कवि की अपनी भावनाओ की छाया रहती है। पन्त ने लिखा है—

खोल कलियो ने उर के द्वार,
दे दिया उसको छवि का देश,
बजा भौंरो ने मधु तार,
कह दिये भेद भरे सन्देश।
....
गूढ सकेतो मे हिल पात,
कह रहे अस्पुट बात,
आज कवि के चिर चचल प्राण,
पा गये अपना गान।

कहने की आवश्यकता नही कि पन्त के वीणा, पल्लव, ग्रथि और गुजन छायावादी तत्वो से भरे पडे हैं। छायावाद के प्रवर्तन का श्रेय भले ही जयशकरप्रसाद को हो, किन्तु उसके विकास का श्रेय तो सुमित्रानन्दन पन्त को ही मिलता है। डॉ० इन्द्रनाथ मदान ने लिखा है कि छायावादी कविता को जिन कवियो ने आगे बढाया उनमे हमारे पन्त जी का प्रमुख स्थान है। यों तो छायावाद का आरम्भ जयशकरप्रसाद जी के झरना काव्य सग्रह से माना जाता है और वही इसके प्रवर्तक कहे जाते हैं लेकिन पंत जी ने छायावाद की कला को सबसे अधिक निखारा है।

छायावादी कविता के प्रमुख तत्व निम्नलिखित है—

१ सौंदर्य भावना और शृगारिकता।
२ प्रकृति पर चेतना का आरोप।
३ व्यक्तिवाद या आत्माभिव्यजना।
४ निगूढ वेदना।
५ नवीन अभिव्यजना पद्धति।
६ विस्मय की भावना।
७ विद्रोह की भावना।

इसके अतिरिक्त छायावाद की जो दर्शन-पद्धति है वह नर्वात्मवादी चेतना से पृथक नही है। साथ ही इसमे जिज्ञासात्मक तत्व भी पर्याप्त मात्रा मे विद्यमान है। ये तत्व जो छायावादी कविता के प्रमुख तत्व हैं पन्त मे भी मिलते हैं। आगे इनका विस्तृत विवेचन किया जा रहा है।

१ सौन्दर्य भावना और पन्त —छायावाद की प्रथम विशेषता है सौन्दर्य भावना। यह सही है कि छायावाद का सारा महल सौन्दर्य भावना की नीव पर खडा है। जहा तक पत जी का सम्बन्ध है वे तो सौन्दर्य के कवि हैं। उनकी सुमन-चयन की प्रवृत्ति उनके सौन्दर्यप्रिय हृदय को ही अभिव्यक्त करती है। उन्होंने याचना में धूलि, सुरभि, मधुरस, हिमकण की ही याचना की है—

नवनव सुमनो से चुन चुन कर,
धूलि सुरभि मधुरस हिमकण,
मेरे उर की मृदु कलिका मे,
भरदे करदे विकसित जीवन।

पन्त की सौन्दर्य भावना मे तीन तत्वो को लिया जा सकता है—प्रकृति सौन्दर्य, नारी सौन्दर्य और मानव सौन्दर्य। कवि पन्त प्रकृति के सौन्दर्य से नारी और नारी से मानव के सौन्दर्य की ओर बढे हैं। 'अपने पूर्व युग की उद्दाम नैतिकता के विरोध में छायावादी कवि पन्त के काव्य में आत्मप्रेरणा से प्रकृति के प्रति आकर्षण और हृदय की आकुलता का मनोरम वर्णन मिलता है।" सौन्दर्य भावना और शृङ्गारिकता में प्रकारान्तर से एक भेद है। पन्त जी ने स्वय स्वीकार किया है कि वे सुन्दरम् से प्रभावित हैं। छायावादी चित्र का सौन्दर्य भावात्मक है। गुजन मे जो सौन्दर्य भावना है उसमे कलात्मक आग्रह का समावेश है। पन्त ने प्रकृति को अनेक रूपो मे देखा है। प्रकृति उनके छायावादी काव्य का प्राण है। वे प्रकृति के सुन्दर पक्ष से प्रभावित रहे हैं। एक उदाहरण देखिये—

पावस ऋतु थी पर्वत प्रदेश,
पल पल परिवर्तित प्रकृति वेश।
मेखलाकार पर्वत अपार,
अपने सहस्र दृग सुमन फाड,
अवलोक रहा है बार-बार,
नीचे जल मे निज महाकार।

"प्रकृति की यह सौंदर्यानुभूति जब प्रगाढ होने लगती है तब प्रकृति मे रहस्यानुभूति का आभास होने लगता है। यहा प्रकृति का सुन्दर पदार्थ अज्ञात और अनन्त का सदेशवाहक बन जाता है। पन्त के मौन निमंत्रण का प्रत्येक पद प्रगाढ सौन्दर्यानुभूति की इस विचारधारा से अनुप्राणित है।" प्रकृति सौन्दर्य के अतिरिक्त नारी का सौन्दर्य भी पन्त काव्य में छायावादी चेतना के अनुकूल है। छायावादी नारी वासना की पुतली कभी नही रही है उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग मे सरलता और सादगी का पुट रहा है। कहने का तात्पर्य यह है

कि पन्त की नारी शरीर और मन दोनो से ही पवित्र है—सुन्दर है। वासनात्मक असतोष की उत्तेजना से दूर ये पक्तिया देखिये—

अपरिचित चितवन मे था प्रात,
सुधामय सासो मे उपचार,
तुम्हारी छाया मे आधार,
सुखद चेष्टाओ मे आभार।
करुण भौंहो मे था आकाश
हास मे शैशव का ससार,
तुम्हारी आखो मे कर वास,
प्रेम ने पाया था आकार।

बालिका के सरलपन और निरालेपन की आभामय काति भी देखिये जिसमे सौन्दर्य आकर्षण का पर्याय बन गया है—

सरलपन ही था उसका मन,
निरापन ही आभूपन।
कान से मिले अजान नयन,
सहज था सजा-सजीला तन।

नारी के निमित्त व्यक्त सौंदर्य भावना मे परिष्कार है तभी तो वह सुन्दरता की कल्याणी है। पन्त का भाव जगत इतना कोमल, इतना मधुर और इतना सुकुमार है कि वह सौन्दर्य ही को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। गुजन मे सकलित भावी पत्नी के प्रति कविता मे प्रेम और सौन्दर्य का जो अभूतपूर्व मिलन है वह हृदय की सात्विक अनुभूति और सच्चे निश्छल प्रेम की अभिव्यक्ति है। मानव सौन्दर्य की भावना को भी पर्याप्त व्यापकता से पन्त काव्य मे चित्रित किया गया है। डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है कि छायावाद मे शृ गार के प्रति उपभोग का भाव न होकर विस्मय का भाव मिलता है। इसलिए उसकी अभिव्यक्ति स्पष्ट अथवा मासल न कर कल्पनामय या मनोमय है। छायावाद का कवि प्रेम को शरीर की भूख न समझ कर एक रहस्यमयी चेतना समझता है। नारी के अङ्गो के प्रति उसका आकर्षण नैतिक आतक से सहम कर जैसे एक अस्पष्ट कुतूहल मे बदल गया।

पन्त की प्रेम भावना भी सौन्दर्य-चेतना का ही अङ्ग है। प्रेम भावना का परिचय देते समय इसका विस्तार से वर्णन किया गया है। यहा केवल यही कहना है कि पन्त का प्रेम काल्पनिक नही है। उसमे पावनता, सरलता, निरछद्मता और सुदृढता है। ग्रथि कविता इसका प्रमाण है। ग्रंथि मे प्रेम जन्य स्मृति, विषाद और प्रेमपरक चेष्टाओ का पर्याप्त वर्णन हुआ है।' प्रेम के प्रति पन्त का दृष्टिकोण छायावादी ही तो है। वे कहते हैं—

और भोले प्रेम! क्या तुम हो बने,
वेदना के विकल हाथों से? जहा,
झूमते गज से विचरते हो वही,
आह है उन्माद है, उत्ताप है।

पर नही, तुम चपल हो, अज्ञान हो,
हृदय है, मस्तिष्क रखते हो नहीं,
बस बिना सोचे, हृदय को छीन,
सौंप देते हो अपरिचित हाथ मे ।

७ प्रकृति चेतना का आरोप छायावादी काव्य प्रकृति का ही काव्य है । इसमे प्रकृति के सहारे विविध भावो, अनुभूतियों, चेष्टाओ का वर्णन किया गया है । पन्त एक सफल छायावादी कवि हैं । प्रकृति के अनमोल पूत पन्त ने प्रकृति को ही अपना सर्वाधिक आकर्षण स्वीकार किया है । छायावाद मे प्रकृति-वर्णन की प्रधानता को देख कर ही डॉ० रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि प्रकृति का क्षेत्र ही इन कवियो का क्षेत्र है । ऐसी स्थिति में इस कविता को यदि छायावाद के बजाय प्रकृतिवाद कहें तो अधिक युक्तियुक्त होगा । वर्मा जी का यह मत मान्य भले ही न हो, किन्तु यह ठीक है कि छायावादी कविता मे प्रकृति-तत्व की प्रधानता है ।

पन्त जी के काव्य की प्रेरणा ही प्रकृति है । उनकी प्रारम्भिक रचनाओ मे प्रकृति प्रेम की तीव्रता की छाया कई स्थलो पर है । वीणा मे तो उनकी स्पष्ट घोषणा है—

छोड द्रुमो की मृदु छाया
तोड प्रकृति से भी माया
बाले तेरे बाल-जाल मे
कैसे उलझा दूं लोचन ।

पन्त ने प्रकृति पर सवेदनापूर्ण दृष्टि डाली है । उनकी प्रकृति चेतन है तथा उसके कार्य-व्यापारो का चित्रण भी प्राणवान या जीवित मनुष्य की भाति ही किया गया है । तभी तो पवन कलियो को धीरे से चूमकर भाव विभोर करता है । उसका फूलो के प्यालो मे अपना यौवन दान कर मधुकर को पिलाता है । उनका बादल कभी मृग के सदृश चौकडी भरता है तो कभी मत्तगज के समान झूम-झूमकर चलता है । पन्त की अधिकाश कविताओ मे मानवीय चेतना का आरोप किया गया है । नौका विहार, एकतारा, गुजन मे सध्या के बाद, [illegible], ग्राम्या के हिमाद्रि, स्वर्णकिरण मे आवाहन सौवर्ण मे कवि ने प्रकृति पर चेतना का विभिन्न रूपो मे आरोप किया है । एक उदाहरण देखिए जिसमें प्रकृति वर्णन मानवीय चेतना से सवलित है—

देखता हूं जब उपवन, पियालो मे फूलो के
प्रिये भर भर अपना यौवन, पिलाता है मधुकर को
नवोढा बाल लहर अचानक उपकूलों के
प्रसूनों के ढिग रुककर सरकती है सत्वर
अकेली आकुलता सी प्राण कहीं तब करती मृदु आघात
सिहर उठता कृश गात, ठहर जाते हैं पग अज्ञात ।

३. **व्यक्तिवादिता**—छायावादी कविता वैयक्तिक अनुभूतियो की कविता है। इसमे अन्तर्मुखी प्रकृति की प्रधानता है। परिणाम स्वरूप कवि कभी तो विषय पर विषयी का आरोप करता है और कभी समष्टि से अलग रहकर व्यष्टिवादिता का वाना पहन लेता है। इस प्रकार छायावाद मे पाया जाने वाला व्यक्तिवाद तीन रूपो मे सामने आता है। पन्त भी इसके अपवाद नही हैं।

A. अपने सुख दुख की उन्मुक्त अभिव्यक्ति करते समय
B. विश्वतत्व को मन चाहे रूप मे देखने के कारण
C. परम्पराओ के व्यक्तिगत विद्रोह मे।

वेदना—पत ने इसे सहर्ष स्वीकार किया है। वे वेदना से ही काव्य की सृष्टि मानते हैं। जीवन का सुख तो क्षणिक है। आज का सुख कल विषाद वन जाता है और समस्त विश्व मे व्याप्त वेदना मनुष्य के व्यक्तित्व का परिष्कार करती है। ग्रथि का कवि लिखता है—

वेदना! कैसा करुण उद्‌गार है
वेदना! ही है अखिल ब्रह्माण्ड यह
तुहिन मे तृण मे, उपल मे लहर मे
तारको मे व्योम मे है वेदना।
वेदना कितना विशद यह रूप है
यह अ धेरे हृदय की दीपक शिखा

सृष्टि का कण-कण वेदना की घोषणा करता है। वेदना से ही विश्व का निर्माण होता है—

वेदना! ही के सुरीले हाथ से
है बना यह विश्व, इसका परमपद
वेदना का ही मनोहर रूप है।

यहा यह भी नही भुलाया जा सकता है कि पन्त की आरभिक वेदना क्रमश: उन्नयित होकर हाहाकार से अन्तर्विश्वास वनती गई है तथा आगे चलकर उसने मानव भविष्य का निर्माण किया है। इस प्रकार पन्त के दर्शन के रूप मे स्वाभाविक गति से विकसित होती गई है। पन्त काव्य मे व्यक्तिगत और समष्टिगत दोनो ही प्रकार की वेदना के दर्शन होते हैं—

व्यक्तिगत वेदना—

वालको सा ही तो मैं हाय
याद कर रोता हू अनजान
न जाने होकर भी असहाय
पुन किससे करता हू मान।

समष्टिगत वेदना—

कहा वह सत्य वेद विख्यात
दुरित दुख दैन्य न थे जब ज्ञात

अपरिचित जग मग्न श्रू पात !
हाय सब मिथ्या बात
आज तो सौरभ का मधुमास
शिशिर में भरता सूनी सांस !
वही मधु ऋतु की गुंजित डाल
झुकी थी जो यौवन के भार ।

५. विस्मय की भावना—छायावाद की स्वच्छंद काव्यधारा मे विस्मय या जिज्ञासा की भावना पर्याप्त मात्रा मे मिलती है । छायावादी कवि प्रकृति के भरे-पूरे वैभव से सृष्टि के रहस्य से विस्मय विमुग्ध होता रहा है । पन्त प्रसाद सभी मे यह प्रकृति पाई जाती है । विस्मय या जिज्ञासा रहस्यवाद की प्रारम्भिक स्थिति है । प्रसाद ने कामायनी में 'हे अनन्त रमणीय कौन तुम' कहकर तथा पंत ने मौन निमन्त्रण जैसी कविताओ मे इसी जिज्ञासा या विस्मय भावना को चित्रित किया है ।

पन्त की जिज्ञासा भावना भी रहस्यवाद की ही एक कडी है । उनका चिर उत्कंठातुर हृदय जगती के अखिल चराचर के मौन मुग्ध होने का रहस्य जानने को उत्कंठित है । कवि का विस्मय शान्त सरोवर के एकाएक चचल हो उठने पर विस्मय विमुग्ध है । प्रकृति का प्रत्येक उपादान—नक्षत्र, विद्युत, सौरभ, लहरें, खद्योत और ओस सभी के कार्य विस्मय और जिज्ञासा के वाहक हैं । पन्त की कविताओ मे उन सबका विस्मयात्मक वर्णन मिलता है । दो उदाहरण देने से हमारे कथन की पुष्टि हो जायगी—

शान्त सरोवर का उर
जिस इच्छा से लहराकर
हो उठता चचल चचल
सोये वीणा के स्वर
क्यो मधुर स्पर्श से भर-भर
बज उठते प्रतिपल प्रतिपल ।

एक अन्य उदाहरण भी देखिये—

देख वसुधा का यौवन भार
गूंज उठता है जब मधुमास
विधुर उर के से मृदु उद्गार,
कुसुम जब खुल उठते सोच्छवास
न जाने सौरभ के मिस कौन ?
सदेशा मुझे भेजता मौन !

पन्त ने अज्ञात की छवि को विश्व के कण-कण मे अनुभव किया है, समस्त जड-जगम को ब्रह्म का ही स्वरूप माना है । कहने की आवश्यकता नही कि पन्त काव्य मे विस्मय की भावना पर्याप्त मात्रा मे मिलती है । इसे रहस्यवाद या दर्शन मानना उचित नही है, यह तो केवल जिज्ञासा है ।

६. रूढ़ियों के प्रति विद्रोह—छायावाद के मूल मे विद्रोह की भावना भी रही है। इसका स्पष्टीकरण करते हुए दिनकर ने बताया है कि छायावाद हिन्दी मे उद्दाम वैयक्तिकता का पहला विस्फोट था, वह साहित्यिक शैलियो का ही नही, अपितु समग्र जीवन की परम्पराओ, रूढियो, शास्त्र निर्धारित मर्यादाओं और मनुष्य की चिन्ता को सीमित करने वाली तमाम परिपाटियो के विरुद्ध जन्मे हुए एक व्यापक विद्रोह का परिणाम था और मनुष्य की दबी हुई स्वतन्त्रता की भावनाओ को प्रत्येक दिशा मे उभारने वाला था। छायावाद का इतिहास उस युग का इतिहास है जब मनीषियो ने पहले-पहले अपने को पहचाना और रूढियो के सकेत पर चलने से इन्कार कर दिया।

विद्रोह की भावना पन्त मे भी मिलती है। पन्त ने रूढियो के विद्रोह को पल्लव की भूमिका मे पर्याप्त व्यापकता और विशदता से व्यक्त किया है। उनका विद्रोह किसी एक ही पक्ष के प्रति नही रहा है, अपितु भाषागत, भावगत और कलागत सभी क्षेत्रो मे पाया जाता है। शृ गार की अश्लीलतम भावनाओ मे व्यक्तिकरण के निमित्त भी पन्त ने विहारी, केशव के प्रति विद्रोह किया है। वे लिखते हैं—पर उस व्रज के वन मे झाड-झखाड, करील बबूल भी वहुत हैं। उसके स्वरो में दादुरो का वेसुरा आलाप, उसके कोमल पकिल गर्भ से जीर्ण अस्थि-पजर, गोंडे, सिवार और घोघो की भी कमी नहीं है। .. अधिकाश भक्त कवियो का समग्र जीवन मथुरा से गोकुल ही जाने मे समाप्त हो गया। बीच मे उन्ही की सकीर्णता की यमुना पड गई कुछ किनारे पर रहे, कुछ उसी मे वह गये, वडे परिश्रम से कोई कोई पार भी गये तो व्रज से द्वारिका तक पहुंच सके, ससार की सारी परिधि यही समाप्त हो गई।

पुराने उपमानो के प्रति भी कवि पन्त ने विद्रोह किया है। यही कारण है कि वे उन्हें छोडकर नये उपमान चुनते दिखाई देते हैं। केवल एक उदाहरण देखिये जिसमे केशो के लिए परम्परागत उपमान—सूर्य, भ्रमर आदि के स्थान पर नवीन उपमानो का प्रयोग किया है—

घने लहरे रेशम से बाल
मिलिन्दो से उलझी गु जार
मृणालों के मृदु तार
मेघ सा सध्या का ससार
वारि से ऊर्मि उभार।
मिले हैं इन्हें विविध उपहार
तरुण तम से विस्तार!

अभिव्यजना के क्षेत्र मे भी छायावादी कवियो ने जो नवीनता अपनाई है, उसका प्रयोग भी पन्त ने पर्याप्त मात्रा मे किया है। छायावाद मे भाषा की लाक्षणिकता और चित्रमयता के साथ साथ शैली की व्यजकता और सूक्ष्मता व 'प्रतीकता' दिखाई देती है। अनेक स्थलो पर मानवीकरण; विशेषण विपर्यय विरोधाभास और नयी अप्रस्तुत योजना मिलती है। पन्त ने छायावाद की

सभी शैलियो को अपनाया है। प्रतीकात्मकता, व्यजनात्मकता और साकेतिकता का प्रयोग तो पन्त ने बडी सफलता से किया है। प्रतीको के माध्यम से की गई अभिव्यक्ति देखिये—

देखू सबके उर की डाली,
किसने रे क्या-क्या चुने फूल,
जग के छवि उपवन के अकूल,
इसमे कलि, किसलय, कुसुमशूल !

ध्वन्यात्मकता की दृष्टि से भी पन्त काव्य पर्याप्त महत्ता का अधिकारी है। पल्लव और गु जन की कवितायें इसका प्रमाण है। बादल मे भावानुकूल शब्दो के प्रयोग से ध्वन्यात्मक गुण की सृष्टि हुई है। भाषा मे जो नवीनता मिलती है वह भी छायावादी तत्त्वो की सरणि मे बैठी दिखाई देती है। पन्त की भाषा कविता की आत्मा को प्रतिबिम्बित करती दिखाई देती है। ध्वनिमय चित्रो और कोमलकात पदावली की दृष्टि से ये पक्तियो देखिये—

मृदु मन्द मन्द मथर मथर,
लघु तरिणि हसिनी सी सुन्दर,
तिर रही खोल पालो के पर।

पत के छन्दो मे भी नवीनता का विधान देखने को मिलता है। उनकी छद योजना मे परम्परा और प्रगति के चरण दिखाई देते हैं। कुछेक स्वच्छद छन्दो का प्रयोग भी किया गया है। पन्त की अभिव्यजना पद्धति के सम्बध मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी के ये शब्द ध्यान देने योग्य हैं 'पन्त ने शोभा सुषमशाली वनमाली की तरह काव्य कला की तरह काव्यकला की रचना की है। छवि की अ गुलियो से किरणो की डोरियो मे स्वप्नो की सुमनावलिया गू थकर उन्होने कविता का शृ गार किया। उनके शब्द, भाव और छन्द मे जीवन शिल्पी की सुचारुता है। उनकी कलाकारिता अनुपमेय है। उसमे ब्रजभाषा की सुघरता और खडी बोली की नागरिकता का अपूर्व समावेश है।"

प्रगतिवाद और पन्त

सामान्य परिचय—आधुनिककाल विविधताओ का काल है। इसमें प्रारभ से ही काव्य और गद्य मे वैविध्य और वैचित्र्य रहा है। छायावादी कविता द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया थी और प्रगतिवाद छायावादी कल्पना शीलता और वायवीयता का परिणाम था। प्रगतिवाद एक ऐसी काव्यधारा थी जो समाज और जन-जीवन की पुकार लेकर आई थी। इस प्रकार मे एक और सामाजिकता का द्वार सबके लिए खुला था तो दूसरी ओर असाहित्यिक तत्त्व भी पनपते रहे। परिणाम यह हुआ कि प्रगतिवाद जीवन का काव्य ही बन कर रह गया। उसमे वह साहित्यकता नही आ सकी जो छायावाद मे थी।

प्रेरणा उद्भव—ऐतिहासिक दृष्टि से प्रगतिवाद का जन्म सन् १९३५-३६ के आसपास हुआ ८-१० वर्ष बाद प्रयोगवाद के हाथो इसकी मृत्यु हो

गई। मार्क्सवाद, फ्रायडवाद और गाधीवादी दर्शनो से अपने अनुकूल सूत्र सकलित करके प्रगतिवादियो ने इस काव्यधारा का प्रवर्तन किया। डॉ गोविन्द त्रिगुणायत ने प्रगति की पृष्ठभूमि मे छायावाद की प्रतिक्रिया को स्वीकार किया है। डॉ० प्रेमशकर ने प्रगतिवाद को सम्पूर्ण छायावाद की प्रतिक्रिया न मानकर उत्तरवर्ती छायावादी गीति सृष्टि जिसमे असामाजिकता भरी पडी थी की प्रतिक्रिया स्वरूप स्वीकार किया है। डॉ नगेन्द्र ने इसे राजनीति का ही प्रतिपादक स्वीकार किया है। उनके शब्द हैं—"व्यावहारिक रूप मे प्रगतिवाद एक विशेष राजनीतिक विचारधारा का ही उच्चार है जो बलपूर्वक साहित्य द्वारा अपनी प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति चाहता है" यही कारण है कि इसमे रोटी-रोजी को समस्या का समाधान और दिशा निर्देशो की अभिव्यक्ति खूब हुई है। इससे प्रगतिवाद मे मस्तापन आ गया है, किन्तु यह भी सकारण है। जब नेता लोग सामाजिक वैषम्य को मिटाने मे असमर्थ रहे तो नये तरुण कवियो ने यह भार अपनी कलम पर सम्हालने के लिए साहित्य को राजनीति के स्तर पर लाकर खडा कर दिया।

पन्त ने छायावाद की मृत्यु का कारण बताया है तथा यह भी बताया है कि प्रगतिवाद की उपादेयता क्या है ? वे लिखते है--"छायावाद इसलिए अधिक नही रहा कि उसके पास भविष्य के लिए कोई ठोस सामग्री नही थी। पन्त ने रूपाभ की भूमिका के माध्यम से यह भी बताया कि प्रगतिवाद युगीन आवश्यकता है। इस युग की वास्तविकता ने जैसा उग्र रूप धारण किया इससे प्राचीन विश्वासो के मूल हिल गये, भाव और कल्पना का सागर किनारे तोडकर जमीन पर आ गया। श्रद्धा और अवकाश मे पलने वाली सस्कृति का वातावरण आन्दोलित हो उठा और काव्य की स्वप्न जटित आत्मा का जीवन कठोर आवश्यकता के उस नग्न रूप मे सहम गई है। अतएव अब युग की कविता सपनो मे नही पल सकती है। उसकी जडो को अपनी शोषण सामग्री धारण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड रहा है। पन्त की ये पक्तियें देखिये—

> देख रहे हो गगन मृत्यु नीलिमा नील गगन।
> देखो भू को स्वर्गिक भू को मानव-पुण्य प्रसू को।।

स्वरूप और प्रवृत्तिया—प्रगति का सामान्य अर्थ है आगे बढना। किन्तु प्रगतिवाद के साथ प्रगति शब्द एक विशिष्ट अर्थ की प्रतीति कराता है। सामान्यत अपने युग के दर्पण मे प्रत्येक कवि की कविता प्रगतिशील होती है किन्तु प्रगतिशील कविता से तात्पर्य उस कविता से लिया जाना चाहिए जो प्राचीन रूढियो को तोडकर जन जीवन की धरती पर मगल और विश्वास का अलख जगा रही हो। यह भौतिक मान्यताओं को स्वीकृति प्रदान करता है।

सैद्धातिक दृष्टि से प्रगतिवाद मार्क्स के सहारे आगे बढता है। एक प्रश्न है कि क्या प्रगतिवादी पूर्णत. मार्क्सवादी है ? नही मार्क्सवादी पूर्णत. प्रगतिवादी नही हो सकते हैं। हा, कुछ ऐसी बातें है जो प्रगतिवाद और मार्क्सवाद मे मिलती-जुलती हैं। खैर मार्क्स की एक विशिष्ट व्याख्या है और उसका आधार द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है। भौतिकवाद का अभिप्राय है ससार

का मूलाधार पंचभूत अर्थात् पदार्थ (Matter) प्रत्येक मानसिक व्यापार पर बाह्य जगत का सीधा प्रभाव पड़ता है। वस्तुतः जीवन में ग्रहणीय वही वस्तु है जो हमें ऐन्द्रियक रूप से प्राप्त हो सके। मार्क्सवादी नास्तिक-अविश्वासी हैं। मार्क्स ने इतिहास को भौतिक दृष्टि से देखा है तथा बताया है कि "पदार्थ से ही संसार चेतना रूप में प्रकाशित हुआ और पदार्थ से ही इसका विकास संभव हो सका है। मार्क्स मूलतः यह बताता है कि भौतिक जीवन की उत्पादन पद्धति से मानव जीवन की राजनैतिक, सामाजिक और बौद्धिक प्रक्रियाओं का जन्म होता है। अतः कला के उद्भव में भी भौतिक उत्पादन पद्धति का हाथ है।" (डॉ० सावित्री सिन्हा) प्रगतिवाद के संदर्भ में समाजवादी दर्शन की चर्चा भी की जाती है। समाजवादी दर्शन समाज के विकास में विश्वास रखता है। यह विकास तभी संभव है जब कि सभी साम्य के आधार पर जीवन व्यतीत करें। पूँजीवादी प्रथा या व्यवस्था को वह अपना शत्रु समझता है। प्रगतिवाद वर्गहीन अथवा सर्वहारा वर्ग की कल्पना करता है और शोषितों और पीड़ितों की वेदना को साहित्य के सहारे अभिव्यक्ति देना अपना परम कर्त्तव्य समझता है। वह उनके पक्ष में आन्दोलन करना पसंद करता है तथा दलित व शोषित वर्ग की वेदना और पीड़ा के साथ सहानुभूति करना उसे अवश्य याद रहता है।

समाजवाद की ही भांति प्रगतिवाद में सामाजिक सुख-दुख को प्राधान्य मिल गया है। प्रगतिवाद व्यक्ति की अपेक्षा समाज को प्रधानता देता है। डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में वह सौन्दर्य को अपने हृदय या दूसरे की आँखों में देखने की अपेक्षा सामाजिक स्वास्थ्य में देखता है। अपनी ही समस्याओं या भावनाओं में उलझे रहना व्यष्टि को समष्टि से पृथक देखने का प्रयत्न मिथ्या है, और साथ ही एक रुग्ण या विकृत मनोवृत्ति का परिचायक है। दूसरे शब्दों में इस प्रकार प्रगतिवाद का उद्देश्य अहम् का समाजीकरण है।

प्रश्न है प्रगतिवादी साहित्य का ध्येय क्या है? इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि प्रगतिवाद जनतंत्र की स्थापना करना चाहता है तथा साम्राज्यवाद का विनाश करने में संतोष लाभ करता है। इसके साथ ही प्रगतिवादी राष्ट्रीय उन्नति और लोक-कल्याण में विश्वास करता है। वास्तविकता यह है कि प्रगतिवाद जन-चेतना और प्रागतिक प्रवृत्तियों का काव्य है। इसमें जो प्रवृत्तियाँ मिलती हैं वे इस प्रकार हैं—

१ प्राचीन परम्पराओं का विनाश
२ जीवन के नये मूल्यों की स्थापना
३ वैयक्तिक मुक्ति और सामूहिकता या सामाजिक जागृति
४ [illegible] का विरोध
५ [illegible]
६ [illegible]
७ [illegible] की मान्यता।

छायावादी कविता के अग्रणी कवि पन्त प्रगतिवादी है। उन्होने छायावाद से प्रगतिवाद की ओर करवट ली है। वे जब तक छायावादी रहे तब तक तो उन्हें जीवन स्वप्न लगता रहा किन्तु जैसे ही वे प्रगतिशील और सामाजिक चेतना के पक्षधर बने वैसे ही उनका दृष्टिकोण बदल गया। वे नयी चेतना के वाहक बन गये। उस समय राजनैतिक चेतना जाग्रत थी। देश के सामने अपना भविष्य था तो नहीं किन्तु एक ओर आर्थिक वैषम्य था तो दूसरी ओर समाज के शरीर और मन की दीन-हीन दशा का सवदनशील कवि पर इतना प्रभाव पडा कि उनकी कल्पना के रगीन पख जल गये। उसका स्वप्न जाल तिरोहित हो गया। कुसुमो की कोमलता यथार्थ की आच से झुलस गई। परिणामत. उन्होने रूपाभ की भूमिका मे लिखा— कविता के स्वप्न भवन को छोडकर हम इस खुरदरे पथ पर क्यो उतर आये? इस सम्बन्ध मे भी दो शब्द लिखना आवश्यक हो जाता है। इस युग मे जीवन की वास्तविकता ने जैसा उग्र आकार धारण किया है, उससे प्राचीन विश्वासो मे प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गये है। श्रद्धा-अवकाश मे पलने वाली सस्कृति का वातावरण आन्दोलित हो उठा है। काव्य की स्वप्न-विजडित आत्मा-जीवन की कठोर आवश्यकता के उस नग्न रूप को देखकर सहम गई है। अतएव इस युग की कविता स्वप्नो मे नही पल सकती। उसकी जडो को अपनी पोषण सामग्री ग्रहण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड रहा है और उस युग जीवन ने उसके चिर सचित सुख स्वप्नो को जो चुनौती दी है उसको उसे स्वीकार करना पड रहा है।

पन्त ने प्रगतिवाद को उसके सही रूप मे समझा है—उसको एक व्यापक रूप दिया है। उत्तरा की भूमिका मे यही विचार पल्लवित है "हमारे कतिपय प्रगतिशील विचारक प्रगतिवाद को वर्गयुद्ध की भावनाओ से सम्बधित साहित्य तक ही सीमित रखना चाहते है, उन्हे इस युग की अन्य सभी प्रकार की प्रगति की धारायें प्रतिक्रियात्मक, पलायनवादी, सुधार व जागरणवादी तथा युग्म चेतना से पडित दिखाई देती हैं। वे आलोचक अपने सास्कृतिक विश्वासो मे मार्क्सवादी ही नही, अपने राजनीतिक विचारो मे कम्यूनिष्ट भी है।" सच बात यही है कि प्रगतिवाद एक ऐसा वाद है जो ऐतिहासिक वैज्ञानिक के आधार पर जन-समाज की सामूहिक प्रगति का पक्षपाती है।

अब आगे हम उन तत्वो की विवेचना कर रहे हैं जो प्रगतिवादी पन्त की रचनाओ मे मिलते हैं। असल मे पन्त की प्रगतिशीलता स्वच्छ प्रगतिशीलता है। यही कारण है कि वे समाजोन्मुखता के विश्वास को लेकर जी रहे है।

१ जड परम्पराओं का विनाश—कवि पन्त जब छायावाद से प्रगतिवाद की भूमि पर आये तब उन्होने प्राचीन परपराओ को ध्वस्त करने की सोची। वे उन जड परम्पराओ को हटाने के लिए तत्पर हो गये जो समाज के विकास मे बाधक थे। इसी भावना से प्रेरित होकर उन्होने लिखा था—

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र,
हे स्रस्त-ध्वस्त है शुष्क शीर्ण,

हिम ताप वीत मधुगत मीत,
तम वीतराग जड, पुराचीन ।

जड परम्पराओ के विनाश के साथ साथ, अनुभूति की व्यापकता भी तब और भी स्पष्ट होती है जब कि कवि कोमल से मधुर गीत गाने का आग्रह करता है । यह आग्रह मानव की कल्याण कामना से ही प्रेरित है—

गा कोकिल बरसा पावक कण,
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन
ध्वस भ्रष्ट जग के जड बधन,
पावक पग धर आवे नूतन,
हो पल्लवित नवल मानवपन ।

कवि इन जड परम्पराओं का विनाश करने के बाद जनहित की कामना करता है । जनहित की इस कामना मे भले ही जीवन सघर्ष सहना पडे किन्तु व्यक्ति को लोक मगल से विलग नहीं होना चाहिए । उनके (कवि के) ये शब्द देखिये—

धर्म नीति औ सदाचार का,
मूल्याकन है जनहित,
सत्य नही वह जनता से जो,
नही प्राण सम्बन्धित ।

२. जीवन के नवीन मूल्यों की स्थापना करना भी प्रगतिवाद का लक्ष्य था और पन्त जी इससे विलग नही हैं । प्राचीन मान्यताओ के घटाटोप से निकलकर पन्त जी नवीन चिन्तन के सहारे समाज मे नये मूल्यो और आदर्शों की प्रतिष्ठा करना चाहते है । वे ग्रामीण जीवन को भी खण्डहरो मे न देख कर सुख, शाति और विश्वास के रूप में देखना चाहते हैं। ग्रामीण जीवन कवि को नरक वत् प्रतीत होता है । ऐसे ग्रामीण जीवन से भला सभ्यता और सस्कृति निर्वासित नही होगी । तो कहा से होगी ? कवि को रूढियो और रीतियो की प्राचीनता के प्रति क्षोभ है । जातिबधन कभी भी कल्याण कर नहीं होते हैं । कवि जब देखता है कि प्राचीन मान्यताए ध्वस्त हो रही हैं तो वह नये युग का अवतरण देखता है । कवि के हृदय मे उल्लास भर उठता है, वह गीत गाता है । नवीन मूल्यो की चेतना के विकास के दो रूप हैं—एक तो क्रूर यथार्थ का वर्णन और दूसरे भावी मधुर वैभव की कल्पना ।

सामाजिक यथार्थ की क्रूर अभिव्यक्ति का स्वरूप निम्नलिखित पक्तियों में मिलता है—

भूख प्यास से पीडित उसकी मही आकृति,
स्पष्ट कथा कहती, कैसी यह युग की सस्कृति ।

पन्त ग्रामीण जीवन को असंख्य ऐश्वर्य सम्पन्न नहीं मानते हैं । वे कहते हैं कि क्रूरता और निर्धनता का नग्ननृत्य ग्रामों में ही देखा जा सकता

है। मस्कृति और सभ्यता से हीन ग्रामीण जीवन हरा भरा कितना ही हो, किन्तु कवि की दृष्टि मे मनुष्य ही सबसे दुखी है—

ये जीवित हैं या जीवन मृत,
या किसी काल-विष से मूर्छित ?
ये मनुजाकृति ग्रामिक अगणित,
स्थावर, विषण्ण, जडवत्, स्तभित।

नवीन मूल्यो की स्थापना के हेतु वृक्षो पर लगे जीर्ण पत्तों का गिरना ही अच्छा है क्योकि इसके बाद ही नये मूल्यो की स्थापना हो सकेगी। यह मधुर जीवन की भावी कल्पना है जो पन्त की अनेक कविताओ मे मिलती है। 'युगवाणी' व ग्राम्या' मे मधु-वैभव की कल्पना-छविया पर्याप्त मात्रा मे मिलती हैं। कवि की कामना है कि मनुष्य की रक्त-मास की सभी इच्छायें उसके अधिकार मे होनी चाहिए। यदि ऐसा हो सका तो पृथ्वी पर मानवीय प्रेम का राज्य हो सकेगा। ऐसा ही मधुर कल्पना से समन्वित ये पक्तिया देखिये—

जीवन की क्षण धूलि रह सके जहा सुरक्षित,
रक्त मास की इच्छाए जन की हो पूरित,
मनुष्य प्रेम से जहा रह सके मानव ईश्वर,
और कौन सा स्वर्ग चाहिए तुम्हें धरा पर।

युगवाणी मे पन्त जी मध्यवर्ग के मानव को जो यश का भी परिजन-प्रिय है—मुक्त होने का सन्देश देते हैं तथा श्रमिको के सरंक्षक के रूप मे उसकी सस्तुति करते हैं। एक विद्वान आलोचक ने लिखा है कि कवि अत्यन्त सजग और सतर्क दृष्टि से युग सत्य पर यथार्थ रूप मे विचार करता है। कल्पना का मधुमय लोक छोडकर वह वास्तविकता की ओर अग्रसर होता है किन्तु वास्तविकता मे कवि का मार्क्स के अनुयायियो से मतभेद है। कवि ने साम्यवादी प्रचारक के रूप मे साम्यवाद की अभिव्यक्ति नही की, अपितु उसे लोक कल्याण का एक पक्ष विशेष समझकर वाणी दी है। साम्यवादी सकीर्णता का प्रवल विरोध किया है। पन्त जी का साम्यवाद से यह मतभेद अत्यत स्वस्थ चिन्तन का परिचायक है। वे साम्यवाद को एक सोपान और तथ्य के रूप मे स्वीकार करते हैं—पर साम्यवाद अन्तिम स्थिति नही है। बस यही पन्त और अन्य प्रगतिवादियो मे अन्तर है जिसके कारण पुनरुत्थान के कवि पन्त को व्यक्तिगत आलोचना के माध्यम से यह भी सुनना पडा कि उनमे न तो मौलिकता है और न दृढ दर्शन। पर ये तो दृष्टि का अन्तर है। साम्यवादियो की नजर मे पन्त जी अवास्तविक ही दिखाई देते है। मानव जीवन का एक वास्तविक चित्र तो देखिये:—

शैय्या की क्रीडा कदुक है जिनकी नारी
अहमन्य वे मूढ अर्थवल के व्यभिचारी।
सुरागना सम्पदा सुराओ से मवेदित,
नर पशु वे भू भार मनुजता जिनसे लज्जित।
दर्पहिठी निरकुश, निर्मम कलुसित, कुत्सित,
गत सस्कृति के गरल-लोक जीवन जिनसे मृत।

मानव कल्याण की भावना प्रगतिवाद मे पर्याप्त मात्रा मे मिलती है। प्रत्येक दर्शन अपने-अपने ढग मे इसी कल्याण का प्रसार करता है। मार्क्स ने भी अपने ढग से जनहित की ओर दृष्टि डाली है। प्रगतिवादी पन्त मे छायावादी सौन्दर्य युग से निकलने के पश्चात गुजन मे मानव-कल्याण की स्पष्ट मुखरित अभिव्यक्ति मिलती है। मनुष्य की विविध रूपरेखाओं को कवि देखता और समझता है। प्रगतिवाद मे मानव कल्याण के लिए सकीर्णता और वर्ग वैषम्य को दूर करने का प्रयत्न किया गया है। कवि पन्त भी इसी भावना के साथ अपनी बात कहते हैं। मानव-कल्याण की क्रांतिकारी भावना के प्रकाश मे पन्त ने पहले तो मानव की कुत्सित वृत्तियो व जीवन-पद्धतियो का चित्रण किया है। तदनतर मानव कल्याण की कामना की गई। कवि की दृष्टि मे आज मानव का रूप स्वरूप यह होना चाहिए—

सस्कृत हो सब जन, स्नेही हो सहृदय सुन्दर,
सयुक्त कर्म पर हो सयुक्त विश्व निर्भर !
राष्ट्रो से राष्ट्र मिले देशो से देश आज,
मानव से मानव हो जीवन निर्माण काज।

सामाजिकता—कवि पन्त मानव कल्याण के लिए सामाजिकता के पक्षपाती हैं, किन्तु उनकी यह सामाजिकता साम्यवादियो की भाति व्यक्ति का उपेक्षित दृष्टि से नही देखती है। वास्तविकता यह है कि कवि प्रगतिवादी दृष्टि का सहारा लेते हुए यह बताना चाहता है कि समानता बुरी नही है, बुरे है समानता के साम्यवादी साधन। कवि भाव और कर्म मे साम्य चाहता है जिस साम्य के आधार से इस पृथ्वी पर वह नव मानव की सस्कृति की किरणो से आलोकित मानव-निर्मित स्वर्ग की कामना करता है। नव सस्कृति मे कवि का प्रगतिशील दृष्टिकोण देखिये। कवि भाव और कर्म मे सतुलन स्थापित करते हुए कह रहा है—

भाव कर्म मे जहा साम्य हो सतत,
जग-जीवन में हो विचार जन के रत,
ज्ञान-बद्ध निष्क्रिय न जहा मानव-मन,
मृत आदर्श न बधन सक्रिय जीवन।
रूढि रीतिया जहा न हो आराधित,
श्रेणि वर्ग मे मानव नही विभाजित।

...

मुक्त जहा मन की गति, जीवन मे रति,
भव मानवता मे जन जीवन मे परिणति।

पन्तजी ने मानव कल्याण के आधारभूत सिद्धातो मे से समता के सिद्धान्त को स्वीकार किया है। कवि सघर्षजन्य मानव-कल्याण नहीं चाहता है। उसकी दृष्टि मे तो मानव के हृदय और शरीर मे समता होनी चाहिए तथा मानव को अपने हृदय परिवर्तन करना चाहिए। सर्वांगीण विकास के लिए मानव को अपने हृदय को बदलना होगा। पन्त की प्रगतिशीलता

नारी के सामाजिक बन्धनो को भी मुक्त करने मे लगी रही है। उन्होने एक सच्चे प्रगतिवादी होने के कारण कहा है कि मुक्त करो नारी को मानव चिर बन्दिनी नारी को। इसके अतिरिक्त नारी की दयनीय दशा को भी कवि ने उद्धार की दृष्टि से देखा है। कवि ने नर-नारी को समान महत्व दिया है और कहा है कि नर-नारी को समान अधिकार मिलने चाहिए। मानव कल्याण का अर्थ मनुष्य का ही कल्याण नही है, नारी का जागरण भी इसी परिभाषा की परिधि मे समाहित है। इस कार्य को करते समय (नारी की समानता और जागृति के समय) कवि ने सामन्तयुगीन पद्धति की कटु अलोचना भी की है।

स्पष्ट शब्दो मे कहा जा सकता है कि कवि का मानव-कल्याण परक दृष्टिकोण प्रगतिवादी चेतना का परिणाम है। प्रगतिवादी जिस विन्दु से मानव-कल्याण चाहते हैं उससे भी अच्छा और परिशोधित मार्ग पन्त का है। यह सही भी है कि मानव-कल्याण के लिए आन्तरिक और वाह्य शक्तियो मे समन्वय और सतुलन स्थापित हो।

कल्पना की अतिशयता का विरोध भी प्रगतिवादियो की कविताओ मे मिलता है। पन्त, जो स्वय सौन्दर्य जीवी और कल्पना जीवी रहे हैं, आगे की कविताओ मे, कल्पना का विरोध करते दिखाई देते है। अचल का कथन सही उतरता है जिसमे कल्पना को अनुभूति की मुखापेक्षी माना गया है। स्वय पन्त के विचार हैं—"यदि लेखक अपने अनुभव और अपने विचारो को अपने ही समाज से जिससे कि उसके पाठक भी अधिक परिचित है, परिस्थितिया और वाह्य उपकरण चुन कर व्यक्त कर सके और पाठको से परिचित साचे में ढाल कर अपनी कृतियो को सामने रख सके तो निस्सदेह उसके रचनात्मक विचारो मे अधिक शक्ति होगी और उसकी कला मे अधिक प्रभाव होगा।" कल्पना का गायक पन्त अपनी प्रगतिवादी और यथार्थपरक कविताओ मे कहता है—

सिगरेट के खाली डिब्बे पन्नी चमकीली,
फीतो के टुकडे तस्वीरें नीली-पीली।

छायावादी युग की कविताओ मे प्रकृति और सौन्दर्य के वर्णन मे कवि कल्पना के परो पर बैठकर आकाश मे उडता दिखाई देता है जब कि युगवाणी और ग्राम्या मे कल्पनातिशयता का नामोनिशान नही है। प्रकृति के पुजारी पन्त जब लिखते है—

बासो का झुरमुट,
सध्या का झुटपुट,
हैं चहक रही चिडिया
टी-वी-टी टुट् टुट्।

तो स्पष्ट हो जाता है कि कवि का कल्पना-वैभव यथार्थ की धरती पर आकर व्यावहारिक और पूर्वापेक्षा अधिक सयत हो गया है।

नवीन सामाजिक जाग्रति भी प्रगतिवादी पन्त की विशेषता है। समाज के यथार्थ रूप के दर्शन करने का अभिलाषी प्रगतिवादी कभी भी जन-जागृति का विरोधी नही रहा है। पन्त ने भी भोर के सुनहले वातावरण की उपेक्षा की है और मिट्टी मे सने ऊबड-खाबड स्थानो पर रहने वाले मानव के प्रति सहानुभूति प्रकट की है। 'ग्राम्या' मे इस प्रकार के मटमैले जीवों के धूले-घुलाये कई चित्र मिलते हैं। प्रगतिवादी पन्त दीन-हीन शोषित वर्ग की पीडा से पीडित है। वह स्वप्नो की दुनिया से बाहर आकर यथार्थ की खुरदरी जमीन पर आने का निमन्त्रण देता दिखाई देता है। 'भू' की ओर उन्मुख कवि के शब्द हैं—

ताक रहे हो गगन ?
मृत्यु नीलिमा गहन-गगन ?
अनिमेष अचितवन, काल नयन ?
निस्पन्द शून्य, निर्जन, नि स्वन ?
देखो भू को,
स्वर्गिक भू को,
मानव पुण्य प्रसू को।

ग्राम्या मे मजदूरी करती नारी तथा वृद्धो का भी वर्णन है। अन्धकार की गुहा सरीखी आखो वाला बुड्ढा जब पन्त की कविता मे आलम्बन बनता है तो कवि की सामाजिकता और मानवता का ही पक्ष पुष्ट होता है।

काव्य शिल्प—प्रगतिवादी कविता मे शिल्प के प्रति उदासीनता दिखाई देती है। छायावाद की अभिव्यजना वैभव जैसे सामाजिकता की लहरो मे कही का कही डूब गया हो। भाषा की सादगी, शैली की सरलता और वर्णन की सहजता प्रगतिवादी कविता का प्राण है। "प्रगतिवादी काव्य मे पन्त ने भी सहजता की ओर अपना आकर्षण व्यक्त किया है। अस्पष्ट और गम्भीरता व कला विलास और रूपरग का मोह त्यागकर वह सरलता की ओर उन्मुख हुए हैं। उन्होने अनुभूति और चिन्तन को महत्व दिया है, कल्पना और कला को नही। पन्त का छायावादी युग के शिल्पी का रूप प्रगतिवाद में तिरोहित हो गया है। प्रतीको की मनोहरता और शैली की लाक्षणिकता का वैभव यहा नही है। यहा शैली की मात्र सहजता ही द्रष्टव्य है—

चींटी को देखो।

पन्त की ग्राम्या, युगवाणी की भाषा प्रगतिवादी सिद्धान्तो और आदर्शों की छाया मे तैयार हुई है। ग्रामश्री का वर्णन प्रतीकात्मकता, लाक्षणिकता और मानवीकरण की शैली से पर्याप्त दूर है, उसमे वह सहजता है, वह सादगी है और वह आकर्षण है जो बहुत-सी छायावादी रचनाओ मे भी नहीं मिलता है। कवि की ये पक्तिया देखिये—

रोमाचित सी लगती वसुधा,
आई जो गेहू मे बाली,

अरहर सनई की सोने की,
किंकणिया है शोभाशाली।
उड़ती भीनी तैलाक्त गन्ध,
फूली सरसो पीली-पीली,
लो हरित धरा से झांक रही,
नीलम की कलि तीसी नीली।

अलकारो की भीड भी पन्त की प्रगतिवादी रचनाओ मे नही मिलती है। गु जन और पल्लव का अलकार प्रिय कवि 'वाणी मेरी क्या तुम्हें चाहिए अलकार, जैसी पक्तिया कहता है। पन्त की प्रगतिशीलता के सम्बन्ध मे कहा जा सकता है कि "वे समष्टि के रूप मे एक प्रगतिवादी लेखक हैं, जिन्होने पहले छायावाद की ललित कला दी थी। आज समाजवाद की वस्तु कला दे रहे हैं। पहले उन्होंने भू-पलको पर 'स्वप्नजाल-सी छाया' का रेशमी ससार बुन दिया था, आज वे सौन्दर्य के नये आकार और जीवन के नये नीड की रचना कर रहे है। (शातिप्रिय द्विवेदी)

निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि पन्त छायावाद के कल्पना कुज से निकल कर प्रगतिवाद के झुरमुट मे आकर टिक गये हैं। यहा आने पर उन्होने जनहित का बीडा उठाया है तथा वे हर परिस्थिति मे समानता, स्वतन्त्रता और बन्धुत्व के साथ-साथ मानव-कल्याण की बात कर रहे हैं। पन्त ने विषमत्व मे एकत्व और एकत्व मे अनेकत्व की प्रतिष्ठा की है। इस प्रकार वे मानव के अन्तर्बाह्य विकास के कवि बनकर सामने आये हैं। यही कारण है कि उन्होंने प्रगतिवाद की मार्क्सवादी व्याख्या को सशोधन के साथ स्वीकार किया है। उनकी प्रगतिवादी चेतना जन-कल्याण की कामना मे जुडी हुई है।

पन्त का उत्तरकालीन काव्य

सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य विकास की चर्चा करते समय पिछले पृष्ठों मे बताया गया है कि कवि ने विकास किया है, उनकी चेतना सदैव एकसी नही रही है—वे कभी छायावादी रहे हैं तो कभी प्रगतिवादी और कभी नवचेतनावादी या अध्यात्मवादी। समय की दौड मे साथियो से पीछे न रहने वाला कवि पन्त अन्ततः उस बिन्दु पर आ गया है जहा पर उसे सही मानियो मे मानवतावादी या साम्यवादी कहा जा सकता है। प्रत्येक काल की चेतना के साथ उनकी कुछ विशिष्ट कृतिया जुडी हुई हैं। जैसे छायावादी चेतना के साथ पल्लव, वीणा और गुञ्जन का नाम सलग्न है तो ग्राम्या, युगवाणी और युगान्त के साथ प्रगतिवादी चेतना का नाम लिया जा सकता है। स्वर्णकिरण एक ऐसी रचना है जहां से कवि नयी चेतना का आश्रय लेता है। वह स्वय नये दर्शन की इस खोज को स्वीकार करते हैं। नवचेतनावादी दर्शन के साये मे लिखी गई कृतियो मे स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, उत्तरा, अतिमा, वाणी और कला व बूढा चाद जैसी कृतिया आती हैं। यों 'लोकायतन' महाकाव्य भी इसका अपवाद नही है।

इस शीर्षक (उपरिनिर्दिष्ट) के अन्तर्गत हम पन्त के उत्तरकालीन काव्य का विवेचन कर रहे हैं। यह स्वर्णचेतना का युग है जबकि कवि का दर्शन नयी आलोक रश्मियों से गुजरता हुआ समन्वयवादी दर्शन में विश्राम लेता है। पन्त ने स्वयं लिखा है कि मैं अध्यात्म और भौतिक दोनों दर्शन सिद्धान्तों से प्रभावित हुआ हूँ, पर भारतीय दर्शन की तात्कालीन परिस्थितियों के कारण जो एकान्त परिणति व्यक्ति की प्राकृतिक मुक्ति में हुई (दृश्य जगत एवं ऐहिक जीवन के माया होने के कारण उसके प्रति विराग आदि की भावना जिसके उपसंहार मात्र हैं) और मार्क्स के दर्शन के पूँजीवादी परिस्थितियों के कारण जो वर्ग युद्ध और रक्तक्रांति में परिणति हुई है, ये दोनों परिणाम मुझे सांस्कृतिक दृष्टि से उपयोगी नहीं जान पड़े। स्पष्ट ही पन्त समन्वयवादी रहे हैं। उन्होंने सदैव ही विरोधी शक्तियों में समन्वय करने की चेष्टा की है। समन्वयवाद की इस चेतना या विचारधारा में सर्वाधिक महत्व की कड़ी के रूप में स्वर्णकिरण और स्वर्णधूलि व उत्तरा का स्थान है। स्वयं कवि ने इस नये मोड़ को स्वीकार किया है। रश्मिबन्ध का परिदर्शन इसका प्रमाण है—अब मैं अपनी काव्य-चेतना के विकास के एक अत्यन्त आवश्यक मोड़ या स्थिति के बारे में कहने जा रहा हूँ जहाँ से स्वर्णकिरण का युग आरम्भ होता है। जिसे आप मेरे चेतना काव्य का युग भी कह सकते हैं। वह ग्राम्या से पाँच वर्ष बाद का समय है। इसी बीच मेरे मन में ज्योत्स्ना और ग्राम्या की चेतनाओं का—आदर्श और यथार्थ की चिन्ता धाराओं का—संघर्ष तथा मंथन चलता रहा है। इसी का परिपाक स्वर्णकिरण की विकसित जीवन चेतना के रूप में हुआ जिसको मैंने अपनी स्वर्णोदय नामक रचना में तथा वाणी की आत्मिका शीर्षक रचना में अधिक परिपक्व रूप में अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि पन्त का परवर्ती काव्य नयी चेतना और नवीन जीवन-पद्धति का परिचायक है। स्वर्णकिरण इस चेतना को प्रकाशित करने वाली प्रथम कृति है। अब आगे इनका विवेचन किया जा रहा है।

स्वर्णकिरण—यह वह रचना है जब से पन्त का नवीन जीवन-दर्शन प्रारम्भ होता है। स्वर्णकिरण के पूर्व ही पन्त अरविन्द के सिद्धान्तों और दर्शन के अनुगामी हो चुके थे। पंत ने स्वयं इसे स्वीकार किया है। स्वर्ण किरण की तैयारी की पृष्ठभूमि में कवि का व्यक्तिगत दुःख भी रहा है। डॉ० रामरतन भटनागर के शब्दों में पन्त को जीवन की आशा नहीं रही थी। इसमें संदेह नहीं कि सन् १९४० के बाद कवि जहाँ बाह्य जगत के दुःखों के संपर्क में आया वहाँ उसे स्वयं दीर्घकालीन रोग, अस्वास्थ्य और मृत्यु का भय अनुभव करना पड़ा। स्वस्थ होने पर कवि पांडुचेरी के आश्रम में भी रहा था। उसके जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण में भी परिवर्तन हुआ। अरविन्द का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ा। कहने की आवश्यकता नहीं कि आश्रम में रह कर पन्त ने जो लिखा वह १९४७ में स्वर्णकिरण के नाम से प्रकाशित हुआ।

कवि इस सग्रह के माध्यम से यह बताना चाहता है कि जग जीवन के देखने समझने के लिए मनुष्य के पास भावना और बुद्धि के साधनो से भी आगे एक मार्ग है-सहजस्फुरण का मार्ग जिसे सूक्ष्म प्रेरणा, दिव्य प्रेरणा,सूक्ष्म चेतना, सूक्ष्मदृष्टि आदि मे उत्तरोत्तर विकसित कर दिव्यदृष्टि मे परिणति दी जा सके। स्वर्णकिरण की कवितायें इसी चेतना की व्याख्या करती जान पडती है। इस कृति से पूर्व कवि बहिर्चेतना की कविताओ के सृजन पर विशेष ध्यान देता था, किन्तु यहा तक आते-आते वह यह अनुभव करने लगा था कि अन्तर्जगत का विकास भी आवश्यक है। इसी कारण आध्यात्मिक जीवन का विश्वासी कवि पन्त अन्तर्मन को भी उद्बुद्ध करने मे लगता दिखाई देता है। वह सामाजिक और भौतिक जीवन से भी ज्यादा महत्व अन्तर्मन को देता है। उसने लिखा है—

सामाजिक जीवन से कही महत् अन्तर्मन,
वृहत् विश्व इतिहास, चेतना जीता किन्तु निरन्तर।

प्रगतिवादी कवि ने भौतिकता और सभ्यता के तत्वो के विकास पर, पर्याप्त बल दिया था, वही अब सभी भौतिक बाधाओ को पार करता हुआ सास्कृतिक उत्थान की बात करता है। "स्वर्णकिरण मे सम्मोहन, रजतातप मत्स्यागधा, जिज्ञासा आदि रचनायें कवि की साधनात्मक स्थितियो से सम्बन्धित अनुभवो तथा विस्मय आदि भावो की अभिव्यजना करती हैं। स्वर्णकिरण मे कवि ने मृत्यु की भयकर सत्यता के बीच अमरत्व का अभिवादन किया है। अमरत्व की ओर अग्रसर होने के लिए कवि ने आध्यात्मिक अनुभव किये हैं और उनका सौन्दर्य उसके जीवन मे पूर्णरूप से प्रविष्ट हो गया। अत इस रचना मे दार्शनिक प्रस्थापन के साथ एक अलौकिक विस्मयात्मक सौन्दर्य भावना के दर्शन होते हैं। इस सौन्दर्य भावना का आधार अलौकिकता अथवा आध्यात्मिकता है।"

स्वर्ण किरण का कवि दिव्य चेतना का कवि है। उसने समस्त विश्व की वस्तुओ को दिव्य प्रकाशान्वित देखा है। इस दिव्य दृष्टि ने हमारे कवि को जीवन की नश्वरता के साये से निकाल कर अमरत्व प्रदान किया है। कवि ने लिखा है—

निज जीवन का कटु सघर्षण,
भूल गया यह मानव अन्तर।
जग जीवन के नव स्वप्नो की,
ज्योति वृष्टि मे स्नान कर अमर॥

डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने स्वर्ण किरण की कविताओ के विषय मे लिखा है—यदि स्वर्ण किरण मे हिमाद्रि जैसी ही कई कवितायें होती तो सौन्दर्य अङ्कन की दृष्टि से यह सग्रह अत्यधिक मूल्यवान हो जाता परन्तु इस सग्रह मे कवि का ध्यान सत्य की प्रामाणिकता सिद्ध करने तथा सत्य का उपयोग बताने पर अधिक रहा है। परिणामत कवि प्रकृति की वस्तुओ का तटस्थ रूपदर्शन कम करता है और विचार-शीलता अधिक प्रारम्भ होने लगती

है। वह समाज और संस्कृति, क्रान्ति, शांति व मानवता के विकास आदि पर व्याख्याता की पद्धति पर अपने विचार प्रकट करने लगता है और परिणाम यह होता है कि वस्तु केवल बात कहने का बहाना बन जाती है।

संक्षेप मे स्वर्ण किरण की निम्नलिखित विशेषतायें हैं—

१ स्वर्ण किरण आत्मा के उत्थान की कृति है।
२ दिव्य-चेतना से मानव के अन्तर का विकास होता है। मानव को बाह्य और आन्तरिक दोनो विकासो की शुद्धता पर बल देना चाहिये।
३ आध्यात्मिकता सांस्कृतिक उत्थान की जननी है। भौतिकता का मार्ग मानवता का मार्ग नही है।
४ आत्मा और शरीर की शक्तियो मे समन्वय आवश्यक है।

स्वर्ण धूलि—इसमे कवि ने दर्शन का व्यावहारिक रूप प्रस्तुत किया है। यह रचना स्वर्णकिरण से बहुत आगे की रचना नही है। इसमें स्वर्णकिरण की चेतना का ही प्रकाश फैलता दिखाई देता है। कवि समानता और शुद्धता के साथ-साथ सांस्कृतिक जीवन के विकास पर विशेष बल देता है। स्वर्णधूलि की रचनायें कई विषयो पर लिखी गई हैं। इसमे कुछ तो सामाजिक कवितायें हैं और कुछ राष्ट्रीय व सैद्धान्तिक रचनायें हैं। कुल मिलाकर कवि सामाजिकता की ओर ही अधिक झुकता दिखाई देता है। स्वर्ण किरण के समन्वयवाद को यहा खुल कर विचरने का अवकाश मिला है। सामञ्जस्य शीर्षक कविता की ये पंक्तिया देखिये—

पंख खोल सपने उड जाते,
सत्य न बढ पाता गिन-गिन पग,
सामञ्जस्य न यदि दोनो मे,
रखती मैं क्या चल सकता जग ?

स्वर्ण धूलि की कुछ रचनाओ मे विनय या प्रार्थना भाव अधिक विकसित हुआ है। यो मानवीय संवेदना को व्यक्त करने वाली रचनायें भी मिलती हैं। 'मुक्ति बंधन' शीर्षक कविता में आई ये पंक्तिया देखिये—

क्यो तुमने निज विहग गीत को,
दिया न जग का दाना पानी।
आज आर्त अन्तर से उसके,
उठती करुणा कातर वाणी।
शोभा के स्वर्णिम पिंजर मे,
उसके प्राणो को वन्दी कर,
तुमने क्यो उसके जीवन की,
जीव मुक्ति ली पल भर में हर।
उडता होता क्यो न गगन मे,
चुगता होता दाने भू पर।

"इन पंक्तियो के माध्यम से कवि ने 'विहग गीत' के सम्बोधन मे वेदना की अभिव्यक्ति की है । गगन मे उडना और धरती पर दाने चुगना यह सिद्ध करता है कि अध्यात्मवादी कवि जीवन की यथार्थता से दूर नही जाना चाहता । यद्यपि पन्त जी को भौतिकवाद और अध्यात्म दोनो ने प्रभावित किया है किन्तु कवि ने इसे जगत के कल्याण के रूप मे ही देखा है । वह अंधवाद-भक्त नही रहा । कवि जीवन का भक्त है जीवन के सघर्ष से पलायन नहीं करता । यदि कवि धरती पर अपना घोसला नही बना-पाते हैं तो पन्त जी उन्हें समाज के प्रति विद्रोही ही समझ कर ललकारते हैं ।"

स्वर्णधूलि मे सामाजिक उत्थान की रचनाये भी हैं । 'पतिता' शीर्षक कविता इसका प्रमाण है । बताया गया है कि नारी की शारीरिक पवित्रता ही आत्मा की पवित्रता है । अत नारी की आत्मा विषयक पवित्रता सुरक्षित रहनी चाहिए । इसमे चादनी, ममंव्यथा, स्वत्व बधन आदि कवितायें गीति-काव्य की दृष्टि से श्रेष्ठ रचनायें हैं । इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि स्वर्ण धूलि मे भी बाह्य और आन्तरिक समन्वय की कहानी को कहा गया है । अन्त मे डा नगेन्द्र के शब्दो मे कहा जा सकता है कि शिल्प बहुत साधना की वस्तु है । उसके लिए परिष्कृत रुचि के अतिरिक्त कल्पना की समृद्धि और प्रयत्न साधन अपेक्षित होता है । पन्त मे यह तीनो गुण प्रभूत मात्रा मे हैं, अतएव उनकी कला सदा विकासशील रही है और स्वर्णकिरण और स्वर्ण धूलि मे वह अपनी चरम प्रौढि पर पहुँच गई है । यह प्रौढि तीन दिशाओ मे लक्षित होती है । काव्य सामग्री की समृद्धि-परिष्कार और विस्तार प्रयोग कौशल की सूक्ष्मता और अभिव्यक्ति की परिपक्वता । स्वर्ण किरण मे पन्त ने अत्यन्त समृद्ध काव्य सामग्री का प्रयोग किया है । अनेक कविताओ का कलेवर रूप रग के ऐश्वर्य से जगमगा रहा है स्वर्ण धूलि की कुछ कविताओ मे नित्य प्रति के भौतिक जीवन के साधारण उपकरणो का भी उपयोग हुआ है वास्तव मे चयन और नियोजन की इतनी सूक्ष्मता, रूप और रग का इतना बारीक मिश्रण अन्यत्र नही मिलता है ।

उत्तरा—इस कृति का प्रकाशन सन् १९४९ मे हुआ है । इससे पूर्व की दोनो रचनाओ (स्वर्ण किरण और स्वर्ण धूलि) मे कवि ने जिस समन्वय-वादी आध्यात्मिक चेतना का सूत्रपात किया था वह विकसित रूप मे उत्तरा मे ही दिखाई देती है । स्वय कवि ने अनेक कविताओ के माध्यम से अपने नये दर्शन की घोषणा की है—

बदल रहा अब स्थूल धरातल ।
परिणत होता अब सूक्ष्म मनस्तल ॥
विस्तृत होता बहिर्जगत
विकसित अन्तर्जीवन अभिमत ।

डॉ० गुलाबराय ने अपने निबध सग्रह 'अध्ययन और आस्वाद' मे पन्त जी की उत्तरा का संदेश विश्लेषित किया है । उन्होंने लिखा है कि इस नवयुग में भौतिकवाद की स्थूल मान्यता बदल रही है । विज्ञान के लिए

जड़भूत पदार्थ नही रहे हैं। वे शक्ति-प्रेरित स्पदनो के केन्द्र बन गये हैं। भौतिकता से जगत मानसिकता की ओर जा रहा है। बहिर्जगत भी सकुचित नही रहा है और उसके विस्तार मे ही अभीष्ट अन्तर्जीवन का विकास हो रहा है। इसी की अभिव्यक्ति के लिए इस पुस्तक का निर्माण हुआ है। कवि युग के कोलाहल और क्रदन से जो समतल भूमि की भेद बुद्धि ने प्रभावित हैं, अनभिज्ञ नही है। वह युगविषाद, 'युगछाया' और युगसघर्ष में उसकी अभिव्यक्ति करता है किन्तु साथ ही उसमे एक आध्यात्मिक भावना भी भर रहा है।

उत्तरा अरविन्द दर्शन के सदर्भ मे लिखी गई रचना है। अरविन्द के सहारे कवि ने अपने व्यावहारिक समन्वयवादी दर्शन का मार्ग पा लिया है। यों इस कृति की अधिकाश रचनायें आध्यात्मिक हैं। प्रकृति चित्रण की कविताओ मे भी दार्शनिक विचार विद्यमान है। पन्त ने स्वय माना है कि हम प्रवृतियो के पशुपन को मनुष्यत्व के सौन्दर्य गौरव से मण्डित नही कर सकते। कवि मनुष्य ने सौन्दर्य को उच्च भावात्मक स्थिति मानता है। यह स्थिति ऊर्ध्व स्थिति से भिन्न नही है। मन जब ऊर्ध्वगमन करता है तभी आत्मा का सौन्दर्य प्रकाशित होता है—

तापो की छाया से कलुषित अन्तर को।
उन्मुक्त प्रकृति का शोभा वृक्ष दिखाता ॥

उत्तरा आध्यात्मिक समन्वयवादी चेतना की कृति है। इसमे आकर कवि मार्क्स और भौतिकवादियो को हेय समझता है। वह अरविन्द के दर्शन मे उस सतुलित जीवन-पद्धति को पा लेता है जिसमे व्यावहारिकता का स्पर्श है। उत्तरा की कवितायें कई प्रकार की है। कुछ तो प्रार्थनापरक हैं, कुछ चिन्तनमय हैं तो कुछ प्रतीकात्मक और भावात्मक भी है। इनके अतिरिक्त कुछ रचनायें ऐसी भी हैं जो प्रकृतिपरक है सौन्दर्यपरक हैं।

अतिमा—इसका प्रकाशन सन् १९५५ में हुआ। इसकी अधिकाश रचनायें यदि स्वतत्र हैं तो कुछेक ऐसी भी हैं जो पूर्ववर्ती काव्यो की चेतना मे समन्वित हैं। विश्वभरनाथ उपाध्याय ने अतिमा की रचनाओं का विभाजन इस प्रकार किया है—

१ चिन्तनप्रधान कविताए —(अ) निजी दृष्टिकोण की उपयोगिता यथा-नव अरुणोदय, गीतो का दर्पण, आत्मबोध।
   (ब) सैद्धांतिक—शाति, क्राति।
   (स) उपदेश प्रधान—आत्मदया।

२ (अ) मानसिक स्थितियों का वर्णन—नव जागरण, जिज्ञासा, ऊषाए, प्राणो की द्वाभा, अन्तर्मानस, ध्यानभूमि, प्राणो की सरसी आदि।
   (ब) प्रतीकात्मक—कौए बतखें, मेढक प्राग, पतिगे, छिपकलियां, दीमक आदि।

३ वर्णनात्मक—जन्मदिवस, जीवन प्रवाह, युग-मन के प्रति ।

४. प्रार्थनापरक—रश्मि चरण, घर आओ, आवाहन, स्वप्नों के पथ से जाओ, प्रार्थना-अभिवादन ।

५ स्वतन्त्र—मनसिज, आ धरती कितना देती है, सोनजुही ।

६. प्रकृति चित्रण—चन्द्र के प्रति, गिरी प्रान्तर, पतझर, स्फटिक वन, कूर्माचल के प्रति ।

उत्तरा की कुछ प्रमुख विशेपताए इस प्रकार हैं—

१ कवि स्वतत्र रूप से अपनी बात कहना गया है । उसने अपने मन को मुक्त छोड दिया है ।

२ वर्णनात्मकता का पर्याप्त जोर-शोर दिखाई देता है ।

३. कथाओ को कविता की पृष्ठभूमि मे रखकर मानस की विविध स्थितियो का रूपाकन किया गया है । इसमे सौन्दर्य तत्त्व पर्याप्त मात्रा मे पाया जाता है ।

४ भाषा कोमल, मधुर और मचिक्कण जान पडती है । इस प्रकार अतिमा के चित्रण स्वर्णकिरण की श्रेणी मे आते है । इस प्रकार अतिमा विषय, दर्शन और शिल्प सभी दृष्टियो से पन्त के काव्य विकास मे नवीन कडी जोडती दिखाई देती है ।

वाणी—वाणी सन् १९५८ की कृति है । अतिमा का कथ्य इसमे विकसित हुआ है । आध्यात्मिक विकसित चेतना के विन्दु पर ही इस सग्रह की कविताए घूमती दिखाई देती हैं । वाणी के सम्बन्ध मे कहा गया है कि कवि का प्रकृति-दर्शन बहुत पहले का बना है और इस दर्शन मे उसने यहा भी कोई हेर फेर नहीं किया है । वाणी मे कवि की साधना मन के सब गुह्य प्राण प्रदेश खुल जाने की है । यही कारण है कि इसमे कवि की सूक्ष्म जीवन चेतना का अधिक मुखरित होने का सुयोग मिला है परन्तु उसने मानवपरक दृष्टिकोण को भुला नही दिया है । कवि ने अन्तर और वाह्य दोनो दृष्टियों को वाहर रक्खा है । वह युग प्रकाश को फैलाना चाहता है । जन जीवन जड चेतन की भाषा का उसे ज्ञान है, वाणी का कवि अत्यन्त समन्वयवादी प्रतीत होता है ।

विपय वैविध्य वाणी की विशेषता है । यही कारण है कि उसमे कही यथार्थवादी चेतना के दर्शन होते हैं तो कही रहस्यवादी प्रवृति के । पन्त ने कहा है कि वाणी मे जीवन के सौन्दर्य के परिधान मे मूर्त नवीन जीवन मानव-चैतन्य भी है । मानव जीवन के प्रति कवि के नये दृष्टिकोण को इस प्रकार इन पंक्तियो मे समझा जा सकता है—

नव मानवता को नि सशय, होना रे अब अन्तः केन्द्रित,
जन-भू-स्वर्ग नही युग सभव, वाह्य साधनों पर अवलवित ।

... .

आत्मा को प्राणो से विलगा अधिदर्शन ने की जग की क्षति,
ईश्वर के सग विचरे मानव भू पर, अन्यत्र जीवन परिणति ।

वाणी का कवि विगत युगो की सीमाओ की सकीर्णता को ललकारता है और नवीन चेतना के धरातल पर सामजस्य स्थापित करने का प्रयास करता दिखाई पडता है—

भू पर सस्कृत इन्द्रिय जीवन मानव आत्मा को रे अभिमत,
ईश्वर को प्रिय नही विरागी, सन्यासी जीवन से उपरत।

कला और बूढा चाँद तथा लोकायतन पत की काव्य साधना के अन्तिम सोपान हैं। प्रथम कृति सन् १९५९ की रचना है और दूसरी सन् १९६४ की। कला और बूढा चाद पुरस्कृत कृति है। बच्चन जी के शब्दो में कवि ने 'काव्याभिव्यक्ति के लिए एक ऐसे माध्यम को स्वीकार किया है जिसका उपयोग उन्होंने पहले कभी नही किया।" इस कृति मे कवि ने छन्दो की पायलें उतार कर रख दी हैं। कला और बूढा चाँद रश्मिमयी काव्य है। इसमें कवि की चेतना सहज स्फुरण करती जान पडती है। प्रतीको के नये प्रयोग, उपमानो की नव्यतम आभा तथा बिम्बो की सफल सृष्टि इस काव्य की विशेषता है।

'विचार प्रतिपादन, भावोन्मेष, प्रेरणात्मक स्थिति इन तीनो की दृष्टि से कला और बूढा चाँद ऊर्ध्व मूल्यो का काव्य है—जीवन दर्शन की दृष्टि से कला और बूढा चाद मे ज्योत्स्ना का ही अलग रूप है। इसमें कवि की विचार शृखला ऊर्ध्व चेतना के स्पर्श स्थल तक जाती है। यह काव्य पन्त जी के द्रष्टा रूप का द्योतक है।' [विनयकुमार शर्मा]

लोकायतन मे कवि की प्रतिभा महाकाव्यकार के रूप मे सामने आती है। यह लोक चेतना से प्रेरित लोक जीवन का महाकाव्य है। कवि के समग्र चिंतन का सार तत्व इसमे सन्निहित है। दर्शन की दृष्टि से इस काव्य मे अरविन्द और गाधी के सिद्धातो की व्यावहारिक भूमिका दिखाई देती है। कवि की समन्वयवादी दिव्य चेतना का प्रकाश जीवन के लिए महत्वपूर्ण सदर्भो का उद्घाटन करता दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त पन्त एक बार फिर 'पल्लव और 'ग्राम्या' की प्रकृति के स्वरूप को प्रस्तुत करते दिखाई देते हैं। इस प्रकार लोकायतन एक महान कृति है। जीवन के लिए व्यावहारिकता और भविष्य की साफ़ राह के लिए मानवता का वरण पन्त काव्य का सन्देश रहा है। निष्कर्ष रूप मे यही कहा जा सकता है कि पन्त का परवर्ती काव्य (स्वर्णकिरणेतर) समन्वयवादी भावना के विकास और प्रस्थापन का काव्य है।

गीति काव्य और पन्त

गीति मधुर भावो का उच्छ्वास है, काव्य की करुण लगन है। साहित्य के अन्तर्गत गीति का विशेष महत्व है। काव्य रूपो के साथ गीति काव्य की चर्चा भी बडे गौरव के साथ की जाती है। गीत काव्य की वह धारा है जिसमे सगीतात्मकता, सरस-शब्दावली, रागात्मकता, सक्षिप्तता, भाव की एकता और भावोद्रेक का प्राधान्य होता है। गीत की परिभाषा भारतीय

और पाश्चात्य दोनो ही वर्ग के विद्वानो ने की है। इन दोनो वर्गों के विद्वानो के विचार यहा प्रस्तुत है।

भारतीय विद्वान और गीतिकाव्य—डॉ० श्यामसुन्दर दास ने लिखा है कि गीतिकाव्य मे कवि अपनी आत्मा मे प्रवेश करता है और बाह्य जगत को अपने अन्तःकरण मे ले जाकर उसे अपने भावो से रजित करता है। आत्माभिव्यजन सम्बधी कविता गीतिकाव्य मे ही छोटे-छोटे गेय-पदो मे मधुर भावनापूर्ण आत्मनिवेदन से युक्त स्वाभाविक सी जान पडती है। उसमे शब्द की साधना के साथ-साथ स्वर की भी साधना होती है। भावना सुकोमल होती है और एक-एक पद मे पूर्ण होकर समाप्त हो जाती है। कवि उसमे अपने अन्तर्मन को स्पष्टतया द्रष्टव्य कर देता है। वह अपने अनुभावो और भावनाओ से प्रेरित होकर उनकी भावात्मक अभिव्यक्ति कर देता है।

इस परिभाषा मे जिन विशेषताओ की चर्चा की गई है वे इस प्रकार है—

१. आत्माभिव्यजन २. भावमयता ३ गेयता ४ मधुरता ५. शब्दसाधना ६ सगीतात्मकता ७. सुकोमल भावना।

डा० रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि गीति काव्य की रचना आत्माभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से होती है। उसमे विचारो की एक रूपता रहती है। अत गीत काव्य की चार विशेषताए होती हैं—

(अ) आत्माभिव्यक्ति
(ब) सक्षिप्तता
(स) विचारो की एक रूपता
(द) सगीतात्मकता।

महादेवी वर्मा—सुख दुख की भावावेशमयी अवस्था-विशेष का गिने-चुने शब्दो मे स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है। इसमे कवि को सयम की परिधि मे बधे हुए जिस भावातिरेक की आवश्यकता होती है वह सहज प्राप्य नही, कारण हम प्राय भाव की अतिशयता मे कला की सीमा लाघ जाते है और उसके उपरात भाव के सस्कारमात्र मे मर्मस्पर्शिता का शिथिल हो जाना अनिवार्य है। "वास्तव मे गीत के कवि को आर्त-क्रन्दन के पीछे छिपे हुए भावातिरेक को दीर्घ निश्वास मे छिपे हुए सयम को बाधना होगा तभी उसका गीत दूसरे के हृदय मे उसी भाव का उद्रेक करने मे सफल हो सकेगा।" इस परिभाषा मे निम्नाकित बातें है—

(अ) भावातिशयता
(ब) उपयुक्त शब्द विधान
(ग) भाव-सयम।

डॉ० नगेन्द्र ने [illegible] दूसरे शब्दो मे प्रस्तुत किया है। वे कहते है—[illegible] जो किसी प्रेरणा के भार से दबकर एक साथ गीत मे फूट [illegible]। स्वभाव से ही उसमे हार्दिकता का तत्त्व

वर्तमान रहता है। उसमे एक प्रकार की एकसूत्रता तथा सुसगठित एकता होती है जो समस्त कविता को अन्वित किये रहती है। वह एक सत्त, क्षणिक एवम् तीव्र मनोवेग का परिणाम होती है। इस परिभाषा के आधार पर गीत काव्य के ये तत्व ठहरते है— सगीतात्मकता, आत्माभिव्यजना, व्यक्तिवादिता, लयात्मक अनुभूति और धारावाहिक प्रवाह आदि।

बाबू गुलाबराय ने लिखा है कि सक्षेप मे प्रगति काव्य के तत्व इस प्रकार हैं—सगीतात्मकता और उसके अनुकूल प्रवाहमयी कोमलकात पदावली। निजी रागात्मकता जो प्राय आत्म निवेदन के रूप मे प्रकट होती हैं, सक्षिप्तता और भाव की एकता। यह काव्य की अन्य विधाओ की अपेक्षा अधिक अन्त-प्रेरित होती है। इसी कारण इसमे कला होते हुए भी कृत्रिमता का प्रभाव रहता है।

पाश्चात्य विद्वान और गीतकाव्य—हरवर्ट रीड महोदय का मत है कि गीत का मूल अर्थ अब लुप्त हो चला है, उसका व्यावहारिक पक्ष अब प्रचलित हो चला है, अब केवल भावात्मकता को ही उसकी प्रमुख विशेषता समझा जाने लगा है। अब गीत साधारणतया उस रचना को कहते हैं जिसमे सूक्ष्म अभिव्यक्ति हो अथवा इन अनुभूतियो की वे प्रतिक्रियाए हो जो एकान्त आनद मे जाग्रत होती हैं। हरवर्ट रीड की परिभाषा का विश्लेषण करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि वे गीत काव्य को भावात्मक अधिक मानते हैं।

अर्नेस्ट राइस—"सच्चा गीत वही है जिसमे भाव या भावात्मक विचार का भाषा मे स्वाभाविक विस्फोट हो, जो शब्द और लय के सामजस्य से सूक्ष्म भाव को पूर्णतया प्रदर्शित करता है और जिसके पद-लालित्य एवम् शब्द माधुर्य से वह सगीतमयी ध्वनि निकलती है जिसे स्वाभाविक भावात्मक अभिव्यक्ति कहते हैं। उसमे शब्द सरल, कोमल तथा नादपूर्ण हो, माधुर्य युक्त हो प्रसादपूर्ण हो और स्पष्ट हो।"

जान ड्रिंकवाटर के अनुसार गीत काव्य शुद्ध काव्यात्मक शक्ति द्वारा उद्भूत ऐसी अभिव्यजना है जिसमे अन्य कोई भी शक्ति सहकारी नही होती। गीतकाव्य और काव्य पर्यायवाची शब्द हैं। इनके मूल शब्द इस प्रकार हैं—

'But since it is most commonly found by itself in short poems which we call Lyric, we may say that the characteristic of the Lyric is that it is the product of pure poetic energy in associated with other energy and that lyric and poetry are synonymous terms"

प्रोफेसर गमर ने गीतकाव्य की परिभाषा करते हुए कहा है कि "यह अन्तर्वृत्ति निरूपिणी कविता है जो वैयक्तिक अनुभूति से आगे बढ़ती है, घटनाओं से जिसका सम्बन्ध नहीं प्रत्युत भावनाओं से ही जिसका घनिष्ट सम्बन्ध होता है। यह परिष्कृत जनता को प्राप्त हुए समाज का [illegible]

है। निरागणीन मानव की प्रवृति अन्तर्मुखी हो जाती है जहा इच्छा, आकाक्षा, भय आदि मनोभाव उत्पन्न होते है। इन्ही भावनाओ को अभिव्यक्त करना गीत काव्य का एकमात्र उद्देश्य होता है।"

कहने का तात्पर्य यह है कि गीति काव्य की परिभाषाए विभिन्न विद्वानो ने अपने अपने ढग से की है, किन्तु इन सब मे कुछ ऐसी विशेपताए है जो सामान्य हैं। गीत काव्य की सभी विशेपताओ का समाहार करते हुए डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत ने लिखा है कि 'गीतिकाव्य अन्तंवृत्ति निरूपक वह निरपेक्ष रचना है जिसमे शब्द और लय का सामजस्य, माधुर्य, प्रवाहात्मकता, कोमल भावनाओ का उद्रेक तथा प्रभावऐक्य के साथ-साथ कवि का अन्तर्दशन भी शब्द चित्रो मे सजोया रहता है।" अधिक स्पष्ट शब्दो मे कहना चाहें तो गीतकाव्य की निम्नलिखित विशेषताए निर्दिष्ट की जा सकती हैं—

१. अन्तर्वृत्ति प्रधानता अथवा सब्जैक्टिवटी
२. सगीतात्मकता
३ निरपेक्षता या पूर्वापर सम्बध विहीनता
४. रसात्मकता और रजकता
५ भावातिरेकता या रागात्मक अनुभूतियो की कसावट
६. शब्द चयन और चित्रात्मकता
७ समाहित प्रभाव
८. मार्मिकता, और
६ सक्षिप्तता।

अन्तर्वृत्ति निरूपण—गीति काव्य अन्तर्वृत्तियो के निरूपण की दृष्टि से विशेप महत्व रखता है। गीतकार के समक्ष दो प्रश्न रहते है—एक तो यह कि वह अपनी वैयक्तिक भावनाओ का प्रकाशन करे, दूसरे यह कि वह सामाजिकता की रक्षा करे। आश्चर्य यह है कि कवि को दोनो स्तरों पर जीना पडता है किन्तु फिर भी उसमे Subjectivity की प्रधानता रहती है। वाजपेयी जी का कहना है कि प्रगीत काव्य मे कवि की भावना की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है, उसमे किसी प्रकार के विजातीय द्रव्य के लिए स्थान नहीं रहता है। प्रगीतो मे ही कवि का व्यक्तित्व पूरी तरह प्रतिविम्बित होता है यह कवि की सच्ची आत्माभिव्यजना होती है।

सुमित्रानदन पन्त के गीतो मे अन्तर्वृत्तियो का निरूपण या निजी रागात्मकता पर्याप्त मात्रा मे मिलती है। देखिये निम्नाकित पक्तियो मे यही बात मिलती है—

विधुर उर के मृदु भावो से
तुम्हारा कर नित नव-शृगार
पूजता हूं मैं तुम्हे कुमारि
मूद दुहरे दृग द्वार!
अचल पलको मे मूर्ति सवार
पान करता हू रूप अपार

पिघल पडते हैं प्राण
उबल चलती है दृग-जल-धार।

इस गीत मे अनुभूति की निश्छल रागपूर्ण अभिव्यक्ति है। रागात्मक अवस्था मे निजत्व आरोपण आवश्यक होता है। निजी रागात्मकता के प्रभाव मे कविता का चित्र सुन्दर नही बन सकता है। एक उदाहरण और देखिये—

आज रहने दो यह गृह काज
प्राण रहने दो यह गृह काज!
आज जाने कैसी वातास
छोडती सौरभ श्लथ उच्छ्वास
प्रिय! लालस-लालस वातास
जगा रोओ मे सौ अभिलाप!

२ सगीतात्मकता—गीत काव्यो मे सगीत तत्व की पर्याप्त मात्रा विद्यमान रहती है। गीत एक ऐसी स्वर-साधना है जो वैयक्तिक अनुभूतियो के अभाव मे प्रभाव हीन बनी रहती है। कालरिज ने कविता को सगीतमय विचार (Musical thought) कहा है। जब कविता के विषय मे कहा जाता है कि इसकी लय बडी मादक है तो उस समय कविता का 'म्यूजिक' ही प्रभाव डालता है। गीत सगीत के बिना अपूर्ण है। इन दोनो के सम्बन्ध पर घनिष्ठता से विचार करते हुए डा० सरनामसिंह शर्मा ने लिखा है कि "कहना न होगा कि सगीत गीत का ही एक अमूर्त अग है। जब गीत को कठ वाद्य आदि का सहयोग मिल जाता है तो सगीत भी अभिव्यक्त हो जाता है, किन्तु प्रश्न यह उठता है कि सगीत का स्रष्टा किसे माना जाये गीत बनाने वाले को या गीत गाने वाले को? मैं समझता हू सगीत का असली कर्ता गीत बनाने वाला ही है क्योंकि गीत और सगीत मे अश अशाशी सम्बन्ध दीख पडता है। ऐसी स्थिति में यह उचित नही कि अशी से पृथक अश की कल्पना की जाय, किन्तु कलाकार तो उसे भी कहा जाता है जो गीत के अमूर्त सगीत को कण्ठ, वाद्य आदि के सहारे साकार सौन्दर्य प्रदान करता है। अतएव सगीत का प्रमुख कर्ता गीतकार और आविर्भावकर्ता गायक अथवा वादक होता है।"

सगीतात्मकता के आधार पर पन्त का काव्य सर्वोत्तम ठहरता है। उनके सगीत मे तरलता है, उदाहरणार्थ वीणा का यह गीत देखिये—

निर्झर की अजस्र झर झर!
आओ मन! नव पाठ सीख लो
इस गिरि—निर्झर के रव से
यह निर्मल जल-स्रोत गिर रहा
गिरि के चरणो मे कब से
सपदि वीणा मे स्वर भर
गाओ उससे पास बैठकर
यह अनन्त गाना गा लो।

इसका उज्ज्वल वेग देख लो
तुम दृग-जल बरसा लो !

गेयता की दृष्टि से निम्नांकित पंक्तियों को देखा जा सकता है। 'आँसू' कविता की पंक्तियों को देखिये—

कभी कुहरे सी धूमिल घोर
दीखती भावी चारों ओर !
तडित सा सुमुखि ! तुम्हारा ध्यान
प्रभा के पलक मार, उर चीर
गूढ गर्जन कर गंभीर
मुझ करता है अधिक अधीर
जुगनुओं से उड मेरे प्राण
खोजते हैं तब तुम्हे निदान !

इसी प्रकार 'मौन निमंत्रण' कविता मे गीतात्मकता का पर्याप्त पुट मिलता है। 'पल्लव' काव्य संग्रह की अनेक कविताएं इसी संगीतात्मकता का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

३. निरपेक्षता—गीत काव्य की एक विशेषता उसका निरपेक्ष या पूर्वापर सम्बन्ध विहीन होना है। सामान्यतः गीत अपने आप मे पूर्ण होता है, उसमे पूर्वापर सम्बन्ध को खोजना व्यर्थ है। 'पल्लव' संग्रह की कविताओं मे इस गुण को पर्याप्त मात्रा मे देखा जा सकता है। उदाहरणार्थ निम्न पंक्तियों को लीजिए इनका सम्बन्ध किसी भी पूर्व पद से नही है। पूर्व पद मे प्रिया की स्मृति का दर्दनाक वर्णन किया गया है और इन पंक्तियो में बादलो के छायामय मेल का वर्णन है—

बादलो के छायामय मेल
घूमते हैं आंखो मे फैल !
अवनि औ अम्बर के वे खेल
शैल मे जलद, जलद मे शैल !

और आगे की पंक्तियो मे—

पपीहों की वह पीन पुकार
निर्झरों की भारी झर झर
झींगुरों की झीनी झनकार
घनो की गुरु गंभीर घहर
बिन्दुओं की छनती छनकार
दादुरों के वे दुहरे स्वर
हृदय हरते थे विविध प्रकार
शैल पावस के प्रश्नोत्तर ॥

इन पंक्तियो से स्पष्ट है कि पन्त के गीत मे निरपेक्षता का गुण भी विद्यमान है।

४ रागात्मकता—गीत मे अन्त प्रेरणा का प्रसार होता है । कवि के हृदय की रागात्मक अनुभूतिया शब्दो के सहारे रसमयता लिए कविता मे उतरती है । इस प्रकार रसमयता गीति की महत्वपूर्ण विशेषता होती है । पन्त रससिद्ध कवि हैं । उन्होने अपने छायावादी गीतो मे इसी रसात्मकता को भर दिया है । पल्लव, वीणा और गुजन की कविताए इसी रसात्मकता का अक्षय भडार दिखाई देती हैं । वेदना, सौन्दर्य, प्रेम और प्रकृति के वर्णनो में इसी रसमयता को देखा जा सकता है । हा, प्रगतिशील रचनाओ में रसात्मकता कम होती गई है । यदि थोडी बहुत है भी तो वह व्यग्य प्रेरित और यथार्थ अभिव्यक्ति के माध्यम से ही विकास पा सकी है । यहा केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

नवोढा बाल लहर
अचानक उपकूलो के
प्रसूनो के ढिग रुक कर
सरकती है सत्वर ।
अकेली आकुलता सी प्राण !
कही तब करती मृदु आघात
सिहर उठता कृश गात
ठहर जाते हैं पग अज्ञात !

भावातिरेकता—गीति काव्य मे भावो का अतिरेक होता है । कवि के हृदय से भाव फूट पडते हैं । कहा भी गया है कि कविता Spontaneous overflow of powerful feelings है । इस प्रकार गीत जो कविता का कोमल और भावोपम शब्द-विधान है, भावातिरेकता से शून्य रहकर अपना मार्दव और अमिट प्रभाव नही छोड सकता है । गीतकार के हृदय की अनुभूतिया एक साथ ही गीत मे आ जाती हैं । पन्त इस भावातिरेक के सफल कवि हैं । ग्रथि, कविता मे जो भावोद्वेलन है वह इसका प्रमाण हैं । अश्रु, आशा, नियति, विरह, वेदना आदि की अनेक अनुभूतिया भावो की अन्तः प्रेरणा का परिचय देती हैं ! अश्रु के लिए कवि ने लिखा है—

अश्रु—दिल की गूढ कविता के सरल
औ सलोने भाव ! माला की तरह
विकल पल मे पलक जपते हैं तुम्हें
तुम हृदय के घाव धोते हो सदा !
वेदने तुम विश्व की कृश दृष्टि हो,
तुम महा संगीत नीरव हास हो ।
है तुम्हारा हृदय माखन का बना ।
आसुओं का खेल भाता है तुम्हें ॥

कहने की आवश्यकता नही कि जहा भावातिरेक होता है वहा अनुभूतियो की कसावट भी होनी चाहिए । यदि भावातिरेक के साथ अनुभूतिया विश्रृखलित होगी, उनमें कसावट का अभाव होगा तो गीत का सच्चा

आनद नहीं आ पायेगा। अनुभूतियो की कसावट इन पक्तियो मे देखी जा सकती है—

शैवलिनि जाओ मिलो तुम सिंधु से
अनिल ! आलिंगन करो तुम गगन का
चन्द्रिके ! चूमो तरगो के अधर
उडगणो ! गाओ, पवन वीणा बजा !
पर हृदय ! सब भाति तू कगाल है !

६. **शब्द चयन और चित्रात्मकता**—पन्त एक कुशल शिल्पी हैं। वे शब्दो के विधायक और उनको सुसगठित करने मे सिद्धहस्त है। कोमल भावो के अभिव्यजक शब्दो का चयन करना अथवा ऐसे शब्दो को चुनना जो वर्णन, अनुभूति और सदर्भ के अनुकूल हो पन्त की विशेषता है। गीति काव्य की समस्त विशेषताओ से युक्त पन्त की गीतात्मक कविताएं उपयुक्त शब्द विधान के लिए भी प्रसिद्ध है। कोमल भावो के लिए कोमल शब्दो का प्रयोग कर लेना पन्त की कुशलता है। देखिये तो सही—

सैकत-शैय्या पर दुग्ध-धवल तन्वगी गगा ग्रीष्म विरल
लेटी है श्रात-क्लान्त निश्चल,
....
मृदु मद-मद मथर-मथर लघु तरणि, हसिनी सी सुन्दर
तिर रही खोल पालो के पर !

प्रगतिशील रचनाओ में शब्दो के सही चुनाव के कारण ही पन्त जी के गीत गेयता और सादगी से सम्पन्न दिखाई देते हैं—

खडा द्वार पर लाठी टेके
वह जीवन का बूढा पजर
चिमटी उसकी सिकुडी चमडी
हिलते हड्डी के ढाचे भर ॥

'परिवर्तन' कविता मे पाया जाने वाला शब्द चयन परुष भावो के सर्वथा अनुकूल है। कवि ने सदर्भ का विशेष ध्यान रखते हुए बडी उपयुक्त शब्दावली का प्रयोग किया है—

अहे वासुकि सहस्त्राफन !
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरतर
छोड रहे हैं जग के विक्षत वक्षस्थल पर
शतशत-फेनोच्छ्वासित स्फीत फूत्कार भयकर ॥
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अम्बर ॥
मृत्यु तुम्हारा गरल दन्त कचुक कल्पान्तर !
अखिल विश्व ही विवर
वक्र कुण्डल
दिड् मण्डल।

गीतो मे जहा शब्दो का उपयुक्त चुनाव वाछनीय है वही पर चित्रोपमता भी अपरिहार्य है। उपयुक्त शब्द-चयन सुन्दर और मानव मन को आकर्षित करने वाले चित्र प्रस्तुत करता है! कुछेक चित्र देखिये—

सरकाती पट
खिसकाती लट
शरमाती झट

वह नमित दृष्टि से देख उरोजो के युग घट ॥

इसी प्रकार ग्रथि के अनेक चित्र गीति काव्य की समृद्धि के उदाहरण प्रस्तुत करते है। कवि ने छाया, चादनी आदि के मानवीकरणो में भी इसी चित्रमयता को अपनाया है। अलकारो का सही प्रयोग भी किसी भी गीति के लिए अपेक्षित होता है। सहज पदावली और उपयुक्त अलकारो के प्रयोग ने उनके गीतो को प्रभावशाली बना दिया है। ये पक्तिया देखिये—

नील कमल सी वे है आख
डूबे जिनके मधु मे पाख—
मधु मे मन-मधुकर के पाख,
नील जलज-सी है वे आख!
जिसमे बस उर का मधुबाल
कृष्णकली बन गया विशाल,
नील सरोरुह-सी वे आख!

इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि पन्त का गीत काव्य अनलकृत, चित्रोपम और सरलता से ओत-प्रोत है। उसमे कवि की शब्द-सयोजना व चित्रात्मक 'बधता' पाठको के मन मे प्रभाव और सहज स्फुरण उत्पन्न कर देती है।

७ समाहित प्रभाव—गीत काव्य भले ही भावो का अतिरेक व्यक्त करता हो, किन्तु उसमे प्रभावान्विति या समाहित प्रभाव सर्वथा वाछनीय है। समाहित प्रभाव तभी सभव है जबकि समूचे गीत मे आद्यन्त एक ही भाव विद्यमान हो। गीत किसी क्षणिक एव तीव्र मनोयोग का ही परिणाम है। 'जब किसी भी गीत मे कही भी कोई अन्य भाव ध्वनित हो, अथवा तनिक भी विशृखलता हो तो समझ लेना चाहिए कि वह गीत अपने आप नही लिखा गया अपितु लिखा गया है—परिश्रमपूर्वक! सच्चा गीत तो ज्वाला का वह व्यूह है जिसके समक्ष कैसा भी अन्य भाव हो जलकर राख हो जाता है! पन्त की गीतियो मे भावान्विति या समाहित प्रभाव पर्याप्त मात्रा मे मिलता है। उदाहरण स्वरूप इन पक्तियो को देखिये—

आज रहने दो यह गृह काज
प्राण! रहने दो यह गृह काज!
आज उर के स्तर स्तर मे प्राण!
सजग सौ सौ स्मृतिया सुकुमार
दृगो मे मधुर स्वप्न ससार
मर्म मे मदिर स्पृहा का भार।

आज चचल—चचल मन—प्राण
आज रे शिथिल शिथिल तन भार
आज ससार नही ससार
आज रहने दो यह गृह काज !

इसके साथ ही और भी पक्तिया लीजिए जिनमे कवि का मन खग प्रेयसी के नयनो मे खो गया है। प्रभाव का सम्मिलन भाव इन पक्तियो मे देखा जा सकता है—

तुम्हारे नयनो का आकाश
सजल, श्यामल अकूल आकाश,
गूढ नीरव, गभीर प्रसार
बसाएगा कैसे ससार
प्राण इनमे अपना समार
न इनका ओर—छोर रे पार
खो गया यह नव-पथिक अजान ।

इस प्रकार के और भी गीत है जिनमे प्रभाव समाहित होकर आकर्षित करता है। यो कुछ गीतो मे प्रभावान्विति की कमी भी खटकती है। निराला ने चादनी कविता मे इसी अभाव की शिकायत की है।

८. **मार्मिकता और सक्षिप्तता**—गीत काव्य के संदर्भ से उनकी सरसता और रागात्मकता का विवेचन पीछे किया जा चुका है। पन्त के गीत मार्मिक और सरस हैं, उनमे रागात्मकता का प्रसार है। गीत काव्य का सक्षिप्त होना अनिवार्य है। सक्षिप्तता पन्त जी के गीतो की विशेषता है। उनके गुजन और पल्लव मे, अनेक ऐसे गीत हैं जो सक्षिप्त हैं। गुजन की नीरव-तार हृदय मे, प्राण तुम लघु-लघु गात, जीवन का उल्लास, मेरा प्रति पल सुन्दर हो, कलरव किसको नही सुहाता, नील कमल सी वे आखें, कब से विलोकती तुम को, देखू सबके उर की डाली आदि रचनायें गीत की सक्षिप्तता की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। 'आधुनिक कवि' नामक सकलन का यह गीत देखिये—

बताऊं मैं कैसे सुन्दर ।
एक हू मै तुमसे सब भाति
जलद हू मै, यदि तुम हो स्वाति
तृषा तुम, यदि मै चातक पाति !
दिखा सकता है क्या शुचि-सर
कभी अपना अनन्य समतल ?
कहो क्या दर्पण ही निर्मल
दिखा सकता निज मुख उज्ज्वल ?

इस प्रकार स्पष्ट है कि पन्त काव्य मे गीति तत्त्व पर्याप्त मात्रा मे मिलता है। वे सफल गीतकार है। उनके गीतो मे गीति के सभी तत्त्वो का

प्रयोग मिलता है। पन्त के गीतो के जो विषयानुसार प्रकार मिलते है वे आलोचकों ने निम्नांकित प्रकार बताये हैं—

१ प्रकृति सम्बधी गीत २. जीवन सम्बघी गीत ३. आध्यात्मिक विरह-मिलन के गीत ४ राष्ट्रीय गीत ५ लौकिक प्रेम गीत।

इस विभाजन के आधार पर यही कहा जा सकता है कि पन्त ने अपने काव्य मे विषयो की विविधता के आधार पर उनके अनेक रूप प्रस्तुत किये हैं। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी साहित्य मे जो गीतो के प्रकार मिलते हैं वे निम्नांकित हैं—

१ चतुर्दशपदी (Sonnet)
२ शोकगीत (Elegy)
३ सम्बोधन गीत (Ode)
४ विचारात्मक (Reflective)
५ व्यग्य (Satire)
६. उपदेशात्मक (Didective)

गीतो के ये सभी प्रकार पत के गीतों मे पाये जाते हैं। सामान्यत पत ने सम्बोधन गीतो को अधिक अपनाया है। अंग्रेजी के रोमांटिक युग में वर्ड्स-वर्थ, शैले और कीट्स के सम्बोधन गीत अत्यन्त प्रसिद्ध रहे हैं। युगवाणी मे इस प्रकार के सम्बोधन गीत पर्याप्त मात्रा मे मिलते हैं—

नव वसन्त ऋतु मे आओ,
नव कलियो को विकसाओ,
प्रेयसी कविते ! हे निरुपमिते ।

अंधकार से कही गई इन पक्तियो को देखिये—

अब न अगोचर रहो सुजान,
निशानाथ के प्रियवर सहचर,
अंधकार स्वप्नो के मान,
किस के पद की छाया हो तुम !
किसका करते हो अभिमान !

उपदेशात्मक गीतो का अक्षय भडार मध्ययुग में दिखाई देता है। पन्त को उपदेश देने की आदत नही है किन्तु फिर भी एकाध स्थल ऐसे हैं जहा उपदेशात्मकता मिल जाती है। देखिये तो सही—

उठ-उठ लहरें कहती यह,
हम कूल विलोक न पावें,
पर इन उमग मे बह-बह,
नित आगे बढती जावें।

व्यग्य गीत (Satire) पन्त मे कम ही मिलते हैं। प्रगतिवादी युग की रचनाओं मे थोड़े बहुत व्यग्य मिल जाते हैं—

टूट गया वह स्वप्न वणिक का,
आई जब बुढ़िया बेचारी,

आध पाव आटा लेने
लो लाला ने फिर डडी मारी ।

पन्त ने विचार प्रधान गीतो का प्रयोग भी किया है । ये गीत गु जन मे पर्याप्त मात्रा मे मिलते है । निष्कर्ष रूप मे यही कहा जा सकता है कि पत ने अपने गीत काव्य मे सभी तत्वो और प्रकारो का प्रयोग किया है । वे एक सफल गीतकार हैं । उनके गीति सक्षिप्त, मनोहर सरस, रागात्मक, वैयक्तिक और अनलकृत और सहज है ।

कला पक्ष

भाव-पक्ष एव कलापक्ष दोनो का समुचित सयोग किसी भी सफल कृति के लिए आवश्यक है । प्रत्येक कलाकार अपनी कृति को सुन्दर बनाने के लिए जिन साधनो का उपयोग करता है वे सभी कला के प्रसाधन हैं । कलाकार कहलाने का अभिप्राय ही यह है कि कहने वाला अपने अभिमत को सुन्दर एव कलात्मक ढग से दूसरो तक पहु चा सके । एक फ्रासीसी समालोचक के शब्दो मे "कला प्रकृति की अनजान मे की हुई विवेचना है-जो अपूर्ण है, कला उसी की पूर्ति है ।" लेखक अथवा कवि जो कुछ सोचता है, उसकी सौन्दर्यानुभवी अन्तरात्मा जो कुछ अनुभव करती है उसका स्वरूप अमूर्त होता है—उन विचार अथवा भावो का ऐसा प्रस्तुतीकरण जो मन को एक बारगी मोह ले कला इस अभिधान से अभिहित किया जाता है । मैथिली शरण जी ने 'अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति' कहकर कला उसी ढग को कहा है जिससे कलाकार अपने लक्ष्य को कुशलता पूर्वक अभिव्यक्त कर सके । गुप्त जी के कथन से मिलता-जुलता कथन एक अ ग्रे जी विद्वान का है—"Expression is art"

भाव कृति का अ तरग पक्ष है और अभिव्यक्ति वहिरग पक्ष । अभिव्यक्ति का सौन्दर्य ही कला है । भाव और अभिव्यक्ति का उदय सहृदय व्यक्ति मे एक साथ होता है । भाव शब्दो मे लिपटे हुए ही उमडा करते हैं । जिस प्रकार शरद पूर्णिमा के स्वच्छ आकाश मे उदित पूर्णेन्दु के कर स्पर्श से अथाह उदधि मे उठती ज्वार की उत्तु ग लहरो के द्वारा समुद्र का चन्द्रमा के प्रति आकर्षण व्यक्त हो जाता है, उसी प्रकार सहृदय के भावो का ज्ञान भी उसके द्वारा कृति मे प्रयुक्त भाषा, छन्द अलकारो आदि के द्वारा हो जाता है । भावो को एक हृदय से दूसरे मे डालने के कौशल मे ही कला जन्म लेती है ।

पत जी प्रधान रूप से कलाकार ही है । पत जी का सबसे अधिक विद्रोह कला के क्षेत्र मे ही हुआ है । उनके काव्य मे भावो से अधिक विचारो का स्थान है परन्तु सव प्रथम स्थान तो कला का ही है । क्या भाषा, क्या छन्द अलकार-सभी क्षेत्रो में उनका विद्रोह मुखरित हो उठा है । 'पल्लव' के 'प्रवेश' मे पत जी ने भाषा, अलकार और छन्द आदि के सम्बन्ध मे अपनी मान्यता स्पष्ट की है । जहा तक भाषा को विशेष रूप से खडी बोली को

सुसज्जित एव समर्थ करने का प्रश्न है, इस क्षेत्र मे पत जी की तुलना का कोई प्रश्न नही है।

भाषा—काव्य-प्रासाद मे प्रवेश पाने के लिए सर्व प्रथम भाषा का 'मेन गेट' ही खोलना होता है। भाषा का आधार किसी भी कृति के लिए अनिवार्य है। भाव एव विचारो की भाति भाषा और कला को पृथक कर लेना असम्भव है। पत जी के शब्दो मे "भाषा ससार का नादमय चित्र है, ध्वनिमय स्वरूप है-यह विश्व की हृत्तन्त्री की झकार है जिसके स्वर मे वह अभिव्यक्ति पाता है।" भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से पूर्व खडी बोली का कोई स्थिर स्वरूप नही था। विद्वानो की वाणी से निस्सृत शब्द जाल मे उलझकर सार ग्रहण कर लेने के लिए पाठक को अनावश्यक परिश्रम करना पडता था। सक्षेप मे अधिक बात कह देने की क्षमता उस काल की भाषा मे कहा थी ? द्विवेदी काल मे भाषा का परिमार्जन हुआ और वाग्जाल में उलझी हुई भाषा को सुलझाने का कार्य हुआ। कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने उसी को अपने अथक परिश्रम से सरल स्पष्ट और प्राञ्जल बनाया साथ ही उसे काव्य प्रयो य बनाया। भारतेन्दु काल से खडी बोली की प्रगति निरन्तर होती रही है। जो खडी बोली अपने प्रारभिक रूप मे सिमटी हुई थी वही स्रोत से निकली पतली रेखा सी दीख पडने वाली भागीरथी के उस विशाल पाट के समान जो हुगली और स्वर्ण रेखा आदि के सयोग से उसे बगाल की खाडी मे गिरते समय प्राप्त हुआ है, पत जी की प्रतिभा का वरदान पाकर अपनी समस्त शक्तियो को विकसित एव गूढ निधियो को प्रस्फुटित करके आज सबसे समर्थ भाषा के पद पर आसीन है।

डॉ नगेन्द्र के शब्दो मे 'उनकी भाषा चित्र–भाषा है, उनके शब्द भी चित्रमय और सस्वर हैं–सेब की तरह उनकी रस मधुरिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर छलकी पडती है। सङ्गीत की दृष्टि से वह लोक लहरो का चचल कलरव, बाल-झङ्कारो का छेकानुप्रास है। उसके प्रत्येक शब्द का स्वतन्त्र हृत्कम्पन, स्वतन्त्र अङ्ग-भङ्गी स्वाभाविक सासे है। उसका सङ्गीत स्वरो की रिमझिम मे बरसता छनना-छलकता, बुदबुदो मे उबलता, छोटे छोटे उत्सो से कलरव मे उछलता-किलकता हुआ बहता है। उसके शब्द एक-दूसरे के गले पकडकर, पगो से पग मिलाकर सेनाकार भी चलते हैं और बच्चो की तरह अपनी ही स्वच्छन्दता मे थिरकते कूदते भी हैं।"

कविता के लिए पत जी चित्रभाषा और चित्रराग उपयुक्त समझते हैं। चित्र भाषा वह है जिसमे शब्द अपनी ध्वनि से ही अपने भाव को आखो के समक्ष चित्रित कर सके। चित्रभाषा भाव के लिए है। किसी भाव का ऐसा वर्णन, जिससे कि भाव अमूर्त न रहकर मूर्त रूप मे, चित्र रूप मे हमारे सामने स्पष्ट हो जाय, चित्रभाषा के द्वारा ही सभव है। शब्द जब न केवल भाव को आकार प्रदान करे अपितु स्वय सस्वर भी हो उठें तब चित्रभाषा ही चित्रराग बन जाती है। कवि के शब्दो मे 'भाव और भाषा का सामञ्जस्य, उनका स्वरैक्य ही चित्रराग है। जैसे भाव ही भाषा मे घनीभूत हो गये हों, निर्झरिणी

की तरह उनकी गति और रव एक बन गये हो, छुडाये न जा सकते हो ।" चित्रराग के लिए यह आवश्यक है कि भाषा को पढने पर आखो के सामने चित्र उपस्थित हो जाय साथ ही रसानुभूति भी हो । भाषा चित्रमय हो और भाव रसमय । कविता की पूर्णता तभी है जब पाठक का हृदय उसे पढकर रस-विभोर हो उठे । कविता मे जहा भाव होते हैं वही रस आता है, भावो के अभाव मे रस कहा, जहा चित्रभाषा है वही चित्रराग भी है । पत जी का कथन है "कविता के शब्द सस्वर होने चाहिए, जो बोलते हो, सेब की तरह जिनके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पडे ·· जो झकार मे चित्र, चित्र मे झकार हो, जिनका भाव सगीत (चित्रराग) विद्युद्धारा की तरह रोम-रोम मे प्रवाहित हो सके ।" कवि का यह कथन उनके मतव्य को स्पष्ट कर रहा है । भाषा के चित्रराग का एक उदाहरण निम्नलिखित पक्तियो मे द्रष्टव्य है—

उड गया अचानक, लो भूधर,
फडका अपार पारद के पर,
रव-शेष रह गये हैं निर्झर,
है टूट पडा भू पर अम्बर !
धस गये धरा मे समय शाल !
उठ रहा धुआ, जल गया ताल !—(उच्छ्वास)

शब्द अर्थ के द्वारा भाव की अभिव्यक्ति किया करते हैं अथवा यो कहें कि अर्थ द्वारा शब्द ही भाव बन जाते है और राग द्वारा रस । इस उदाहरण से एक बिम्ब सामने आ जाता है, साथ ही 'उड गया' 'फडका' 'धस गये' आदि सस्वर शब्दों का प्रयोग हुआ है ।

पत जी गीतकार भी है । गीतकार के लिए गेयता का स्थान प्रथम होता है भाषा का गौण । परन्तु पत जी के काव्य मे यह बात नही है । वे तो सशक्त भाषा के हिमायती है । पत जी के काव्य मे कला का स्थान पृथक है इसके उपरान्त क्रमश विचार और भावो का है । भावो की तीव्रता हो परन्तु प्राणवत्ता का अभाव हो, वहा शब्दो की कमजोरी और पीलापन स्वत ही झलक जाता है, भावो की विद्यमानता मे ही भाषा का महत्त्व है । भाषा भावो की वाहिका है । पत जी भाव और भाषा के सामञ्जस्य पर पूर्णरूपेण बल देते है । जहा भाव और भाषा मे मैत्री नही होती है ऐसे स्थल के बारे मे पत जी का कथन है कि "वहा के पावस मे केवल शब्दो के वटु समुदाय ही दादुरो की तरह इधर-उधर कूदते-फुदकते तथा सामध्वनि करते सुनाई देते है ।'

शब्द-चयन—पत को भाषा के कारण जो गौरव प्राप्त है उसका कारण है उनका शब्द-चयन । सुन्दर और उपयुक्त शब्द-चयन के लिए पत जी ने दूर-दूर तक हाथ बढाया है । और तद्भव और देशज शब्दो से लेकर विदेशी और संस्कृत शब्दो का प्रयोग भी उनके काव्य में देखने को मिलेगा । कही फारसी के शब्द लिए गये हैं तो कही अग्रेजी के । कही-कही विदेशी शब्दो के आधार पर नये शब्द बना लिए हैं और कही शब्दो मे कमगम कराकर

उन्हें सुडौल कर दिया है। यद्यपि संस्कृत की व्यञ्जनापूर्ण तत्सम शब्दावली का बाहुल्य है। फिर भी ब्रजभाषा एवं अन्य किसी भाषा के शब्दों के प्रयोग में पंत जी ने कोई आनाकानी नहीं दिखाई। पंत जी को सौन्दर्य अधिक लुभाता है। उनकी यह प्रवृत्ति उनके शब्द-चयन में भी द्रष्टव्य है। संस्कृत के सुन्दर शब्द ही नहीं कहीं-कहीं तो पद-के-पद उठा कर रख दिये हैं, जैसे 'एकोऽहं बहुस्याम्' 'पत्र-पुष्पम्' 'नानृत जयति' 'सत्य' मा मैं' 'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।' प्रसंगानुकूल आर्ष शब्दावली का प्रयोग भी किया गया है—'ॐ क्रतो स्मर कृत क्रतो स्मर।'

पंत जी ने संस्कृत शब्दों का प्रयोग अवसरोपयुक्त किया है जैसे—'एकोऽहं बहुस्याम्' आदि पदों का प्रयोग धार्मिक वातावरण के सृजन के लिए किया है।

पंत जी ने अंग्रेजी के बहुत से शब्दों का प्रयोग किया है। बहुत से फूलों के नाम आपने अंग्रेजी के ही दिये हैं। अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग 'ग्राम्या' में अधिक मिलता है। उनकी स्वीट पी, आधुनिका, क्रोटन की टहनी, सौन्दर्य-कला आदि रचनायें ऐसी हैं जिनमें अंग्रेजी शब्दों का पर्याप्त प्रयोग हुआ है। अंग्रेजी के शब्दों के प्रयोग का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

नत दृग ऐन्टिह्निनम तितली सी पेंजी पापी सालन,
हसमुख कैंडीटफ्ट रेशमी चटकीले नैशटर शम,
खिली स्वीट पी—एवडस, फिलबास्केट औ ब्लू बैटम्।
दुहरे कार्नेशंस, स्वीट सुल्तान सहज रोमांचित,
ऊंचे हाली हॉक लार्कस्पर पुष्प स्तम्भ से शोभित।
फूले बहु मखमली, रेशमी, मृदुल गुलाबों के दल,
धवल मिसेज एड्रू कार्नेगी ब्रिटिशक्वीन हिम उज्ज्वल।
जाफ हिल सनवर्स्ट पीत, स्वर्णिमा लेडी हेलिंडन,
ग्रेंड मुगल रिचमंड, विकच ब्लैक प्रिंस नील, लोहित तन।
फे अरी क्वीन, मारगरेट मृदु, वीलियम शोन चिर पाटल,
बटन रोज बहु लाल ताम्र, माखनी रंग के कोमल।

फारसी के शब्दों का प्रयोग 'मधुज्वाल' में अधिक मिलता है। फारसी के नादान, चोज, शरमाना, जैसे शब्द उदाहरण स्वरूप लिए जा सकते हैं, उर्दू फारसी के अन्य उदाहरण देखिए—

१ बच्चों की निगरानी करती।
२ वह सलाम करता है झुक कर।
३ चकित रहता शिशु सा नादान।
४ मजलिस का मसखरा बरिंगा।
५. क्षणभर एक चमक है लाती।
६ नभ का चिर निर्मल नील फलक।

ब्रजभाषा के शब्दों में अजान, दई, दीठ, काजर, बहादुर, कारे, बीर, बिकरारें, गुञ्जार आदि कुछ शब्दों का प्रयोग पंत ने किया है। तद्भव और

देशज शब्दो का प्रयोग भी चित्रोपमता की दृष्टि से कहीं-कहीं पर पंत जी ने किया है, एँचीला, खेंच, खींच, बगिया, छाजन, अम्बियो और अबोध शब्द ऐसे ही हैं। एकाध अप्रचलित शब्दो का प्रयोग भी देखने को मिलता है जैसे—अरुन्तुद, त्वेप, द्विरद, व्यावर्तन, रक्तोत्पक्त, वर्तुन्क, प्रलम्ब, प्ररोह आदि।

अन्य भाषाओ से शब्द तो लिये ही हैं कहीं-कहीं पर तो अंग्रेजी के ढाचें मे संस्कृत प्रत्यय लगा कर और कहीं स्वय सुन्दर शब्द गढ लिये है, उदाहरण के लिए—'स्वप्निक्त' 'प्रि' 'ह्लाद' 'अनिर्वच' 'सिङ्गार' आदि। अनुवादित, अनाज स्वप्निक्त मुस्कान, स्वर्णकाकाल, सुनहरेस्पर्श और रूपहले आदि शब्द क्रमश Translated, innocent, dreamy smile, golden age, golden touch और silvery के ढाचे पर निर्मित हैं।

पंत जी ने अधिकतर संस्कृत की व्यञ्जनापूर्ण तत्सम् शब्दावली को अपनाया है। उन्होंने जहा सरलता लाने का प्रयत्न किया है वहा भी वे जन-जीवन की शब्दावली को नही अपना सके हैं। जैसे 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' मे उन्होने ग्रामीणो के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की है और उनका झुकाव सरलता की ओर रहा है फिर भी वहा तत्सम शब्दो का ही बाहुल्य है। निम्न पंक्तियो मे ग्राम का चित्रण करने के लिए प्रयुक्त शब्दों पर ध्यान दीजिए—

> यह भारत का ग्राम सभ्यता संस्कृति से निर्वासित ?
> झाड फूस के विवर क्या यही जीवन शिल्पी के घर ?
> कीडो से रेंगते कौन ये ? बुद्धि प्राण नारी नर ?
> अकथनीय क्षुद्रता, विवशता भरी यहा के जग मे।
> गृह गृह मे है कलह, खेत मे कलह, कलह है मग मे।

समष्टि रूप से शब्द-शिल्पी पंत जी का शब्द-चयन बडा ही सूक्ष्म है। महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन ने लिखा है "वस्तुत पंत एक अच्छे शिल्पी हैं, जिन्होने त्रिकाल से मौजूदा शब्दों को सेर छटाक मे नहीं, रत्ती और परमाणुओं के भार मे तौल कर उनके मोल को बडी बारीकी से आका, और उसे किसी यूनानी प्रस्तर शिल्पी की भाति अपनी छैनी और हथौडे के बहुत कोमल और दृढ हाथों से काटा-छाटा, उसे सुन्दर भावो के प्रकट करने का माध्यम बनाया। शब्दो के सुन्दर निर्माण और विन्यास मे पंत अद्वितीय हैं।"

विचित्र प्रयोग—अन्य प्रतिभाशाली व्यक्तियो की भाति पंत जी ने कई परिचित शब्दो द्वारा अप्रचलित अर्थ भी वहन कराया है। यथा, चेतना के अर्थ मे 'स्वर्ण' का प्रयोग किया है। 'मनोज' का रूढ अर्थ कामदेव है परन्तु पंत ने 'मन' से उत्पन्न, व्युत्पत्ति के अर्थ मे ही उसका प्रयोग गाधी जी के लिए कर दिया है—'तुम आत्मा के मन में मनोज!' 'वायु' के अर्थ मे 'प्राण' का प्रयोग किया गया है। 'अछूत' शब्द का प्रयोग भी ऐसा ही है। 'बिन्दुओ की छनती छनकार' जैसे शब्द कुछ प्रचलित शब्दो के आधार पर बना लिये गये हैं। ऐसे प्रयास कवि ने चित्रोपमता, व्यञ्जता एवं शब्द और अर्थ मे एकता लाने के लिए किये हैं।

पद योजना—पंत जी ने [illegible] पर [illegible] प्रयोग किये हैं जिन पर अंग्रेजी [illegible]—विदेशी पद्धति का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। [illegible] शब्द-[illegible] पर [illegible] और [illegible] के प्रभाव को [illegible] नहीं है। [illegible] कल्पना' के मुक्त [illegible] के लिए [illegible] की स्पष्ट अभिव्यक्ति के लिए संस्कृत की [illegible] पदावली का प्रयोग किया गया है जैसे—

'[illegible] फेनोज्ज्वलमणि [illegible] [illegible]"

और

"हेम कूट पर स्वर्ण-रचित-प्रभ उदित मुकुट जाज्वल्य शीर्ष पर,
शत सूर्योज्ज्वल मुक्ताफल-शोभित [illegible] किरण-मंडित, सुग सुन्दर।

जहां भाषा की स्वतन्त्र गति है वहां असमस्त शब्द प्रयुक्त हुए हैं। तत्सम् शब्दों के आधार पर ही कहीं-कहीं पर तद्भव शब्दों का प्रयोग भी बड़ा सुन्दर बन पड़ा है—जैसे 'अकेली सुन्दरता कल्याणि' में 'अकेली' का प्रयोग पूर्ण के अर्थ में हुआ है। विदेशी प्रभाव वश इन्होंने अनेक स्थलों पर ऐसे प्रयोग किये हैं जो अंग्रेजी की हिन्दी प्रतिध्वनि से ज्ञात होता है जैसे 'सजल' शब्द में 'innoce[illegible]t' की पूर्ण झलक है। 'मधुप [illegible] से संवाद' में संवाद 'Message' की हिन्दी प्रतिध्वनि प्रतीत होता है। पद-योजना में कवि पर विदेशी प्रभाव रहा है परन्तु समय के साथ साथ वह कम होता गया है। संस्कृत भाषा का ही पंत ने अधिकतर प्रयोग किया है परन्तु कहीं-कहीं उनकी भाषा में एक भोला सारल्य भी मिलता है।

चित्रण-शक्ति—पंत की कला में जो सबसे अधिक ध्यान आकर्षित करती है वह है उनकी चित्रण कला। कवि की कल्पना बड़ी [illegible] और प्रखर है। प्रत्येक अनुभूति को वह चित्र रूप में प्रस्तुत कर देते हैं। उनकी चित्रण-शक्ति बड़ी सजीव और आकर्षक है। उनके प्रत्येक शब्द में चित्र काव्य और सङ्गीत की त्रिवेणी प्रवाहित रहती है। पंत ने स्थिर और गत्यात्मक दोनों प्रकार के दृश्यों और सौन्दर्यों को चित्रित किया है। 'दो मित्र' नामक कविता में एक निर्जन टीले पर दो खिलखिल के सट कर खड़े हुए वृक्षों का स्थिर चित्र दिया गया है—

उस निर्जन टीले पर,
दोनो चिलबिल।
एक दूसरे से मिल,
खड़े हैं मित्रों से।
मौन————मनोहर,
दोनो पादप।
सह वर्षातप,
हुए साथ ही बढ़े।
दीर्घ सुदृढतर,

'पल्लव' की प्रसिद्ध कविता 'भावी पत्नी के प्रति' में पंत ने नायिका के अनेक स्थिर चित्र दिये हैं, यथा—

अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात,
विकम्पित उर मृदु पुलकित गात।

सशकित ज्योत्स्ना सी चुपचाप,
जडितपद नमित पलक दृगपात ।
पास जब आ न सकोगी प्राण,
मधुरता मे सी भरी अजान !
आज की छुई मुई सी म्लान,
प्रिये प्राणो की प्राण ।

प्रत्येक शब्द एक सजीव चित्र की भाति जडा हुआ है। 'जडित पद नमित पलक दृगणत' मे ठिठकी [हुई म्लानमुखी लज्जावली का रूप सामने आ जाता है, कवि की प्रतिभा स्थिर चित्रो तक ही सीमित नही है। कवि ने अनेक गत्यात्मक चित्र भी खीचे हैं। बादल' का कैसा सुन्दर गत्यात्मक चित्र निम्न पक्तियो से सामने खिच जाता है—

धमक झमकमय मत्र वशीकर
घहर घहर मय निष सीकर ।
स्वर्ग सेतु से इन्द्र धनुष-धर,
काम रूप घनश्याम अमर ।

आगे भागे पैरो से चलते हुए थके माँदे श्रम जीवियो का बडा सजीव और परिपूर्ण चित्र दिया गया है—

ये नाप रहे निज घर का मग,
कुछ श्रम जीवी घर डगमग पग ।
भारी है जीवन भारी पग,

"नौका-विहार के चित्र भी गत्यात्मक हैं। पन्त जी के चित्रण कला की सबसे बडी विशेषता यह है कि उसमे सदैव सश्लिष्ट योजना रहती है। उन्होने वस्तु-परिगणन-प्रणाली के अनुसार कोई चित्रण नही किया। निम्नलिखित पक्तियो मे गगा मे उठती हिलोरो का, उनमे प्रतिबिम्बित तारो का और उनके ऊपर हसिनी के सदृश मद और मथर गति से चलती नाव का अलग-अलग चित्रण है—

नौका से उठती जल हिलोर,
विस्फारित नयनो से निश्चल कुछ खोज रहे चल तारक दल ।
ज्योतित कर जल का अन्त-स्तक,
मृदु मद मद मथर लघु, तारिणि हसिनी—सी सुन्दर ।
तिर रही खोल पालो के पर,

कही कही पर यह कुशल कलाकार एक ही रेखा से अथवा एक ही अनुभाव के द्वारा बडा ही भावपूर्ण चित्र प्रस्तुत कर सका है यथा, 'सरलपन ही था उसका मन' मे सरला-मुग्ध नायिका का कितना भावमय चित्र अङ्कित है। ऐसा ही चित्र जिसमे अनुभाव के वर्णन द्वारा श्रमजीवी लोगो का एक चित्र दिया गया है।

ध्वन्यात्मकता—पत की कला की एक दूसरी विशेषता ध्वनि चित्रण की है। उनके शब्द अपनी ध्वनि से ही अपने अर्थ और प्रभाव को स्पष्ट करते

मे समर्थ होते है। युगात की 'कलरव' कविता अपनी ध्वन्यात्मकता के लिए बडी प्रसिद्ध है। निम्नलिखित पक्तियो मे सध्याकालीन कलरवपूर्ण वातावरण प्रस्तुत करने की क्षमता है, उनमे प्रयुक्त 'टीवी टी टुट् टुट्' से वातावरण बडा सजीव हो उठता है। ऐसा अन्य शब्द से सभव नही था।

वासो का झुरमुट,
सन्ध्या का झुटपुट,
हैं चहक रही चिडियां,
टीवी टी टुट् टुट्।

'झझा मे नीम' कविता मे प्रयुक्त 'झूम झुम'—झुक झक कर सरमर भरमर' शब्दो की ध्वनि से वायु के झोको से हिलते चरमराते नीम के वृक्ष का दृश्य आखो के सामने झूमने लगता है।

'सावन' शीर्षक कविता मे बरसात मे बादलो से गिरती बूंदों की-ध्वनि, तेज चलती हुई वायु से उत्पन्न ध्वनि, दादुरों की टरं टरं, झिल्लियो की झनकार शब्दो की ध्वनि से ही स्पष्ट हो जाती है।

धोवियो के नृत्य से उत्पन्न ध्वनि निम्न पक्तियों से स्पष्ट सुनिए—

"उड रहा ढोल धातिन, धातिन,
ओ ? हुडक घुडुकता ढिम ढिम ढिन,
मजीर खनकते खिन खिन खिन।"

+ +

"लो, छन छन छन छन
छन छन, छन छन,
थिरक गुजरिया हरती मन !"

ध्वन्यात्मकता का यह प्रदर्शन 'युगान्त ग्राम्या' आदि प्रगतिवादी काव्य मे भी है। शब्द के द्वारा वे केवल ध्वन्यात्मकता ही नही रगो का भी चित्रण कर देते हैं। रगो का ज्ञान उनकी चित्रण शक्ति मे और मोहकता पैदा कर देती है, पृथक् पृथक् रगो के अतिरिक्त मिश्रित रंगो का प्रयोग भी कवि ने अनेक स्थलो पर किया है। बादलो की घटा घिरती है तो उसमे कई रगों को देखा जा सकता है। सन्ध्याकाल मे तो ऐसा प्राय होता है। इन्द्र धनुष मे कई रग होते हैं। मिश्रित रगो के लिए इन्द्रधनुषी रग कह दिया जाता है—

देखता हू जब पतला,
इन्द्रधनुषी हलका।
रेशमी घूघट बादल का,
खोलती है कुमुद कला।
तुम्हारे ही मुख का तो ध्यान,
मुझे तब करना अन्तर्धान।
न जाने तुमसे मेरे प्राण,
चाहते क्या आदान ?

कवि रूप, रग, छाया और प्रकाश के साथ-साथ स्पर्श और गध को भी सजीव कर देता है। यथा—

फैली खेतो मे दूर तलक,
मखमल-सी""कोमल हरियाली,
महके कटहल मुकुलित जामुन,
जगल मे झरबेरी झूली ।

यहा 'मखमल-सी' मे स्पर्श की वडी कोमलता का ज्ञान हो रहा है। इसी प्रकार 'महके' शब्द से जामुन और कटहल की गध नाक मे प्रवेश करती सी प्रतीत होती है।

काले रग के गहरेपन और हल्केपन का भेद स्पष्ट करने के लिए कवि पत श्याम और श्यामल शब्दो का प्रयोग करते हैं उनके लिए श्याम और श्यामल शब्द क्रमश कठोर और कोमल हैं—

"मृदु मृदु स्वप्नो से भर अचल,
नव नील, नील, कोमल कोमल,
छाया तरुवन मे तम श्यामल।"

पत जी को 'स्वर्ण' रग वडा प्रिय है। अपने ग्रन्थो का नामकरण तक 'स्वर्ण' पर रखा है—'स्वर्ण-किरण' और 'स्वर्ण धुलि'। अपना अभीप्सित अर्थ भी स्वर्ण को दे डाला है—चेतना। उनकी रचनाओ मे भी इसी रग का बिखराव अधिक है। उदाहरण देखिए—

"प्रात का सोने का ससार,
जला देती सन्ध्या की ज्वाल !"
"आज भरो धरती का प्रागण,
नव प्रभात के स्वर्ण हास्य से।
+ +
"युग स्वप्नो की साझ सुनहली,
बिखरी भू पर टूट ज्यो कली।"

'ग्राम्या' की 'ग्रामश्री' मे तो प्रत्येक रग के साथ रूप, गध, स्पर्श आदि सब कुछ मिल जाती हैं। वहा कवि ने मखमली, सफेद, हरा, लाल, गहरा लाल, काला, सुनहरी, पीला नीला, रग प्रयुक्त किये हैं। इतने रगो के नाम लेकर भी कवि का मन नही भरा तो—

"रग रग के फूलो मे रिलमिल,
हस रही सखिया मटर खडी।"
+ +
"फिरती है रग रग की तितली,
रग रग के फूलो पर सुन्दर।

कह कर 'रग-रग' मे वचे खुचे रगो को भी प्रस्तुत कर दिया है।

टीन की ढिवरी किसी परचूनिए की दूकान पर रखी हो और उससे

कितना प्रकाश मिलेगा, इसका ज्ञान यदि न हो तो इन पंक्तियों से कर लीजिए—

"धुआ अधिक देती हैं,
टिन की ढवरी कम करती उंजियाला।"

चित्रोपम विशेषण—चित्रण शक्ति की अन्य विशेषता चित्रोपम विशेषणों का प्रयोग है। कवि ऐसे शब्दों का प्रयोग करता है कि एक शब्द से ही समस्त चित्र खिंच जाता है। ऐसे विशेषणों का चयन उनकी निपुणता का परिचायक है। इस प्रकार के एक-शब्द-चित्र (One word pictures) उनकी रचनाओं मे खूब मिलते हैं। नक्षत्र' कविता तो ऐसे ही सचित्र विशेषणों से आपूर्ण है। 'मारुत' को 'नभ की निस्सीम हिलोर 'निर्झर' को 'मूक गिरिवर का मुखरित गान' कह कर मारुत और निर्झर के क्रमश असीम विस्तार और नाद का संकेत किया है। 'स्तब्ध विश्व के अपलक विस्मय' से अधिक नक्षत्र का और क्या शब्द चित्र अङ्कित किया जा सकता है। नक्षत्र उसी प्रकार लगातार दीखता रहता है जिस प्रकार कि विस्मयाभिभूत कोई व्यक्ति अपने पलकों का बन्द करना भूल जाता है। 'बापू के प्रति' कविता में बापू के लिए 'अस्थि-शेष' मास-हीन' और 'नग्न' आदि विशेषणों का कितना चित्रोपम प्रयोग है। इनमे बापू के दुर्बल शरीर का चित्र तुरन्त अङ्कित हो उठता है 'वीचि' को 'सरिता की चचल दृगकोर' 'स्वप्न' को निद्रा के अलसित वन मे भावी की छाया' अथवा 'दृग पलकों' मे विचरण' करती 'वन्य देवियों की माया' कह कर चित्र प्रस्तुत कर दिया गया है। कहीं-कहीं इनके विशेषण भावुकता और-गाम्भीर्य से युक्त होते हैं। उदाहरण के लिए 'बादल' को 'मेघदूत की सजल कल्पना' कह कर एक सकरुण प्रसग की याद दिला दी गई है। तितली फूलसी सुन्दर एव कोमल होती है इसीलिए कवि ने उसके लिए कुसुम-विहग का प्रयोग किया है—

तुमने यह कुसुम-विहग लिवास,
क्या अपने मुख से स्वय बुना ?

इसी प्रकार 'वायु' को 'निखिल छवि की छवि' और 'अप्सरि नी -अज्ञात' कहना भी चित्रमयता की वृद्धि करता है—

प्राण ! तुम लघु लघु गात !

× ×

निखिल छवि की छवि ! तुम छविहीन,
अप्सरि-सी अज्ञात !

शब्दों की अन्तरआत्मा का ज्ञान—पन्त जी को शब्दों के शरीर और अन्तरात्मा का जितना सूक्ष्म ज्ञान है उतना शायद ही और किसी को होगा। पंत जी बड़े ही व्यञ्जनापूर्ण (Suggestive) शब्दों का प्रयोग करने मे सफल हुए हैं। एक-एक शब्द के अनेक पर्यायवाची शब्दों से भिन्न भिन्न चित्रोपम प्रयोग किये हैं। शब्दों के सूक्ष्म से सूक्ष्म अन्तर को पहचाना है।

यहा तक कि 'प्रिय' और 'प्रि' 'तितली' और 'तिली' के अन्तर को उन्होने पहचाना है।

प्रिय प्रिय विषाद यह अपना,
प्रिय 'प्रि' आह्लाद रे अपना।

जो सकेत और जो व्यञ्जना 'प्रि' आह्लाद मे है वह प्रियाह्लाद मे नहीं। पल्लव की भूमिका मे कवि ने शब्दो के सूक्ष्म अन्तर के सबध मे बड़े विस्तार से अपना मन्तव्य दिया है। पत जी के लिए लहर, हिलोर, वीचि, ऊर्मि, तरग आदि समानार्थक होते हुए भी पृथक-पृथक् प्रभाव रखते हैं। पत जी ने लिखा भी है। 'भिन्न-भिन्न पर्यायवाची शब्द, प्राय सगीत भेद के कारण, एक पदार्थ के भिन्न-भिन्न स्वरूपो को प्रकट करते है, जैसे 'भ्रू' से क्रोध की वक्रता, 'भृकुटि' से कटक्ष की चचलता 'भौंहों' से स्वाभाविक प्रसन्नता, ऋजुता का हृदय मे अनुभव होता है"। कवि ने वीचियो की ध्वनि के लिए 'रोर' और पक्षियो के समूह के स्वर के लिए 'रोल' का प्रयोग किया है। कितना सूक्ष्म अन्तर पत जी ने व्यक्त किया है। 'र' के द्वारा लहरो का विखरता हुआ शब्द और 'ल' द्वारा पक्षियो का कुछ बधा हुआ तीव्र स्वर व्यञ्जित होता है। 'महताकाश' महदाकाश का विवेचन भी इस पर प्रकाश डालता है। पहले मे कवि को स्वच्छता और प्रकाश का आभास मिला है तो दूसरे मे धूल अथवा वादलो के घिराव का। पत जी के व्यजना शक्ति इतनी विकसित है कि कही कही एक ही शब्द समस्त वाक्य को अनुप्राणित करता प्रतीत होता है, जैसे—

तुम पूर्ण इकाई जीवन की,
जिसमे असार भव शून्य लीन।

यहा पूर्णशब्द ने इकाई शब्द के पूर्व आकर जो अर्थ-गाभीर्य उपस्थित कर दिया है, वह किसी अन्य प्रकार से सभव नही था। पत की शब्द-चयन की यह बडी विशेषता है कि जो शब्द जहा रख दिया गया उसके स्थान पर किसी दूसरे शब्द को नही रखा जा सकता। यहा अकेला 'इकाई' शब्द पूर्ण वाक्य की आत्मा स्वरूप विद्यमान है। पत जी की कविता मे शायद ही कही व्यर्थ का शब्द मिले। अभिव्यक्ति की दृष्टि से पत जी चरम विकास की भूमिका प्राप्त कर चुके हैं। शब्दो का उनके पास भण्डार है, उनकी अन्तरात्मा का उन्हे ज्ञान है, उनके अन्तर्वाह्य रहस्य से वे पूर्ण परिचित हैं इसीलिए उनके प्रयोग बडे साकेतिक होते हैं। भाषा पर पत का 'प्रसाद जी' से भी अधिक अधिकार है। अपने विद्यार्थी काल मे भी पत जी सहपाठियो के द्वारा 'मशीनरी ऑफ वर्ड्स' कह कर पुकारे जाते थे।

शब्दो के गन्ध-वोध से ही कवि ने उनकी आत्मा को पहिचान लिया है। शब्द के स्वर के आधार पर कवि ने शब्दो को गौरव प्रदान किया है। स्वर का उनके लिए बडा महत्व है, भले ही इसको अक्षुण्ण रखने के लिए इन्हें व्याकरण आदि के नियमो का उल्लघन क्यो न करना पडा हो। उन्होंने कहा भी है—

"कविता के लिए चित्रभाषा की आवश्यकता पडती है। उसके शब्द

सस्वर होने चाहिए, जो बोलते हों, जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि मे आखो के सामने चित्रित कर सकें जो झंकार मे चित्र, चित्र मे झकार हों।" उनका कहना है कि शब्दो का व्यक्तित्व भावना और सगीत के 'राग' से व्यक्त होता है, राग का अर्थ आकर्षण है, यह वह शक्ति है जिसके विद्युत्स्पर्श से खिचकर हम शब्दो की आत्मा तक पहुँचते, हैं हमारा हृदय उनके हृदय में पहुँच कर एक भाव हो जाता है।

पत जी स्वरो के प्राधान्य से भावना की अभिव्यक्ति को और प्रभावोत्पादक बना देते हैं परन्तु ध्वनि चित्रण मे वे व्यञ्जनो पर ही अधिक निर्भर रहते हैं। उन्होंने कहा है, काव्य-सगीत के मूल तत्त्व स्वर हैं न कि व्यंजन और भावना का रूप स्वरो के सम्मिश्रण एव उनकी यथोचित मैत्री पर ही निर्भर रहता है।" 'मेखलाकार पर्वत अपार' मे 'आ' पर्वत के विस्तार का चित्र सम्मुख प्रस्तुत कर देता है। पल पल' परिवर्तित प्रकृति वेश' मे लघु, अक्षरो की आवृत्ति प्राकृतिक दृश्यो के परिवर्तन का दृश्य प्रस्तुत कर देती है। इसी प्रकार 'विरह अहह कराहते इस शब्द को' में 'ह' की आवृत्ति से भावना को कितना गभीर बना दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि सामने ही कोई कराह रहा हो। पत जी को शब्दो की अन्तरात्मा का पूर्ण ज्ञान है। शब्दों में प्रयुक्त लघु अथवा दीर्घ स्वर और व्यजनो के अन्तर से भी प्रभाव मे वृद्धि कर लेते हैं।

पन्त जी के कान स्वर पहिचानने मे बडे निपुण हैं। पीन झीने, गुरु गभीर दुहरे स्वरो का उन्हें पूर्ण परिज्ञान है। निष्ठुरता के प्रदर्शन के लिए अवसरानुकूल निष्ठुर शब्दो का प्रयोग किया है। 'शत-शत फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार भयकर' में भयकर शब्द प्रयुक्त हुए हैं न कि कोमल।

काव्य गुण—पत जी ने अपनी भाषा मे माधुर्य, प्रसाद एव ओज तीनो गुणो को प्रसगानुसार स्थान दिया है, माधुर्यगुण पल्लव, गुञ्जन' 'युगान्त' आदि सभी रचनाओ मे स्थान-स्थान पर पराग-कणो की भाति बिखरा पडा है। प्रसाद गुणयुक्त कवितायें भी पर्याप्त हैं। वीणा' 'पल्लव' 'ग्राम्या' 'युगव णी' और 'उत्तरा' आदि की रचनाओ मे प्रसादगुण मिल जाता है। ओज गुण पत जी की प्रकृति के विपरीत है। उन्हें कठोरता और भयकरता पसंद नही हैं। उनकी कविता मे हैं—

क्रीडा कौतूहल कोमलता,
मोद, मधुरिया, हास–विलास।
लीला विस्मय अस्फुटता-मय,
स्नेह पुलक, सुख सरस हुलास।

ओज के लिए उनकी रचनाओ मे स्थान नही। उनकी कोमल प्रवृत्ति की अपवाद स्वरूप 'परिवर्तन' कविता मे ओज गुण अवश्य है। 'परिवर्तन' उनकी बडी प्रौढ, सशक्त रचना है, ओजगुण का यह उत्कृष्ट उदाहरण है—

अहे वासुकि सहस्र फन,
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिन्ह निरन्तर।

छोड रहे हैं जग के विक्षत वक्षस्थल पर,
शत-शत फेनोच्छ्वसित, स्फीत फूत्कार भयकर।
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अम्बर,
मृत्यु तुम्हारा गरल दत, कचुक कल्पान्तर।
अखिल विश्व ही विवर,
वक्र कुण्डल,
दिङ् मण्डल।

निम्नाक्ति पक्तियो मे भी ओज गुण के दर्शन हो जाते है—

दुहरा विद्युद्दाम चढा द्रुत,
इन्द्र धनुष की कर टकार,
विकट पटल से निर्घोषित हो,
बरसा विशिखो-सा आसार।"

भाषा का माधुर्य वह गुण है जिससे मन द्रवीभूत हो जाय, आह्लादमय हो जाय। 'पल्लव' की 'स्वप्न' कविता से एक उदाहरण लीजिए—

"नयन नीलिमा के लघु नभ मे,
अलि! किस सुखमा का ससार।
विरक्त इन्द्र धनुषी बालक–सा,
बदल रहा निज रूप अपार।
मुकुलित पलको के प्यालो मे,
किस स्वप्निल मदिरा का राग।
इन्द्रजाल-सा गूथ रहा नव,
किन पुष्पो का स्वर्ण पराग।"
"क्या समीर ने लिपट विटप को,
किया पल्लवो ने रोमाचित?
अगड़ाई ले बाहु खोलना
सिखलाया डाली को कंपित!"

भाषा का प्रसाद–गुण पत की रचनाओ मे पर्याप्त रूप से मिलता है, प्रसाद गुण को उपस्थिति शीघ्र ही अर्थ-बोध करा देती है। 'ग्राम्या' मे तो गाव की भाषा का भी प्रयोग किया गया है। 'वीणा' की 'रचनाओ मे प्रसाद गुण की कमी नही है। एक उदाहरण देखिए—

"मा! अल्मोडे मे आए थे,
जब राजर्षि विवेकानन्द,
तब मग मे मखमल बिछवाया,
दीपावलि की विपुल अमद!"

'युगवाणी', 'स्वर्ण-किरण' मे प्रसाद-गुण सम्पन्न अनेक रचनायें हैं, स्वर्ण-किरण' की 'स्वर्णोदय' कविता का एक उदाहरण—

"लोरी गाओ, लोरी गाओ,
फूल डोल मे उसे झुलाओ,

कही-कही हिन्दी मुहावरो के अतिरिक्त अंग्रेजी मुहावरो का बडा सजीव एव व्यञ्जनापूर्ण प्रयोग किया है। नीचे की पक्तियो मे रेखाङ्कित करने की भावना का प्रयोग बडा सुन्दर बन पडा है—

बाल रजनी सी अलक थी डोलती,
भ्रमित हो शशि के वदन के बीच मे,
अचल रेखाङ्कित कभी थी कर रही,
प्रमुखता मुख की सुछवि के काव्य मे।

व्याकरण—पत जी के शब्द जहा एक ओर व्याकरण की कठिन जजीरो से आवद्ध है वही दूसरी ओर वन-विहग के समान राग के आकाश मे मुक्त विहार करने के लिए स्वतन्त्र भी है। पत जी ने लिंग सबधी अनेक परिवर्तन किये है। आकारान्त और ईकारान्त को लिंग निर्णय के लिए वे कसौटी नही मानते। लिंग का अर्थ के साथ सामञ्जस्य हो, यही उनके लिए प्रमुख है। जो शब्द परुष और महान् हैं वे उनके लिए पुल्लिग है और जो कोमलता, लावण्य और लघुता वाले हैं वे स्त्रीलिंग। उन्होंने स्वय स्वीकार किया है कि मैंने अपनी रचनाओ मे कारणवश व्याकरण को लोहे की कडिया तोडी है। जिन शब्दो का अर्थ के साथ सामजस्य नही बैठता उनका ठीक-ठीक चित्र ही आँखो के सामने नही आता। प्रभात और उसके पर्यायवाची शब्दो का पत जी ने स्त्रीलिंग मे प्रयोग किया है—

"रुधिर से फूट पडी रुचिमान,
पल्लवो की यह सजल प्रभात।"

बूद और कम्पन आदि को उभयलिंगा मे प्रयोग किया गया है—बडी 'बूद को पुल्लिग मे छोटी का स्त्रीलिंग मे प्रयोग।

क्रियाओ के प्रयोग के सबध मे भी उनकी अपनी मान्यता है। खडी बोली मे पत जी विशेपत सयुक्त क्रियाओ के प्रयोग पर बल देते हैं। 'है' को तो वे निकाल देने के पक्षपाती हैं। इसका प्रयोग वे व्यर्थ समझते है। उनका कथन है—"इन दो सीगो वाले हरिण को आश्रम-मृग समझ इस पर दया दिखलाना ठीक नही, यह कनक-मृग है, इसे कविता की पचवटी के पास फटकने न देना ही अच्छा है।"

पत जी ने शब्द और अर्थ मे सामजस्य स्थापित करने के लिए संस्कृत के सधि नियमो का भीउल्लघन कर दिया है जैसे सस्कृत के नियमानुसार 'मरुदाकाश' होना चाहिए न कि 'मरुताकाश'। समासो का प्रयोग भी उन्हे अधिक अच्छा नही लगता। "समास की कैंची अधिक चलाने से कविता की डाल ढ़ठी तथा श्री-हीन हो जाती है।"

शब्दो मे प्रयुक्त कठोर व्यञ्जनो को विशेपकर 'ण' को उन्होंने भाव के अनुसार प्राय सर्वत्र ही कोमल कर दिया है। ऐसा करने से पत जी अपने काव्य मे कलात्मकता की वृद्धि करने मे बडे सफल हुए हैं। कोमल पक्तियो मे पुरुप वाचक शब्दो को अधिकतर स्त्रीलिंग मे प्रयुक्त करने का प्रयत्न किया

है। कही कही जहा 'न' का प्रयोग होना चाहिए वहा 'मत' का प्रयोग किया गया है। कही एक शब्द के सादृश्य पर अन्य शब्द भी गढ लिए हैं।

छन्द—पत जी कला के क्षेत्र मे परम्परा से चली आ रही मान्यताओ के प्रति विद्रोह लेकर प्रविष्ट हुए है। भाषा, छन्द और अलकार सभी क्षेत्रो मे उनका यह विद्रोह द्रष्टव्य है। कविता तथा छन्द के बीच बडा घनिष्ट सवध है। स्वय कवि ने लिखा है—"कविता और सगीत के बीच बडा घनिष्ठ सबध है, कविता हमारे प्राणो का सगीत है तो छन्द हृत्कम्पन। कविता का स्वभाव ही छन्द मे लयमान होना है। जिस प्रकार नदी के तट अपने बधन से नदी की धारा को सुरक्षित रखते हैं जिनके बिना वह अपनी ही बधन हीनता मे प्रवाह खो बैठती है, उसी प्रकार छन्द भी अपने नियत्रण से राग को स्पन्दन, कम्पन तथा वेग प्रदान करके निर्जीव शब्दो के रोडो मे एक कोमल सजल कलरव भर उन्हें सजीव बना देते हैं।" छन्द का कविता के लिए महत्व सर्व विदित है। छन्द के बिना कविता का क्या अस्तित्व। उन्होंने सर्वत्र भाव के अनुकूल छन्दो का प्रयोग किया है।

स्थूलत हिन्दी मे चार प्रकार के छन्द मिलते हैं—तुकान, अतुकान्त, मात्रिक एव वार्णिक। इनमे से अतुकान्त छन्द बहुत नवीन है। खडी बोली के लिए पत जी मात्रिक छन्दो को उपयुक्त समझते हैं और सस्कृत के लिए वार्णिक। क्योंकि हिन्दी के शब्द-विन्यास मे स्वरो का बाहुल्य है। हिन्दी कविता मे राग एव सगीत की रक्षा पत जी के अनुसार मात्रिक छन्दो मे ही हो सकती है। पत ने लिखा है—"हमारे साधारण वार्तालाप मे भाषा सगीत को जो यथेष्ट क्षेत्र नही प्राप्त होता उसी की पूर्ति के लिए काव्य में छन्दो का प्रादुर्भाव हुआ।" सस्कृत के अनुकरण पर निर्मित ब्रजभाषा के प्राचीन छन्द, कवित्त, सवैया भी पत के लिए उपयुक्त नही जान पडने। यही कारण है कि उन छन्दो मे उन्होंने कुछ परिवर्तन भी कर लिये हैं। सवैया मे होने वाली सगण की आठ बार की पुनरावृति से बचने के लिए पत जी ने आवश्यक परिवर्तन कर लिए हैं। पत जी के छन्द किसी कडे नियम से जकडे हुए नही है, उनमें एक स्वाभाविकता है। निराला जी के अनुसार पत जी की कविता मे 'स्त्रीत्व के चिह्न' (Female graces) हैं।

छन्दों के सवध मे भी पत जी ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से काम लिया है। उन्होने लिखा है—"भिन्न-भिन्न छन्दो की भिन्न-भिन्न गति होती है और तदनुसार वे रस विशेष की सृष्टि करने मे भी सहायक होते हैं।" छन्दो के प्रति पत जी का दृष्टिकोण बदलता रहा है। आरभिक ग्रथों में कवि के कलाकार हृदय ने भावो के निरूपण के लिए बडी सूक्ष्मता से छन्दों का चयन किया है। 'युगात' और युगवाणी मे इतनी सूक्ष्म दृष्टि से काम नही लिया गया। 'गुजन' और 'ज्योत्स्ना के गीतो मे सगीत परुष है। स्वर्ण-धूलि और उत्तरा आदि में कवि ने छन्दों के चुनाव में और भी कम सूक्ष्मता दर्शायी है।

पत जी के छन्द भावानुकूल और चित्रोपम हैं। 'बादल' रचना एक चित्रोपम रचना है जिसमे बादलो के पल-पल परिवर्तित अनेक चित्र प्रस्तुत हैं।

बादलो के परिवर्तित रूप को दिखाने के लिए कवि ने जल्दी-जल्दी बदलती शब्द-योजना भौर उपयुक्त छन्द का प्रयोग किया है ।

'परिवर्तन' रचना मे काल की भयकरता दिखाने के लिए गम्भीर छन्द का प्रयोग किया गया है । छन्द मे गति धीमी है जो 'कुटिल काल कृमि' के जीवन रूपी डाल को काटने की मन्द गति की ओर सकेत करती है । इसके विपरीत भाव-क्षिप्रता के लिए छन्द-क्षिप्रता भी नीचे की पक्तियो मे द्रष्टव्य है—

"प्रेमी याचक,
जब उसे ताकता है इकटक
उल्लसित
चकित
वह लेती मूद पलक पट ।"

ऐसी ही नीचे की पक्तिया हैं जिनमे कार्य की तीव्रता के साथ छन्द की पक्तिया तेजी से बदल जाती हैं—

"जल छलकाती,
रस बरसाती,
बलखाती वह घर को जाती,
सिर पर घट
उर पर घर पट ।"

मात्राओ के घटाने-बढाने से कविता-पठन मे एकरूपता (Monotony) नहीं आ पाती ।

पत जी के छन्दो मे पर्याप्त चित्रोपमता भी है । 'नौका-बिहार में प्रयुक्त छन्द बडा चित्रोपम है । चित्रोपम छन्द नीचे की पक्तियो मे द्रष्टव्य है—

नवोढा बाल लहर
प्रसूनो के ढिग रुक कर
सरकती है सत्वर ।

इन पक्तियों को पढकर रुक-रुक कर आगे बढती छोटी लहर का चित्र तो आखो के सामने आ ही जाता है, छन्द मे भी चित्रोपमता लाने का प्रयत्न किया गया है । अग्रेजी छन्द-योजना के अनुकरण पर पत जी ने मुक्त छन्द का भी प्रयोग किया है । ग्रथि मे आपने Run-on-lines का प्रयोग किया है—

और भोले प्रेम ! क्या तुम हो बने—
वेदना के विकल हाथो से जहा—
झूमते गज से विचरते हो वही—
आह है ! उन्माद है, उत्ताप है—

कही-कही पत जी एकदम सरल सपाट लाइनें भी लिख देते हैं—

अगर न ऊचे होते दादा,
कब का ऊट तुम्हे खा जाता ।

डॉ नगेन्द्र के अनुसार 'पल्लव मे पत जी की छन्द-योजना विशद है। उनके प्रत्येक छन्द मे राग की एक धारा अनिवार्य रूप से व्याप्त मिलती है- कही भी शब्दो की कडिया अलग-अलग असम्बद्ध नही दिखायी पडती-उनकी दरारें लय से भर कर एकाकार कर दी गयी हैं। साराश यह है कि उनमे पूर्ण सामजस्य है। समष्टि मे पत जी छन्दो के पारखी हैं।' उनके छन्दो मे नये पुराने और स्वनिर्मित तीनो प्रकार के हैं। हिन्दी के प्रचलित छन्दों मे पत जी को पीयूषवर्षण, रूपमाला, सखी, रोला पद्धटिका, चौपाई आदि ही अच्छे लगते हैं कवित्त सवैये दोहे नही।

अलंकार—अलकारो का सीधा सबध मनुष्य के सौंदर्य बोध से है' रीतिकाल मे कविता कामिनी का कलेवर अलकारो के द्वारा बडा बोझिल बना दिया गया था। उस युग के अलकारो का बाहुल्य कवियो की रसिकता, वैभव-विलास की प्रवृत्ति का द्योतक है। द्विवेदी युग तो नीरसता का युग है। उस युग के अलकार उधार लिए हुए से जान पडते हैं सप्रयत्न लादे हुए नही। छायावाद काल मे अलकारो की जो छटा देखने को मिलती है वैसी अन्य किसी काल मे नहीं। पत जी तो सौंदर्य के कवि ठहरे। परन्तु वे अलकारो को भावो की अभिव्यक्ति सहज द्वार मानते है। उनके अनुसार अलकारो के प्रयोग से भावो की अभिव्यक्ति मे सहायता मिलती है। उनकी सहायता से भाषा पुष्ट होती है और राग को पूर्णता प्राप्त होती है।

पत जी ने भारतीय एव पश्चिमीय दोनों प्रकार के अलकारों को अपनाया है। भारतीय अलकारो मे से सादृश्यमूलक अलकारो को पत जी ने सबसे अधिक ग्रहण किया है। उपमा और रूपक पत जी की कविता में मणियो की भाति चमकते हैं। कही-कही तो कवि ने उपमाओ की माला सी पिरो दी है। 'पल्लव' काव्य-सग्रह की छाया, बादल, वीचि-विलास अनग और शिशु आदि कविताओ में उपमाओ की भरमार है। कवि की उपमायें नवीन हैं, परम्परागत उपमाओ से अधिकतर वह दूर रहा है। छाया' कविता में छाया के लिए कवि ने कितने उपमानो का प्रयोग किया है देखिए—

गूढ कल्पना सी कवियो की,
अज्ञाता के विस्मय सी,
ऋषियो के गम्भीर हृदय सी,
बच्चो के तुतले भय सी।

भू पलको पर स्वप्न जाल सी
स्थल सी, पर, चचल जल सी,
मौन अश्रुओ के अचल सी,
गहन गर्त में समतल सी ?

पत जी का प्रिय अलकार चित्रोपमा है। उपमा अलकार है भी ऐसा जो प्राय सभी कवियो के काव्य मे स्वयं ही आ जाता है। राज शेखर ने इसे इसीलिए अलकारो का शिरोरत्न, कवियो की माता एव सर्वस्व कहा है। प्राचीन कवि एक ही उपमान का सर्वत्र प्रयोग करते थे परन्तु आधुनिक कवि भिन्न-भिन्न

स्थानों पर भिन्न-भिन्न उपमानो का प्रयोग करते हैं। मूर्त के लिए अमूर्त उपमानों की छटा इन पंक्तियो मे बडी सुन्दर बन पडी है—

धीरे-धीरे संशय से उठ,
बढ अपयश से शीघ्र अछोर,
नभ के उर मे उमड मोह ने,
फैल लालसा से निशि-भोर।

पंत जी ने ऐसी पंक्तियां भी लिखी हैं जिनका आरंभ उपमालंकार से हुआ है परन्तु पर्यवसान रूपकालंकार मे और कभी-कभी इसका विलोम भी मिलता है। पंत जी के उपमान भी रंगीन हैं। छायावाद की आत्मा के अनुरूप काव्य शास्त्र को पंत जी ने नवीन स्वरूप दिया है उसे रोमांटिक बना दिया है। उनके अलंकार काव्य में ऊपर से चिपकाये हुए नहीं प्रतीत होते अपितु कवि के हृदय से जन्म लेने वाले लगते हैं। वे अलंकारों को कट्टर कवायद नहीं कराते अपितु अलंकार-विधान मे सर्वथा स्वतन्त्र रहते हैं। कभी-कभी बिल्कुल सरल सपाट अलंकार रहित पंक्तियां भी वे लिखते हैं क्योंकि उनके अनुसार अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए ही नहीं हैं, उनका महत्व इससे ऊंचा है।

'तुम वहन कर सको जनमन मे मेरे विचार
वाणी मेरी क्या तुम्हे चाहिए अलंकार।'

यह कथन भी उसी भाव का द्योतक है। उनकी छायावादी रचनाओं के अतिरिक्त रचनायें भी अलंकारों की दृष्टि से सुन्दर हैं। 'परिवर्तन' कविता मे सांगरूपक का बडा सफल प्रयोग हुआ है, देखिए—

अहे वासुकि सहस्र फन,
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरन्तर
छोड रहे हैं जग के विक्षत वक्ष स्थल पर।
शत शत फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार भयंकर,
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अम्बर!
मृत्यु तुम्हारा गरल दंत कंचुक कल्पान्तर
अखिल विश्व ही विवर
वक्र कुंडल
दिग्मंडल।

आधुनिक कविता के दो प्रमुख अलंकार समासोक्ति और अन्योक्ति हैं। आजकल सादृश्य-विधान के लिए अन्योक्ति का प्रयोग किया जाता है। एक व्यंग्य रूपक सौंदर्य देखिए—ग्रंथि मे काम-पीडिता नायिका पर सखियां फबती कस रही हैं—

प्रथम भय से मीन के लघु बाल जो
पंख फडकाना नहीं थे जानते,
उर्मियो के साथ क्रीडा की उन्हें,
लालसा अब है विकल करने लगी।

ग्र थियों मे ही विरोधाभास का एक प्रसिद्ध उदाहरण देखिए जिसमे प्रेम की विचित्र रीति दर्शाई गई है—

"जो अपागो से अधिक है देखता,
दूर होकर और बढ़ता है तथा,
वारि पीकर पूछता हे घर :सदा।"

उल्लेख का उदाहरण—

विन्दु मे थीं तुम सिन्धु अनत,
एक सुर मे समस्त सगीत,
एक कलिका मे अखिल वसत,
धरा पर थी तुम स्वर्ग पुनीत ।

परिकर—

हिमपरिमल की रेशमी वायु ।

और—

हे नग्न पशुता ढाक दी ।

सदेह पत जी का प्रिय अलकार है । एक उदाहण लीजिए—

निद्रा के उस अलसित वन में वह क्या भावी की छाया ?
दृगपलको में विचर रही या वन्य देवियो की माया ?

शव्दालकारो का भाषा के लिए विशेष महत्व है । ये भाषा के वस्त्र हैं । सयत अनुप्रास की छटा पत की भाषा मे सर्वत्र ही मिलती है । शब्दालकारो का चमत्कार स्थान-स्थान पर मिलता है परन्तु अधिक नहीं । इनके शब्दालकारो मे श्लेष, पुनरुक्ति, यमक आदि मुख्य हैं ।

अनुप्रास—

सुरागना, सपदा, सुराओ से ससेवित ।

श्लेष—

दीनता के ही प्रकपित पात्र मे
दान बढकर छलकता है प्रीति से ।

पुनरुक्ति—

विहग-विहग
फिर चहक उठे ये पु ज-पु ज
चिर सुभग-सुभग

यमक—

श्रवण तक आ जा । है मन
स्वय मन करता वात श्रवण ।

अथवा

तरणि के ही सग तरल तरग से
तरणि डूबी थी हमारी ताल मे ।

इनके अतिरिक्त स्मरण, दृष्टांत, प्रतीप, अत्युक्ति, तद्गुण, काव्यलिंग, निदर्शना, विभावना, उत्प्रेक्षा आदि अलकार भी पत की भाषा मे पाये जाते हैं। पत जी की अलकार योजना पर पश्चिमीय पालिश अधिक है। पश्चिमी अलकारो मानवीकरण, ध्वन्यार्थ-व्यजना और विशेषण-विपर्यय का पत जी ने बडा सुन्दर प्रयोग किया है। इनमे से विशेषण-विपर्यय भाषा की लक्षणा शक्ति का फल है और मानवीकरण मूर्तिमत्ता का।

मानवीकरण—

पर नही तुम चपल हो अज्ञान हो
हृदय है, मस्तिष्क रखते हो नही,
बस बिना सोचे हृदय को छीनकर,
सौंप देते हो अपरिचित हाथ मे।

ध्वन्यार्थ-व्यजना—

पपीहे की वह पीन पुकार,
निर्झरो की भारी झर झर,
झींगुरो की झीनी झनकार,
घनो की गुरु गभीर घहर,
बिन्दुओ की छनती छनकार,
दादुरो के वे दुहरे स्वर,
हृदय हरते थे विविध प्रकार,
शैल पावस के प्रश्नोत्तर।

विशेषण-विपर्यय—

आह! यह मेरा गीला गान।
कल्पना मे है कसकती वेदना
अश्रु मे जीता सिसकता गान है।

अथवा

बच्चो के तुतले भय-सी।

अथवा

दीनता के ही विकपित पात्र मे,
दान बढकर छलकता है प्रीति से।

पात्र दीन का होता है दीनता का नही।

अन्त मे पन्त जी सुन्दर कलाकार हैं। उनकी कला सदैव प्रगतिशील रही है। उन्होने अपनी काव्य-वनिता का प्राच्य एव पाश्चात्य दोनो प्रकार के अलंकारो से शृगार किया है। 'वीणा' की कविताओ मे भावो मे जैसी सहजता, सरलता और जैसा भोलापन है वैसी ही उनकी कला मे भी सारस्य और सहजता है। 'ग्रथि' मे कला अलकारो से बोझिल हो गई है। 'पल्लव' और 'गुजन' कला और भाव दोनो ही दृष्टियों से पत की श्रेष्ठतम रचनाए है। सुकुमार भावनाओ के कवि पत की कला भी रगीन है। 'युगात' और 'युगवाणी' आदि में उनकी नारी कला पौरुषमय हो गई है उसमे पुसत्व आ गया है।

डा० नगेन्द्र ने लिखा है— 'हमारा कवि भाषा का सूत्रधार है। शब्द उसके इशारे पर नहीं संकेत पर नाचते हैं। परन्तु शृंगार में यदि उनका मधुर गुंजन सुनाई पड़ता है, तो वीर और भयानक में वह अग्नि-कण भी उगल सकते हैं। भाषा का इतना बड़ा विधायक हिन्दी मे कोई नही है—हा, कभी कोई नही रहा!" डा० बच्चन ने पन्त की कविता के सम्बन्ध मे अपना मत देते हुए कहा है कि 'जिस प्रकार पन्त जी की कविता उनके जीवन का सहज उद्गार है वैसे ही उनकी भाषा उनके भावों का स्वाभाविक परिधान है। न तो उन्होंने कविता लिखने के लिए कविता लिखी है और न भाषा लिखने के लिए भाषा। मैं समझता हूँ कि उनको परम्परा से जैसी भाषा मिली थी उसका सबसे अच्छा उपयोग किया है।' शिवाधर पाण्डेय—'भाषा को वह भाव से दबाता है। संगीत को उंगलियो पर नचाता है। शब्दो को चूम चूम कर मनमाना मधु चूसता है।"

श्री शांतिप्रिय द्विवेदी ने लिखा है कि विद्यापति की कोमल कान्त पदावली, पत की काव्यकला मे आकर मुखर हो उठी है।

डा० वासुदेव ने पन्त जी को भाषा का 'डिक्टेटर' कहा है।

डा० रामविलास शर्मा ने पन्त जी की कला की आलोचना करते हुए उसके छिद्रो का ही प्रदर्शन किया है। डा० शर्मा ने लिखा है—'पन्त जी की कला छिछली और अनगढ है। शब्द-चयन मे ही नही, कविताओ के गठन मे भी एक ही बात को पचास बार कवि कहता है पर एक बार भी ढग मे नही। अलकारो मे या तो कालिदास का माल उड़ाया गया है या अपने ही पुराने बर्तनो पर फिर से कलई की गई है।"

हमारी दृष्टि मे डा० शर्मा का कथन एकागी है। बड़े से बड़े कलाकार मे भी छिद्रान्वेषण किया जा सकता है। केवल उसके छिद्रो को ही देखना और उसके सुन्दरतम गुणो पर भी पर्दा डाल देना अच्छा नही है। समष्टि रूप मे पन्त की कला महान् है और पन्त जी निस्सन्देह महान् कलाकार हैं। उनकी कला विकासोन्मुख है, उनकी भाषा कला के चरम विकास बिन्दु से उद्घोषित वाणी है। उनकी अप्रस्तुत योजना मे सहज स्वाभाविकता है। पत की कला के लिए उन्ही के शब्दो मे कहा जा सकता है—

"तरवर छायानुवाद सी,
उपमा-सी भावुकता-सी
अविदित भाव कुल भाष-सी,
कटी छटी नव कविता-सी।

छायावादी कवियों मे पन्त का स्थान

सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य के समस्त पक्षो का विवेचन करने के उपरान्त यह प्रश्न सहज ही उठता है कि पन्त का अपने समकालीन कवियों में क्या स्थान है? पन्त छायावादी कवि है और अपने समकालीन कवियों मे

विशिष्ट स्थान के अधिकारी है। छायावादी काव्य के चार प्रमुख कवि रहे हैं प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी। इन सभी कवियो ने छायावाद को पर्याप्त सुदृढ आधार प्रदान किया है। छायावाद की विशेषताए-सौन्दर्य वर्णन, कल्पनाप्रियता, प्रकृति वर्णन, आत्माभिव्यक्ति और शैली की अभिनवता सभी कवियो मे मिलती है। पन्त की काव्य चेतना का सर्वोत्तम अश सौन्दर्य के क्षेत्र मे उद्घाटित हुआ है। प्रसाद छायावादी होने के नाते आनदवादी होकर भी सौन्दर्यवादी है, उनमे सौन्दर्य और कल्पना का वह अश मिलता है जो पन्त और निराला मे भी मौजूद है। महादेवी एक ऐसी साधिका और कवयित्री रही है जो अपने अलक्ष्य प्रियतम की अनुपस्थिति मे विश्व-व्यापी विरह की शिकार हैं। यद्यपि उनके काव्य मे छायावादी चेतना के सभी तत्व मिलते हैं, फिर भी वेदना की प्रमुखता दिखलाई देती है।

अब विचारणीय यह है कि इन कवियो मे पन्त का क्या स्थान है? और उनका छायावादी काव्य को क्या प्रदेय है? छायावादी काव्य की जो विशेषताए हैं वे सभी कवियो मे मिलती हैं फिर भी इसमे कोई सदेह नही कि पन्त की कविताओ मे छायावाद का प्रौढतम रूप मिलता है। पन्त की छायावादी कृतिया पल्लव और गुजन है। प्रसाद की छायावादी रचना कामायनी है निराला का परिमल भी इसी शृखला की एक कडी है। महादेवी की नीरजा, दीपशिखा, रश्मि और नीहार भी इसी प्रकार की रचनायें हैं छायावाद के चारो कवि अपने-अपने पक्षो को पुष्ट करने मे लगे रहे है।

जब हम पन्त का उनके समकालीन कवियो मे स्थान निर्धारित करने का प्रयास करते हैं तो स्पष्ट होता है कि पन्त अपने वर्ग के या बराबर के कवियो मे सबसे आगे हैं। इस विवेचन के लिए हम निम्नाकित शीर्षको का विधान कर सकते हैं—

१. **भावपक्ष**—कल्पना, सौन्दर्य, दर्शन, मानवता और सदेश।

२. **कलापक्ष**—भाषा, अलकार और छन्द।

३ **युगचेतना**।

कल्पना तत्व—कल्पना छायावाद का प्रमुख तत्व है। इसे कविता का प्राथमिक मान कहा जा सकता है। पन्त, प्रसाद, महादेवी और निराला के काव्य मे कल्पना तत्व प्रमुख बनकर आया है। प्रसाद कल्पना करने मे विशेष कुशल है किन्तु पन्त भी कम नही हैं। वे कल्पना को कविता की आधारशिला मानते हैं। उनकी पक्ति कल्पना ने है कसकती वेदना, अश्रु मे जीता सिसकता गान है। काव्य की बडी आकर्षक पक्तिया हैं। प्रसाद की कामायनी का लज्जा, आशा और श्रद्धासर्ग कल्पना के अन्यतम उदाहरण हैं। निराला की 'सध्या सुन्दरी' और राम की शक्तिपूजा तुलसीदास जैसी कृतियो मे कल्पना का वैभव सुरक्षित है। महादेवी की नीरजा भी इसके लिए भुलायी नही जा सकती है, किन्तु पन्त की कल्पनाए सर्वाधिक कोमल और मादक है। उनमे भावो की वह सरसता और रजकता मिलती है जो अन्य कवियो में उतनी मात्रा में नही मिलती है। एक उदाहरण देखिये—

कनक छाया मे जबकि सकाल
खोलती कलिका उर के द्वार !
सुरभि पीड़ित मधुपो के बाल
तड़प बन जाते हैं गुंजार,
न जाने ढुलक ओस मे कौन
खींच लेता मेरे दृग मौन ।।

ग्रंथि कविता की अनेक पंक्तियो मे तथा आसू से और उच्छ्वास की बालिका में कल्पना के बहुरंगी चित्र मिलते हैं ।

सौन्दर्य—यो तो सभी छायावादियो ने सौन्दर्य को प्रधानता दी है, किन्तु पन्त और प्रसाद को सौन्दर्य का कवि कहा जा सकता है । पन्त के काव्य मे तो सर्वत्र सौन्दर्य का राज्य है । कामायनी की श्रद्धा का सौन्दर्य मनोजगत की आकर्षक उपलब्धि है, किन्तु पल्लव मे सौन्दर्य तो सर्वत्र बिखरा मिलेगा । इन दोनो कवियो मे अन्तर यह है कि प्रसाद मे मानस सौन्दर्य की प्रधानता है और पन्त मे मंदिर और शारीरिक सौन्दर्य की । शारीरिक सौन्दर्य के चित्रण मे पन्त बहुत आगे है, उनकी प्रतिभा ने वह बल है जो सूक्ष्म चेता कलाकार मे हो सकता है । प्रसाद का सौन्दर्य वायवीय अधिक है जबकि पन्त का सौन्दर्य मानस मे उतर कर यथार्थ और सभव जान पड़ता है । उदाहरण के लिए कामायनी की इन पंक्तियो को लीजिए—

कुसुम कानन अंचल मे मंद,
पवन प्रेरित सौरभ-साकार ।
रचित परमाणु पराग शरीर,
खड़ा हो ले मधु का आधार ।।

इसके साथ ही ग्रंथि की ये पंक्तिया देखिये तो स्पष्ट ही मालूम हो जायगा कि पन्त शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन करते समय कितने यथार्थ और व्यावहारिक बन गये हैं—

इन्दु पर उस इन्दु मुख पर साथ ही,
थे पड़े मेरे नयन, जो उदय से ।
लाज से रक्तिम हुए थे—पूर्व को,
पूर्व था, पर वह द्वितीय अपूर्व था ।
बाल रजनी सी अलक थी डोलती,
भ्रमित हो शशि के वदन के बीच ।
अचल रेखाकित कभी थी कर रही,
प्रमुखता मुख की सुछवि के काव्य मे ।

सौन्दर्य वर्णन मे ही नारी सौन्दर्य और प्रकृति सौन्दर्य को भी नही भुलाया जा सकता है । जहा इसका सम्बन्ध है पन्त तो प्रकृति के ही कवि हैं । प्रकृति छायावादियो को धरोहर के रूप मे मिली थी । प्रसाद, निराला सभी ने प्रकृति को पर्याप्त महत्व दिया है, किन्तु पन्त इस क्षेत्र मे सबसे आगे हैं ।

निराला की प्रकृति धीरे-धीरे दर्शन से मिलती गई है तो प्रसाद की प्रकृति एक रूप रही है। पन्त ने प्रकृति को विविध परिपार्श्वों और सदर्भो मे देखा है। वे प्रकृति के कोमल परुष चित्रो के साथ-साथ उसकी उपयोगिता और अनुपयोगिता पर भी विचार करते है। उन्होने यह प्रतिपादित करने की चेष्टा की है कि प्रकृति सौन्दर्य अपेक्षित है किन्तु मानव जीवन की जटिल समस्याओ मे फसे मानव के लिए इसकी अहमियत है। भाव यह है कि प्रसाद मानव जीवन की विभीषिकाओ की ओर झुके ही कम है इसलिए उनकी प्रकृति सदैव एक रस और एकतान रही है जब कि पन्त की वैविध्यमयी रही है। इसी कारण पन्त का प्रकृति दर्शन अपने सभी समकालीन कवियो से विशेषता का अधिकारी ठहरता है। पन्त की प्रकृति के ये सभी स्वरूप उनके काव्य मे यत्र-तत्र बिखरे पडे है।

दर्शन—छायावादियो का अपना दर्शन है। ये सभी अपने अलग-अलग मार्गों से होते हुए एक ही लक्ष्य पर पहुच गये हैं। प्रसाद सौन्दर्य, सघर्ष और आनद की भूमिका से मानवता तक पहुचे हैं तथा उनकी इस पहुच मे कश्मीरी शैव दर्शन विशेष सहायक रहा है। पन्त भी मानवतावादी है। वे मार्क्स, गाधी और अरविन्द के सिद्धान्तो मे प्रेरणा लेकर मानवता का पथ प्रशस्त करते जान पडते है। उनकी चिन्ता इस बात को लेकर है कि मानव सकट की वेला शीघ्र ही समाप्त हो। यह तभी सभव है जबकि मानव अपने अन्तर और वाह्य मे समन्वय स्थापित करे। अन्तर्मन और वाह्यमन का समीकरण उसे सच्ची मानवता का पथ दिखा सकता है। पन्त मानव का गुणगान करते है तथा मानव से मानवता की ओर बढते हैं। इसके साथ ही पन्त का दर्शन मानवता वादी है, ऐसा मानवतावादी जो काम और अध्यात्म, व्यष्टि और समष्टि, भूत और आत्मा के समन्वय पर आधृत है। कहने का तात्पर्य यह है कि पन्त का दर्शन व्यावहारिक है। प्रसाद के अलावा निराला का दर्शन साधना या तपस्या का दर्शन है। वे मानवता के गायक तो हैं किन्तु समाजोन्नति उनका प्रत्यक्ष लक्ष्य नही है। महादेवी पीडा की गायिका हैं जो मानवता की बात कम ही करती हैं—हा, सामाजिक की बात तो यदा-कदा कर लेती हैं।

सदेश—पन्त का सदेश समन्वय का सदेश है। वे भौतिक और आध्यात्मिक शक्तियो मे समन्वय करा कर मानवता की बात कहते हैं। वर्ग-विभाजन उन्हें प्रिय नही है। यही बात प्रसाद और निराला के यहा हैं। प्रसाद भी मनु से कहलाते है—

> हम अन्य न और कुटुम्बी
> हम केवल एक हमी हैं,
> तुम सब मेरे अवयव हो,
> जिनमे कुछ नही कमी है।

सदेश की दृष्टि से सभी समान हैं। सभी को एक वही मानवता का सदेश देना था सो दिया है अन्तर तो मानवता की प्रतिष्ठापना के प्रकारो मे है।

कला पक्ष—छायावादियो का कलापक्ष पुष्ट रहा। इनकी भाषा मे लाक्षणिकता व्यन्जनात्मकता की प्रधानता रही है। प्रसाद और पन्त ही एक दूसरे की टक्कर के कवि ठहरते हैं। प्रसाद व्यंजना सम्पन्न अधिक हैं और पन्त लाक्षणिक और चित्रोपम। निराला मे ये प्रवृत्तिया मिली जुली दिखाई देती हैं। पन्त की विशेषता इस बात को लेकर है कि वे चित्रमयता मे सबसे आगे हैं। उनको शब्दो की अन्तरात्मा का जितना ज्ञान है उतना अन्य किसी को नही। अभिव्यक्ति स्पष्ट होने का कारण ही शब्दो का सही चुनाव है। विस्तार के लिए पीछे के पृष्ठो को देखिये।

अलकरण प्रसाद पन्त दोनो को प्रिय रहा है, किन्तु पन्त ने इसे अपनी प्रगतिशील रचनाओ मे यह कहकर छोड दिया है कि—

> वाणी मेरी क्या तुम्हे चाहिए, अलकार,
> तुम वहन कर सको जन-मन मे मेरे विचार।

निराला व्यग्य प्रिय होने के कारण अलकारो के पीछे नही दौडे है। पन्त और निराला का अलकरण से कटे रहने का कारण उनकी प्रगतिशील चेतना है। छन्द के क्षेत्र मे भी ये दोनो क्राति लेकर आये हैं। निराला मुक्त छद को लाये है तो पन्त ने अपने सदर्भो के अनुसार शास्त्रीय छन्दो मे हेर फेर भी किया है। इस प्रकार अपनी मौलिकता की छाप लगाकर पन्त औरो से आगे बढ गये है।

युग चेतना—कवि जिस युग मे जीता है, उसे भुला कर या उपेक्षित करके जीवित नही रह सकता है। युग चेतना की दृष्टि से निराला और पन्त, प्रसाद व महादेवी की अपेक्षा अधिक सक्रिय दिखाई देते है। निराला ने अपने समाज की जर्जर रूढियो पर प्रहार किया तथा यह बताया कि इन्हें छोडे बिना गति नही है। पन्त ने भी यही किया, किन्तु इनसे भी आगे का कदम पन्त ने उठाया जो निराला नही कर पाये। पन्त ने अपने युग की परिस्थितियो व समस्याओ को समझ-बूझा और काव्य के सहारे चित्रित किया, गाधी को, तथा अपने समय के अनुकूल अरविन्द व मार्क्स को भी स्वीकार किया। युग की भावनाओ को जानकर उसके लिए अरविन्दवादी दृष्टिकोण की खुराक पिलाई। पन्त ने यह बता दिया कि यदि हम समन्वय का मार्ग नही अपनायेंगे तो विकास नहीं कर सकते हैं।

पत ने अपने युग की जटिलता, सघर्षमयी परिस्थितियो तथा विविध समस्याओं को स्वीकारा और समाधान का मार्ग भी बताया है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पन्त अपने समकालीन कवियो मे सर्वाधिक जागरूक कवि हैं। हिन्दी साहित्याकाश मे पन्त जी के उदय के साथ ही खडी बोली का पर्याप्त परिमार्जित विकास प्रारम हो जाता है। पन्त की काव्य चेतना को प्रारम मे खुलकर विचरण करने का अवसर नही मिल पाया था क्योंकि महावीर प्रसाद द्विवेदी के भय और आतक से शृगार और सौन्दर्य का वर्णन करना बडा दूभर था फिर भी पन्त जी ने यह सब किया।

प्रदेय—पन्त का प्रदेय कई रूपों में देखा और समझा जा सकता है। पन्त ने हिन्दी कविता को कई वस्तुएं दी हैं—

(अ) पन्त ने प्रकृति की विस्तृत रंगस्थली का सौन्दर्य कल्पना के पंखों पर छितरा कर हिन्दी पाठक के सामने रखा। परिणामत पाठक के मन-प्राण मे इस सौन्दर्य से विशेष आशा व उल्लास भरता गया।

(ब) छायावाद को चरमोत्कर्ष पर पहुंचा दिया, किन्तु साथ ही यह भी बता दिया कि अब यह कल्पना का रंगमहल अधिक दिन टिकने वाला नही है। उन्होंने लिखा—"छायावाद इसलिए अधिक दिन नही रहा कि उसके पास भविष्य के लिए उपयोगी नवीन आदर्शों का प्रकाशन, नवीन भावना का सौन्दर्य-बोध और नवीन विचारों का रस नही था। वह काव्य न रहकर केवल अलकृत सगीत बन गया था।"

(स) पन्त युग के साथ चलने वाले सर्वाधिक युगकवि है। वे छाया-वादी–रेशम के धागो से गुथे पालने मे झूले हैं तो प्रगतिवादी खुरदरी खाट पर भी लेटे हैं। इतने पर भी उनकी चेतना मे कोई फर्क नही आया है।

(द) पन्त ने जीवन के लिए व्यावहारिक समन्वयवादी सदेश दिया है। वे आदर्श मे कम यथार्थ मे अधिक जिए हैं।

(य) पन्त ने कला के क्षेत्र मे भाषा का नया और स्वस्थ रूप प्रस्तुत किया। यह उनकी ऐसी देन है जिसे भूलना सभव नही है। काव्यभाषा के क्षेत्र मे पन्त जी बेजोड हैं—"एक सच्चे पारखी की तरह पन्त ने त्रिकाल से मौजूदा शब्दो को सेर छटाक मे नही, रत्ती और परमाणुओ के भार मे तौल कर उनके मोल को बडी बारीकी से आंका है तथा किसी यूनानी प्रस्तर-शिल्पी की भांति अपनी छैनी और हथौडे के बहुत कोमल और दृढ हाथो से काटा-छांटा और सुन्दर भावो को प्रकट करने का माध्यम बनाया।"

(व) भाषा के साथ-साथ शैली के क्षेत्र मे भी पन्त जी ने नया अध्याय खोला है। छन्दो मे पुरानो को अपनाकर भी उन्हें घटाया-बढाया और अपने अनुकूल बना लिया।

मोह

परिचयात्मक टिप्पणी—कवि सुमित्रानन्दन पन्त ने 'आधुनिक कवि' कविता सकलन की मोह' कविता मे कवि का प्रकृति प्रेम वर्णित है। कवि प्रकृति से सम्बन्ध विच्छिन्न करके, वृक्षो की मृदु छाया को छोडकर वाला के केश-जाल मे अपने लोचन अभी से उलझाने के लिए तैयार नही है। जल की तरल तरगो को और इन्द्र धनुप के विविध लुभावने रगो के आकर्षण को छोडकर वाला के भ्रू-भगो से अपने मृग को विधवा दे यह उसके लिए सम्भव नहीं है। एक ओर कोयल का कोमल बोल, मधुकर की कर्ण-सुखद वीणा की ध्वनि है दूसरी ओर वाला के प्रिय स्वर हैं। कवि कहता है कि हे सजनी अभी से इस ससार को भुलाकर मैं तेरे प्रिय स्वर से अपने श्रवणो को भर लू और कोयल के कोमल वोल तथा मधुकर की अनमोल वीणा को अभी से छोड दू, यह कैसे सम्भव है। कवि को प्रकृति की मनोहारी वस्तुए एक के वाद दूसरी स्मृति मे आती जाती हैं जिनकी सौन्दर्य-छटा के समक्ष उसे वाला का सौन्दर्य अधिक आकर्षक नही लग रहा। इसलिए कवि पन्त कहते है कि उषाकालीन स्मितयुक्त किसलय-दल और अमृत सी सुखद किरणो से उतरी हुई जल विन्दुओ के समक्ष तेरे अधरामृत के मद मे अभी से इस ससार को छोडकर अपना जीवन कैसे वहला दू ?

प्रत्येक पद मे प्रकृति की सुन्दर वस्तुए वर्णित हैं साथ ही वाला के सुन्दर अगो का वर्णन है। वाला के वाल-जाल, भ्रू-भग, प्रिय-स्वर और अधरामृततम सुन्दर और आकर्षक नही है परन्तु फिर भी उनकी तुलना मे पन्तजी को मृदु छाया, तरल तरग, इन्द्रधनु कोयल का कोमल वोल, मधुकर की अनमोल वीणा, किसलय-दल एव रश्मियो को जल अधिक भाते हैं।

छोड़ द्रुमों ... जग को। (पृष्ठ १)

शब्दार्थ—द्रुम=वृक्ष, मृदु=मृदुल, कोमल, घनी, शीतल, माया=मोह, ममत्व प्रीति, वाल जाल=वालो का समूह, केशराशि, लोचन=नेत्र, तरल=वहने वाली, भ्रू भगों=तिरछी भौंहो।

प्रसग—प्रस्तुत पंक्तिया पन्तजी के कविता सकलन 'आधुनिक कवि' की 'मोह' शीर्षक कविता से उद्धृत की गई हैं।

सन्दर्भ—इन पक्तियो मे कवि का मन प्रकृति के सौन्दर्य से अभिभूत दिखाया गया है। प्रकृति-सुषमा के समक्ष नारी-सौन्दर्य उसके लिए कुछ भी नहीं ठहरता, इसीलिए नारी से अलग रहकर उसे सम्बोधित करता हुआ कवि कहता है—

व्याख्या—हे बाले ! तुम्हारा सौन्दर्य अनुपम है। तुम्हारी केश राशि नेत्रो को लुभा लेने वाली है, परन्तु फिर भी वृक्षो की मृदुल शीतल छाया ही

मेरे लिए अधिक मनोहारी है। प्रकृति से मोह छोडकर तुम्हारे सुन्दर घने बालों मे अपने नेत्रों को उलझा दूं, केशों के सौन्दर्य के समक्ष वृक्षों की घनी शीतल छाया को भूल जाऊं यह कैसे सम्भव है। मैं अभी से इस प्रकृति के अभिराम जगत से विमुख नही हो सकता।

तुम्हारी तिरछी भौंहे बडी आकर्षक हैं। तुम्हारे नेत्र-बाण हृदय को वेध देने वाले है परन्तु जल की अठखेलिया करती हुई चचल तरगो का और इन्द्र धनुष के विविध वर्णों का सौन्दर्य तो वर्णनातीत है। इन दोनो का सौन्दर्य अनुभव ही किया जा सकता है। प्रकृति के रम्य सौन्दर्य से अनुभूत अपने मृग से मन को इन दोनो के सौन्दर्य से विमुख करके क्या तुम्हारे भ्रू-भगो से विद्ध करवा दू? क्या ऐसा करना औचित्यपूर्ण है? ऐसा करके मन-मृग को कष्ट देना है, बन्धन मे डालना है। मैं अभी से इस प्रकृति सुन्दर ससार को नही छोड सकता।

विशेष—कवि ने इन पक्तियो मे प्रकृति के सुन्दर उपादान और बाला के सुन्दर अगो को चित्रित किया है जिनमे से उसे प्रकृति की वस्तुए ही अधिक आकर्षक लगी हैं। बाला के केश जाल, भ्रू-भग यद्यपि बडे सुन्दर हैं फिर भी द्रुमो की मृदु छाया, तरल तरग एव इन्द्र धनुष के रग ही उसे अधिक अच्छे लगे हैं। इसमे पन्तजी का प्रकृति के प्रति अटूट प्रेम प्रकट होता है।

'बाले' शब्द का सम्बोधन उचित ही है। छायावाद से पूर्व रीतिकाल मे कवियो का ध्यान स्त्री सौन्दर्य पर ही केन्द्रित था। छायावाद में भी नारी-सौन्दर्य का वर्णन पर्याप्त हुआ है परन्तु पन्तजी ने स्त्री सौन्दर्य के समक्ष प्रकृति-सौन्दर्य को सर्वप्रथम महत्व प्रदान किया। उन्हे तो नारी ही नही 'बाला' जिसका सौन्दर्य, अनुपम, निष्कलुष, निश्छल होता है और होता है विकासशील, वह भी नही रुची।

'बाल-जाल' का प्रयोग भी साभिप्राय है। नारी के सहज सचिक्कण सुन्दर घने केश बडे ही मनोज्ञ लगते हैं जिनमे किसी का मन सहज ही उलझ सकता है। जब कोई वस्तु आसानी से हाथ नही आती तो उसे जाल मे फसाने का उपक्रम किया जाता है और असावधान जीव उसमे फस जाते है। पतजी काफी सजग हैं। सजग रहकर अपने आप को फसा देना कहा तक उचित है? उन्हें प्रकृति-प्रागण में स्वच्छन्द विचरण ही भाता है जाल मे आबद्ध होना नही।

'अभी से' स्पष्ट है कि पन्तजी को आरम्भ मे ही प्रकृति से विमुख होकर बाला का ससर्ग पसन्द नही है। यह तो पन्तजी के कवि पथ-पर चलने का आरम्भ काल ही है।

तरल तरग एव इन्द्र धनुष के साथ भ्रू-भग शब्द का प्रयोग उचित है। तरगो की सी तरलता आखो मे विशेषतया नारी की आखो मे नही होती। भ्रू-भगो से, जिनकी तुलना धनुष से की जाती रही है, नारी कठोर हृदय को भी वेध डालती है। एक सुन्दरी को अपनी झुकी हुई भौंहो पर बडा गर्व होता है परन्तु कवि ने तरल तरगो और इन्द्र धनुष का प्रयोग करके एक और

ध्वनि व्यंजित की है, वह यह कि बाला का सौन्दर्य तरल तरंगो और इन्द्र धनुष के सौन्दर्य के समक्ष चिर स्थायी नही है।

'मृग-सा मन'—मृग स्वच्छन्द प्रकृति का जीव है साथ ही वह बडा भाला होता है। कवि का मन-मृग भी प्रकृति के विशद क्षेत्र मे स्वच्छन्द विचरण करना पसन्द करता है। जानबूझकर मृग शिकारी के जाल मे फसना कभी पसन्द नही करता फिर पन्तजी तो पूर्ण सजग है। वे मृग से अपने मन का भला कैसे विधवा सकते हैं, वाला के भ्रू-भंगो से।

मृग-सा' में उपमालकार है।
भाषा प्रवाहशील और सरल है।

कोयल का · जग को। (पृ० १)

शब्दार्थ—मधुकर = भ्रमर, भौंरा, वीणा = गुंजार, अनमोल = अमूल्य श्रवन = कान, सस्मित = मुस्कान युक्त, स्मित सहित, किसलय-दल = कोपलें, कोमल नई पत्तिया, सुधा-रश्मि = चन्द्रमा की किरणें, जल = ओस, अधरामृत = होठो का अमृत, होठो का माधुर्य, मद = चुम्बन, आनन्द।

सन्दर्भ—वाला के पास वाल-जाल और भ्रू-भगो के अतिरिक्त अन्य सुन्दर वस्तुए भी है जो किसी के मन को हर सकती हैं। कवि कोयल के कोमल बोल आदि प्रकृति की वस्तुओ को छोडकर वाला के प्रति आकर्षित नही हो सकता। कवि वाला को सम्बोधित करता हुआ कहता है—

यह ठीक है कि तुम्हारा स्वर वडा प्रिय, वडा कर्ण सुखद है परन्तु कोयल का बोल भी क्या कम प्रिय है। भ्रमर की गुञ्जार तो अनमोल ही है। अभी से ऐसे ससार को, जिसमे कोयल का मनोहारी कूजन और भौंरो का गुञ्जन लगातार हो रहा है, छोडकर तुम्हारे प्रिय स्वर से अपने कानो को कैसे भर लू। तुम्ही बताओ क्या ऐसा सम्भव है कि अकेली तुम्हारे प्रिय स्वर को सुनता रहू और ससार में जहा अगणित कोकिलाएं पचम स्वर में बोल रही हैं, भौंरे वीणा की सी मधुर गुञ्जार कर रहे हैं, उनकी ओर से अपने कान वन्द कर लू। यह कम स कम मेरे लिए अभी सम्भव नही है। सम्भव है भविष्य मे इनके प्रिय स्वरो से तृप्ति हो जाय और तुम्ही तक मैं अपने को सीमित कर सकू।

प्रकृति का ससार वडा ही निराला है। उषा प्रतिदिन मुस्कराती हुई उदित होती है जिसकी मुस्कान से व्यथित हृदय भी अपनी टीस भूल जाता है, जिसकी स्वर्णिम आभा मे नवीन कोपलें और भी मनोहारी लगती हैं। उधर चन्द्रमा जो शीतलता का भण्डार है अपनी किरणो से अमृत-सदृश ओस-बिन्दुओ को गिराया करता है। ओस-बूंदो से युक्त किसलय-दल उषा की आभा से जितने सुन्दर और आकर्षक लगते हैं उतने सुन्दर होते हुए भी तुम्हारे होठ नही। तुम्हारे सुन्दर अधरो का पान मन को मुग्ध कर लेने वाला है परन्तु अभी से मैं चिर-नूतन प्रकृति सौन्दर्य से विमुख होकर तुम्हारे अधरामृत पान के आनन्द मे अपना जीवन कैसे लगा दू। यह अभी से सम्भव नहीं है।

विशेष—यहां भी कवि ने अपनी रुचि प्रकृति सौंदर्य मे व्यक्त की है। कवि कोयल के बोल और मधुपो की गुन्जार पर ही अधिक रीझा है। नव किसलय से बाला के अरुण होठो का सौंदर्य भी उसके जीवन को बहला कर, चन्द्र किरणो ने गिरी हुई ओस बूदो से युक्त उषा की आभा से युक्त किसलय दलो के सौंदर्य से विमुख नही कर सका।

'कह' 'ही' और 'ना' शब्द बडे महत्त्व के हैं। 'कह' शब्द से प्रकट है कि कवि, प्राकृतिक सुन्दर वस्तु और बाला की सुन्दर वस्तु मे से कौन सी सुन्दर है, यह निर्णय बाला या सजनि पर ही छोड देता है।

'ही' शब्द भी ऐसा ही है। बाला पर ही कवि ने जब निर्णय छोड दिया होगा और वह कोई विकल्प नही दे सकी होगी तो कवि ने कहा होगा कि जब इसका समाधान तुम्हारे पास भी नही है तो मैं अपनी रुचि से विमुख होकर तुम्हारे स्वर मे अनुरक्त कैसे हो जाऊ?

'ना' शब्द में बडा निषेध है। कवि कहना चाहता है कि मैं भूल कर भी यह कार्य नही कर सकता। 'ना' का अपना माधुर्य है। ऐसा ही प्रयोग अन्यत्र भी कवि ने किया है। देखिए उसमे कितना आग्रह झलक रहा है।

"सिखा दो ना हे मधुप कुमारि।
मुझे भी अपना मीठा गान।।"

इस 'ना' के प्रयोग से स्पष्ट है कि कवि अपने किसी तर्क से मधुप कुमारि मे अपनी बात मनवाने मे असमर्थ है अत्र इसीलिए वह साधिकार आग्रह कर रहा है।

बहला दू—अपेक्षित वस्तु के स्थान पर अन्य वस्तु देकर जब काम चलाया जाता है वहा इस शब्द का प्रयोग उचित होता है। पत जी भी प्रकृति के सुन्दर उपादानो के बजाय बाला के सुन्दर अधर से काम चलाने को जीवन को बहलाना मानते हैं।

ऊषा-सस्मित छायावादी प्रयोग है। प्रकृति मे मानव-व्यापार की कल्पना की गई है।

मोह कविता भावना प्रधान है। प्रकृति-जगत् और मानव-जगत् के द्वारा कवि हृदय पर पडे हुए प्रतिबिम्बो का इसमे चित्रण हुआ है।

बाल प्रश्न

कथ्य—'बाल-प्रश्न' कविता मे कवि ने बाल-सुलभ जिज्ञासा का अंकन करके बाल-मनोविज्ञान स्पष्ट किया है। एक बार स्वामी विवेकानन्द अल्मोडा आये थे। उनके स्वागत मे पूरी औपचारिकता निभाई गई-मार्ग मे मखमल बिछवाई गई, दीपको की पक्तिया सजाई गई। यह सब कौतुक देखकर एक बालिका ने अपनी मा से पूछा अपनी जिज्ञासा तृप्ति के लिए कि मा ! जब राजर्षि विवेकानन्द अल्मोडे मे आये थे तो रास्ते मे मखमल बिछवाया गया था, दीपको की पक्तिया सजाई गई थी। क्या वे बिना पावडे और दीपावली के प्रकाश के चल नही सकते थे ? क्या उनकी दृष्टि कुछ मन्द थी ?

उस बालिका की जिज्ञासा तृप्ति के लिए उसे उसकी मा ने समझाया कि अरी कृष्णे ! स्वामी जी तो दुर्गम रास्तो मे भी निर्भय होकर चलते है, अपनी दिव्य दृष्टि से वे कितने ही कण्टकाकीर्ण मार्ग पार कर चुके है। मखमल जो मार्ग में बिछाई गई थी, वह तो जनता के मन की (उनके प्रति) भक्ति-भाव की सूचिका थी। स्वामी जी स्वय प्रभावान है, दीपो की जो पक्तिया सजाई गई थी वे उनके पूजन के हेतु सजाई गई थी।

इस सीधी सरल कविता मे मा—बेटी के माध्यम से पतजी ने बालको की सहज जिज्ञासा वृत्ति और मा का पुत्री के प्रति स्नेह व्यक्त किया है।

मॉं पूजन के।

शब्दार्थ—मग = मार्ग, रास्ता। दीपावलि = दीपों की पक्ति। विपुल = अधिक। अमन्द = जो धीमी न पडे, लगातार ज्योतिपूर्ण। दुर्गम मग = ऐसा रास्ता जहा जाना कठिन हो, त्यागमय जीवन। दिव्य दृष्टि = असाधारण दृष्टि, ऐसी दृष्टि जो परोक्ष को भी जान ले। कटकमय = कटको से आपूर्ण। प्रभावान = कातिपूर्ण। प्रदीप = दीपक।

सन्दर्भ—एक बार स्वामी विवेकानन्द अल्मोडा आये थे। उनके सम्मान में मार्ग मे मखमल बिछवाई गई, दीपक जलाये गये। यह सब देखकर एक बालिका ने अपनी मा से पूछा—

मा ! जब अल्मोडे मे स्वामी विवेकानन्द आये थे तब रास्ते मे मखमल बिछवाई गई थी और सतत दीप्त रहने वाले दीपों की पक्तिया सजाई गई थी। ऐसा क्यो किया गया था ? मार्ग मे जो मखमल बिछवाई गई थी उससे क्या यह तात्पर्य निकाला जाय कि वे बिना पावडे रास्ते मे चल नहीं सकते थे ? लगता है उनकी दृष्टि मन्द थी अन्यथा अनेक दीपक क्यो जलाये जाते ? इसका कारण मैं नही जान पा रही, आप ही बताइए।

उस बालिका की जिज्ञासा तृप्ति के लिए मा को विवश होकर कहना ही पडा, कृष्णे ! तुम अबोध हो, भोली हो। स्वामीजी की विशेषताओ मे अनभिज्ञ हो। वे पावडे के बिना चल न सकते हो, ऐसी बात नहीं है। स्वामी जी तो ऐसे मार्गो पर जिन पर साधारण व्यक्ति नही चल सकते, भी निर्भय होकर चलते हैं। जिन कठिन मार्गों पर होकर वे चल चुके है उनकी तुलना मे अल्मोडे के मार्ग तो अत्यधिक सुगम हैं। उनकी दृष्टि असाधारण है, दिव्य है जिसकी सहायता से वे कितने ही कटकाकीर्ण, अनेक आपदाओ से आपूर्ण मार्ग पार कर चुके हैं। जिन तथ्यो की अवगति साधारण मनुष्य को नही होती उन्हे स्वामी जी अपनी दिव्य दृष्टि से जान लेते हैं उन्हे बाह्य आलोक की भी आवश्यकता नही है वे स्वय ज्योतिवान है, आत्मज्योति से युक्त हैं, दूसरो को प्रकाश देने वाले है। अज्ञानान्धकार मे निकाल कर ज्ञान का आलोक साधारणजनो को देने की क्षमता वाले हैं। वे जो दीपक जलाये गये थे वे तो उनकी पूजा के लिए थे, उनके सम्मान के लिए थे। और जो मखमल बिछाई गई थी वह स्वामी जी के प्रति जनता की भक्ति भावना की सूचक थी। अब तू समझ गई होगी कि जनता ने स्वामीजी के प्रति अपनी अगाध श्रद्धा प्रदर्शित करने के लिए स्वागत के प्रसाधन जुटाये थे, उन्हें किसी प्रकार की सहायता पहुचाने के लिए नही।

विशेष—इस कविता मे बालमनोविज्ञान पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। प्राय. बच्चो मे किसी नई वस्तु को जानने की उत्सुकता होती है और यह भी सत्य है कि अपने पिता की अपेक्षा अपनी मा से ही शकाओ का समाधान बच्चे अधिकतर कराया करते हैं।

भाषा सरल और पात्रानुकूल है। यदि बालिका को माध्यम न बनाया गया होता तो इस कविता का कोई महत्त्व नही था।

प्रथम रश्मि

कथ्य—प्रस्तुत कविता मे कवि एक पखेरू से अपनी जिज्ञासा निवेदित कर रहा है। विहान फटते ही सूर्य की पहली किरण का आगमन है रगिणि ! तूने कैसे पहचान लिया ? भोर होते ही पक्षी कलरव करने लगते हैं, एक चिड़िया विशेष को चहकते देखकर कवि पूछता है कि बालविहगिनि तुमने यह गाना कहा-कहा से सीख लिया ? कवि यह जानना चाहता है कि जब सारा ससार सोया होता है तब प्रथम रश्मि के आने का भान इसी को पहले-पहल कैसे हो जाता है ? खुशी मे यह जो गाना गाती है इस गाने की कला इसे कौन बतलाता है ? चिड़िया अपने नीड मे रात भर निश्चिन्त होकर सुख से सोई रहती है, जुगनू जैसे उसकी पहरेदारी करते हैं। भूमि पर पडने वाली चन्द्र-किरणो के सहारे इच्छानुसार रूप धारण करने वाले नभचर नवीन-नवीन कलियों को खिलाकर मुस्कराना सिखा रहे थे। आकाश में टिमटिमाते हुए तारागण निर्वाणोन्मुख दीपक से लग रहे थे, वृक्षों के पत्ते निस्तब्ध थे रात्रि मे विश्राम करते रहने के कारण ससार स्वप्नमग्न था, और अन्धकार का सर्वत्र वितान तना हुआ था, ऐसे समय में यकायक प्रथम रश्मि के स्वागत में चिड़िया गाना गा उठती है। अन्धकारयुक्त ससार मे छाया से शरीर वाले निशाचर जादू-टोना करके न जाने कैसे-कैसे चक्र रच रहे थे।

चन्द्र श्रीहीन होता जा रहा था भ्रमर कमलो के कोश में बन्द थे, कोक पक्षी रात्रि मे परस्पर वियुक्त रहने के दुख मे दुखी थे। ससार शान्त निश्चेष्ट था जिससे जड-चेतन सभी एक समान प्रतीत होते थे। वहा यदि किसी का सचरण था तो सासो का। उस पक्षी ने ही प्रभातागमन की सूचना देकर, प्रभात मे फैली शोभा को मानों उसी ने विकीर्ण कर दिया। अन्धकार का आकार हीन ससार प्रकाश होने ही साकार तो हो ही उठा नाना वस्तुयें अपने-अपने नामो मे स्पष्ट हो उठी।

शात वृक्ष अब पुलकित हो उठे, समीरण बहने लगा, प्रफुल्ल कुसुमो की पखुड़ियो पर पडी हुई ओस बूदें मोती सी प्रतीत होने लगी। सर्वत्र स्वर्णिम आभा फैल उठी, भ्रमरवाल घूमने लगे और ससार भर ने नया जीवन अपनाना सीख लिया।

कवि ने 'प्रथम रश्मि' कविता मे सूर्योदय से पूर्व और सूर्योदय के पश्चात् रहने वाली ससार की स्थिति पर बडी सूक्ष्मता से प्रकाश डाला है। सूर्योदय होते ही पक्षीगण तो स्वत ही चहचहाते हैं रात्रिभर के अन्धकार के उपरान्त प्रकाश से नवजीवन पाकर। कवि ने यह कल्पना कर ली है कि पक्षी प्रभात के आगमन से स्वागत गान गाकर विश्व को प्रभातागमन की सूचना देते हैं। कवि ने तब एक चिड़िया को सम्बोधित करके कहा है।

प्रथम रश्मि···· ··गाना। (पृ० ३)

शब्दार्थ—प्रथम रश्मि=प्रभात काल की प्रकाश की प्रथम किरण। रंगिणि=रंगों से युक्त चिड़िया। बाल विहगिनि=छोटी चिड़िया।

सन्दर्भ—रात्रि के अन्तिम प्रहर की समाप्ति पर पक्षी चहकने लगते है। सभी मानव नही जान पाते कि प्रभातागमन होने को है परन्तु पक्षियो के कलरव से इसकी सूचना मिल जाती है। पक्षियो को प्रभात होने का ज्ञान कैसे हो जाता है, ये जो गान करते हैं उसको कला भी कैसे सीख जाते हैं? अपनी इसी जिज्ञासा की शान्ति के लिए कवि एक पक्षी से पूछता हुआ कहता है—

हे रंगिणि! सर्वत्र निस्तब्धता का साम्राज्य है, कहीं भी कोई हलचल नही है, कोई संकेत नही है, फिर तूने ही पहली किरण का आना कैसे जान लिया? तूने यह कैसे जान लिया कि अब अन्धकार समाप्त होने वाला है? जब कि मानव जाति बेखबर सो रही है उसे इसका भान भी नहीं तब तू रश्मि के स्वागत मे गाना गा रही है। हे बाल विहगिनि बता कि तूने गाने की ऐसी सुन्दर कला कहां-कहां से सीखी है। इतना अच्छा गाना अवश्य बड़े प्रयत्न से अनेक स्थानो पर जा-जाकर अनेक कलाकारो से ही सीखा होगा।

विशेष—कवि प्रात.काल गाती हुई चिड़िया के गाने से इतना प्रभावित है कि अपनी जिज्ञासावृत्ति को स्पष्ट कर ही देता है। जो इतना अच्छा संगीत जानती है उसका मर्म उसके अतिरिक्त बता भी कौन सकता था, अत वह विहगिनि से ही अनेक प्रश्न करता है। प्रातःकाल चिड़ियो को कलरव करते तो बहुतो ने सुना होगा परन्तु उनसे कुछ जानने का साहस प्रकृति के सुकुमार कवि पंत के अतिरिक्त शायद ही किसी ने किया हो।

कहां-कहां के प्रयोग से स्पष्ट है कि कवि को चिड़िया का गाना अत्यन्त मनोहारी लगा है अन्यथा वह केवल 'कहां' का प्रयोग कर सकता था। ऐसा सुन्दर संगीत एक स्थान पर सुलभ नहीं हो सकता।

जिज्ञासा रहस्यवाद और छायावाद दोनो की प्रमुख प्रवृत्ति है।

सोई थी ······मुसकाना।

शब्दार्थ—स्वप्न-नीड=ऐसा घोसला जिसमे विश्राम लेकर आनन्द प्राप्त होता हो, सुख के स्वप्न आते हों, प्रहरी=पहरा लगाने वाले, चौकीदार, जुगनु=पटबीजना, खद्योत रात को गन्दे नालो के आसपास उड़कर चमकने वाला कीड़ा, शशि=चन्द्रमा, कामरूप=इच्छानुकूल रूप बदलने वाले सिद्धियो से युक्त, नभचर=आकाश में विचरण करने वाले जैसे देव वायु, अप्सरा आदि।

सन्दर्भ—चिड़िया आनन्दपूर्वक निश्चिन्त सोई हुई थी। संसार मे अनेक व्यापार हो रहे थे। चिड़िया के गाने से पूर्व की स्थिति इन पंक्तियो में चित्रित है—

व्याख्या—तू अपने घोंसले में निर्द्वन्द्व होकर सो रही थी। निश्चिंत होने के कारण सुख के स्वप्न देख रही थी। तेरा शरीर पंखों से आवृत शान्त पड़ा हुआ था। तेरे घोंसले के द्वार पर रात्रि के समय जुगनू उड़ रहे थे जिनके चमकने से प्रकाश दीख पड़ता था। घूम घूम कर झूमते हुए जुगनू ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो तेरी सुरक्षा के लिए प्रहरी हो। उनकी संख्या भी बहुत थी। इस प्रकार घोंसले में अपने पंखों के सुख में छिपी हुई जुगनुओं के द्वारा रक्षित तू सुखपूर्वक सो रही थी।

तुझे यह भी ज्ञात नहीं था कि उस समय संसार में और भी कुछ व्यापार हो रहे थे अथवा नहीं। जब तू सुख-स्वप्न देख रही थी उस समय आकाश में विहार करने वाले चन्द्रमा की किरणों को पकड़ पकड़ कर इच्छानुसार रूप धारण करने वाली नभचारी अप्सरायें आदि धरती पर उतर नई कलियों के मृदुल मुखों को मुसकाना सिखा रही थी। रात्रि के समय चन्द्रमा की किरणें पृथ्वी पर पड़ रही थी, कलियां कुछ कुछ खिलने की स्थिति में थी। कवि कल्पना करता है कि उन कलियों को चन्द्र-किरणों के सहारे उतरने वाले कामरूप मुस्काना सिखा रहे थे।

विशेष—विहगिणि के निवास स्थान पर जुगनुओं द्वारा चौकीदारी कराकर कवि ने विहगिणि को वैभव सम्पन्न दिखाया है।

स्वप्न दो स्थितियों में आते हैं। एक तो वह स्थिति जब व्यक्ति निश्चिन्त होकर आनन्दपूर्वक निद्रा में लीन हो जाता है। इस स्थिति में प्रसन्नता देने वाले स्वप्न दिखाई पड़ते हैं। दूसरी स्थिति वह होती है जब व्यक्ति को चिन्तायें और विषाद घेरे रहता है। उसकी नींद उचट-उचट जाती है। ऐसी स्थिति में वह यदि स्वप्न देख लेता है तो वे प्राय भय अथवा दुखप्रद ही होते हैं।

पहरेदार को ड्यूटी जाग्रत रहकर रखवाली करनी होती है इसलिए वह सो नहीं सकता। सारी रात जागरण करने से उसे झपकी आ जाना स्वाभाविक है। जुगनूरूपी पहरेदार भी निद्रा के आलस्यवश झूम उठते थे।

प्रभात की प्रथम किरण दिखाई पड़ते ही कलियां प्रस्फुटित होने लगती है। कवि ने कल्पना की है कि चन्द्रमा की किरणों के सहारे कामरूप प्रेमी नवीन कलियों को मुस्काना सिखाकर लौट जाते हैं। कलियां नवीन होने के कारण प्रणय करना नहीं जानती। मुस्काना प्रणय का प्रथम पाठ उन्हें काम-रूप प्रेमी सिखाते हैं।

'कामरूप' शब्द से यह अर्थ भी ध्वनित होता है कि वे अत्यन्त कामुक हैं कलियों के प्रेमी इसीलिए स्वयं अपनी प्रेयसियों के पास आते हैं।

'प्रहरी से' में उपमा अलंकार है। जुगनुओं का पहरा देना आदि प्राकृतिक वस्तुओं में मानव-व्यापार की कल्पना करना छायावाद की विशेषता है।

स्नेह-हीन ' आना ।

शब्दार्थ—स्नेह-हीन = तेल रहित, शून्य = रहित, विना, पात = पत्ते, तम = अधकार, मण्डप = वितान, चदोवा, पण्डाल, सहसा = यकायक, तरु-वासिनी - वृक्ष पर निवास करने वाली, अन्तर्यामिनि = हृदय की बात जानने वाली, उसका = अर्थात् प्रथम रश्मि का ।

सन्दर्भ—तारो का प्रकाश मन्द होता जा रहा था। अभी अन्धकार सर्वत्र व्याप्त था ऐसी स्थिति मे प्रथम रश्मि को देखकर चिड़िया चहचहा उठी ।

व्याख्या—जिस प्रकार तेल समाप्त हो जाने पर दीपक का प्रकाश मन्द होता जाता है वैसे ही आकाश मे तारे रात्रि की समाप्ति के साथ ही ज्योति-हीन हो चले थे । वृक्षो के पत्ते शान्त थे वायु के अवरुद्ध रहने के कारण । पत्तो के न हिलने से वृक्ष ऐसे लगते थे कि उनकी श्वास ही बन्द हो । विश्व नीद मे डूबा स्वप्न देख रहा था । मण्डप के समान सर्वत्र अन्धकार फैला हुआ था ।

जब वृक्ष भी शान्त थे, संसार स्वप्नमग्न था और सर्वत्र अन्धकार फैला हुआ था तब भी यकायक वृक्ष पर निवास करने वाली हे चिड़िया तू कूक उठी । तूने रश्मि के स्वागत मे गान करना आरभ कर दिया । तू यह तो बतला किसने तुझे प्रथम किरण के आने की सूचना दी थी ? ऐसा प्रतीत होता है कि तू निश्चय ही अन्तर्यामिनी है । सबके हृदय की बात को जानने वाली है अन्यथा बिना संकेत पाये तुझे किरण का आना कैसे ज्ञात हो गया ? ससार तो सो रहा था ।

विशेष—प्रातःकाल होते-होते तारे ज्योतिहीन हो जाते है । उन्हे स्नेह-हीन दीपक कहना समीचीन है । जिस प्रकार रातभर जलते रहने के कारण तेल का अभाव हो जाने से दीपक का प्रकाश मन्द पड जाता है वैसे ही रात्रि-भर टिमटिमाते रहने वाले तारे भी रात्रि की समाप्ति पर ज्योतिहीन हो जाते हैं ।

तरु के पत्तो का श्वास लेना, स्वप्नो का विचरण करना, नभ के द्वारा मण्डप ताना जाना इनमे मानवीकरण है । मानवीकरण छायावाद काल की प्रमुख विशेषता है ।

'कूक उठी' से दो बातें स्पष्ट होती है । एक तो यह कि उसे 'प्रथम रश्मि' के आगमन पर अत्यत प्रसन्नता हुई । अपनी प्रसन्नता के आवेग मे वह एकदम कूक उठी, उसी प्रकार जिस प्रकार अत्यंत प्रसन्नता प्रदान करने वाली वस्तु देखकर बच्चा सहसा प्रसन्नता से पुकार उठता है । दूसरी यह कि तरु-वासिनी की निद्रा कुम्भकरण की निद्रा नही है अपितु ऐसी है जो तनिक आहट पाकर छिटक जाती है ।

चिड़िया के लिए अन्तर्यामिनि सम्बोधन बड़ा ही उचित है । उसकी अन्त प्रेरणा ही रश्मि के आने की सूचना दे देती है । अन्तर्यामिनि कहकर ही कवि को चिड़िया से आगे फिर प्रश्न करने को और समय मिल गया है क्योंकि यदि चिड़िया को कोई सूचना देने वाला होता तो कवि को प्रश्न का

उत्तर मिल जाता और आगे फिर से यह पूछने का अवसर न रह जाना कि तुझे किरण के आने की किसने सूचना दी। कवि को लगा है कि शायद चिडिया अन्तर्यामीनि है।

निकल सृष्टि' ... ···दीवाना।

शब्दार्थ—अंध गर्भ = अंधकारमय संसार, छाया-तन = छाया के समान शरीर वाले, छाया-हीन = उनकी परछाई स्पष्ट नही थी, खल = दुष्ट, निशिचर = रात मे विचरण करने वाले, राक्षस, कुहुक टोना-माना = जादू टोना, शशि बाला = चन्द्रमा रूपी बालिका, निशि = रात्रि, श्री हीन = कातिविहीन, क्रोड = गोद, सम्पुट,कोश अलि = भौंरा, कोक = एक पक्षी विशेष चकवा, दीवाना = पागल।

सदर्भ—अंधकार सर्वत्र व्याप्त था। निशिचर कुचक्र रच रहे थे। चन्द्र श्रीहीन होता जा रहा था। यह सब स्थिति सूर्योदय से पूर्व की है, उसी का वर्णन कवि कर रहा है—

व्याख्या—रात्रि के समय जब सारा ससार सुख से निद्रा मग्न था उस समय दुष्ट राक्षस, जिनके शरीर छाया से प्रतीत होते थे जिनकी परछाई भी नही पडती थी, जादू-टोने चलाकर कुचक्र रच रहे थे। उन दुष्टो के सारे कार्य व्यापार दूसरो के अहित के लिए हो रहे थे।

रात्रि का अवसान समीप था इसीलिए वह चन्द्रमा जो घने अंधकार मे अपनी शीतल ज्योति विकीर्ण करता रहा था अब श्री हीन होता जा रहा था। उसकी कान्ति विलीन हो रही थी। श्री हीन चन्द्रमा ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे कोई सुन्दरी बाला रात्रि जागरण के श्रम से श्रीहीन मुख को छिपाने का प्रयास करती है। भ्रमर अभी कमल के कोश मे बन्द था। प्रकाश के अभाव म अभी उससे बाहर नही निकला था। कोक अपनी प्रिया के वियोग मे पागल था।

विशेष—'निशिचर' के साथ छाया-तन छाया-हीन, एव अन्ध-गर्भ का प्रयोग समीचीन है। बुरे कार्य करने वाले प्राय. छिपकर ही अपने कार्य किया करते हैं। राक्षसो के कार्य बुरे होते ही हैं अत उनके लिए 'निशिचर' शब्द साभिप्राय है। अंधकार मे शरीर भी छाया के समान दीखता है। अंधकार मे परछाई भी नही पडती क्योकि अंधकार मे वह दीख भी नही सकती। राक्षस प्राय प्रकाश के समय छिपे रहते हैं अंधकार ही इन्हे पसन्द है इसलिए उनका अंध-गर्भ से निकलना कहना ठीक है। प्रो० रामरजपाल द्विवेदी ने यहा राक्षसो को शरीर विहीन बताया है जो ठीक नही है। क्योकि शरीर विहीन का छाया तन भी कैसे हो सकता है। छाया किसी स्थूल रूप की सम्भव है अमूर्त की नही। छाया हीन शब्द के भ्रम से सम्भवत द्विवेदी जी ने राक्षसो को यहा शरीर-विहीन मान लिया है, परन्तु छाया हीन विशेषण का प्रयोग तो इसलिए किया गया है कि अंधकार मे स्थूल या मूर्त रूप की छाया अंधकार मे मिलकर दिखलाई नही पडती।

निशाचरो के कार्य को चक्र रचना कहा गया है क्योंकि युद्ध के समय मे शत्रुओ को घेरने के लिए चक्रव्यूह आदि रचे जाते थे जिनसे निकलना बडा दुष्कर होता था। निशाचरों के जादू टोने के प्रभाव से बचना भी दुष्कर ही होता है।

शशि को पत जी ने स्त्रीलिंग मे प्रयुक्त किया है। पत जी लिंग-निर्णय वस्तु की परुपता और कोमलता के आधार पर करने के पक्षपाती है। शशि की शीतलता, सौंदर्य प्रसिद्ध है ही। वह कोमल भी है।

यह प्रसिद्धि है कि सूर्यास्त होते ही मधुप कमल के अन्दर छिप जाता है और सूर्योदय होने पर ही बाहर निकलता है। इसी प्रकार रात्रि मे कोक-कोकी विलग हो जाते हैं। वे किसी सरोवर या नदी के एक ही किनारे पर न बैठकर कोक एक किनारे पर बैठ जाता है और कोकी दूसरे पर। यह भी कहा जाता है कि दोनो पक्षी एक-दूसरे को उत्कठा भरी आवाज मे पुकारते से प्रतीत होते हैं।

मूर्छित थी ··· बाना।

शब्दार्थ—मूर्छित=चेष्टा रहित, शान्त, अचेत, स्तब्ध=शान्त, निश्चेष्ट एकाकार=एक ही आकार के, बिल्कुल समान, बहु दर्शिनि=बहुत देखने वाली, दूर की बात जान लेने वाली, जागृति=जागरण, नभचारिणि=आकाश में विचरण करने वाली।

संदर्भ—प्रस्तुत पक्तियों मे बताया है कि जब रात्रि मे सर्वत्र नीरवता का साम्राज्य था उस समय चिडिया ने ही जागरण का सदेश दिया।

व्याख्या—रात्रि में विश्राम करते हुए प्राणियो की इन्द्रिया शान्त थी जैसे उन्हे मूर्च्छा आ गई हो। समूचा ससार शान्त था इसलिए जड-चेतन मे कोई अंतर नही रह गया था, सभी समान हो गए थे। न तो वहा प्रकाश था और न उनमे हलचल थी इसलिए कौन सी वस्तु जड है कौन सी चेतन यह पहचान नही होती थी। ससार शान्ति के कारण सभी वस्तुओ से शून्य लग रहा था। यदि कोई हलचल थी तो वह थी जीवो की सासो मे जिनका आना-जाना बराबर जारी था।

जब सभी सज्ञा-हीन थे, तूने ही हे बहुदर्शिनि जागरण का गान अलापा। तेरा गान आरभ होते ही हे आकाश मे विहार करने वाली! सुख और सुगध फैल गई। इन सबका ताना-बाना, ऐसा प्रतीत होता है, तेरे ही द्वारा गूथा गया है।

विशेष—निद्रावस्था मे इन्द्रियो की वह स्थिति जिसमे वे सज्ञा-हीन हो जाती हैं, मूर्च्छावस्था कहलाती है। इन्द्रियो को मूर्च्छित कहने से कवि का अभिप्राय सभी जीवो को निद्रामग्न कहने से है क्योंकि निद्रा की स्थिति मे इन्द्रियो की अनुभव करने की क्षमता लुप्त हो जाती है।

जग का स्तब्ध कहा गया है इसलिये यहा विशेषण विपर्यय है क्योंकि जग के जीव स्तब्ध थे। विश्व सास नही लेता अपितु विश्व के जीव सास लेते हैं।

अंधकार मे जड-चेतन का भेद नही जाना जा सकता क्योकि उनका स्वरूप ही स्पष्ट नही दीख पडता। ईसाइयो की मान्यता है कि विश्व के अस्तित्व से पूर्व सभी वस्तुए एकाकार थी और वह स्थिति 'क्यौस' कहलाती है। ईश्वर ने विश्व की सृष्टि करके एकाकारिता दूर कर दी और यह दशा 'कॉसमॉस' कहलाई।

चिडिया का बहुदर्शिनी का सबोघन ठीक ही है क्योकि जब अंधकार मे सारा ससार सोया रहता है, कब सुबह होगी इसका उसे कोई भान भी नही होता, इसके विपरीत चिडिया प्रभात की प्रथम रश्मि के आगमन को भाँप लेती है।

प्रभात होते ही ससार में एक नया जीवन आ जाता है। सर्वत्र शोभा सुख और सुगध फैल उठती है। कवि कल्पना करता है कि वह नभचारिणि ही इन सबको फैला देती है क्योकि उसके द्वारा गाना गाये जाने से पूर्व इनका अस्तित्व ही नही मिलता। कवि ने इनके विस्तार का ताने बाने का गुथन कहकर बात को और भी भाव पूर्ण बना दिया है क्योकि ताना और बाना चारो ओर से बुना जाता है प्रभात होते ही सुख शोभा और सौरभ भी चारो ओर फैल जाती है।

निराकार ....दाना।

शब्दार्थ—निराकार=आकार विहीन, सहसा=एकदम यकायक, ज्योति-पुंज=प्रकाश का समूह, अत्यधिक प्रकाश, साकार=आकार सहित, द्रुत=सत्वर, शीघ्र, सिहर उठे=काप उठे, पुलकित=रोमाचित, प्रफुल्लित, द्रुम-दल=वृक्षो के पत्ते, अधीर=चंचल, प्रवाहमान, समीरण=वायु।

सन्दर्भ—प्रभात होते ही ससार मे एक नव जागरण आ गया। अब तक जड-चेतन एकाकार थे अब उनके नाम और स्पष्ट हो गये। प्रभातकालीन अन्य व्यापारो का इन पक्तियो मे चित्रण हुआ है—

व्याख्या—प्रभात होने से पूर्व सर्वत्र अन्धकार व्याप्त था। अन्धकार मे वस्तुओ के आकार स्पष्ट नही थे। ज्यो ही प्रभात की किरणे फैलने लगी, प्रकाश विस्तृत होने लगा और निराकार वस्तुयें आकार पा गई। अंधकार मे वस्तुओ के नाम और रूप ज्ञात नहीं थे परन्तु प्रकाश फैलने पर शीघ्र ही वे अपने रूप और नाम से जानी जाने लगी। ससार का स्वरूप बदल गया।

प्रथम किरण का स्पर्श पाते ही वृक्षों के पत्ते पुलकित हो उठे अर्थात् हिलने लगे, सोया हुआ समीरण धैर्य खो कर, अपनी शान्ति छोड कर बहने लगा। फूल खिल गये। उनकी पखडियो पर पडी हुई ओस की बूंदें रश्मि के स्पर्श से मोती की सी काति धारण करके चमकने लगी जिनसे पुष्प हसते हुए से दिखाई देने लगे।

विशेष—प्रस्तुत पक्तियों मे कवि ने भारतीय-दर्शन के उस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है कि 'प्रलय के उपरान्त अव्यक्त ब्रह्म से जगत् उत्पन्न होता है और प्रलय के आने पर उसी अव्यक्त

ब्रह्म मे लीन हो जाता है।' ब्रह्म की भी दो स्थितिया है—निराकार और साकार। सृष्टि उसके साकार रूप का परिणाम है अर्थात् दृश्यमान जगत् निराकार ब्रह्म का ही व्यक्त रूप है।

द्रुम-दल, समीरण और कुसुम मे मानवीकरण है। द्रुम-दलो का पुलकित होना, समीरण का जग कर चलने लगना, कुसुमो का हसना मानवीय व्यापार हैं। कवि ने प्रकृति के कोमल रूपो का ही चित्रण किया है।

खुले पलक ·····अपनाना ?

शब्दार्थ—सुवर्ण=सोना, स्वर्ण। सुरभि=सुगन्ध।

सन्दर्भ—रात्रि का अवसान होने के उपरान्त संसार मे नव स्पन्दन आया। सर्वत्र प्रकाश फैल गया। यही इन पक्तियो मे बताया गया है—

व्याख्या—रात्रिकाल मे सभी जीव सुख की निद्रा मे सो रहे थे। प्रात काल होते ही नीद छोड कर जाग उठे। ससार स्वर्णिम प्रकाश से रग उठा अर्थात् प्रात:काल की सूर्य की सुनहरी किरणो के स्पर्श से सुनहरी आभा छा गई। फूलो के खिलने और अवरुद्ध समीर के डोलने से सर्वत्र सुगन्ध फैल गई। मधुप भी इधर-उधर दौडने लगे। प्रभात होते ही सभी मे नया जीवन, नई गति आ गई। प्राणी अपने कार्यों मे पुन' जुट गये।

विशेष—पत जी के स्त्रीलिंग और पुल्लिग शब्दो के लिंग-निर्णय के अपने नियम हैं। पलक स्त्रीलिंग शब्द का यहा पुल्लिग मे प्रयोग किया गया है।

स्वर्ण के स्थान पर सुवर्ण शब्द कवि पत को अधिक रुचता है।

सुरभि के जागने मे मानवीकरण है।

अन्तिम चार पक्तियो का अर्थ पहले किया जा चुका है। पत जी चिडिया के सगीत से अत्यन्त प्रभावित हैं इसीलिए उससे कवि फिर से पूछता है कि तुमने ऐसा सुन्दर सगीत कहा से सीखा ? अत्यन्त उत्कठा अथवा आश्चर्य की बात जानने के लिए प्रश्नकर्ता बार-बार अपनी बात समान शब्दो में व्यक्त करता है। जैसे किसी मा का लापता पुत्र मिल जाय तो 'क्या मेरा पुत्र आ गया' इसी एक बात को वह अनेक तरह से पूछती है—रमेश आ गया, क्या मेरा लाल आ गया ? रावण को राम के द्वारा सेतु पर पुल बाधे जाने का समाचार मिला तो उसने अपना आश्चर्य व्यक्त करने के लिए समुद्र के दस नामो का उच्चारण किया—क्या जलनिधि बध गया ? क्या नीरनिधि बध गया ? आदि।

नीरव तार

कथ्य—प्रातःकाल की मनोरम वेला में कवि के हृदय में जो भाव उठे हैं उन्हीं को कवि ने इन पंक्तियों में चित्रित किया है। अरुणोदय हो गया है। रात का सोया हुआ समीर पुलकित होकर प्रवाहित हो उठा है। समीर के स्पर्श से कवि का शरीर रोमांचित हो उठता है। उसका मन आनन्दित है। प्रात की सुखद वेला में कवि इतना भाव-विभोर है कि उसकी हृदय रूपी वीणा के तार झंकृत हो उठे हैं पर वे तार शब्दहीन हैं। हृदय का आल्हाद शब्दों के अभाव में अनुभूति की ही वस्तु है किसी से शब्दों द्वारा कहने की नहीं।

कवि भाव-विभोर तो है ही। उसका हृदय ईश्वर के कौशल से चमत्कृत है इसलिए वह ईश्वर से प्रार्थना करता है हे भगवन्! आप मुझे अपने चरणों की भक्ति दीजिए। कवि सांसारिक आकर्षणों से बच कर ईश्वर की भक्ति कर सके, त्यागमय जीवन बिता सके, यही कामना करता है। वह अपने हृदय के कालुष्य को मिटाने को अभिलाषी है। कवि यह नहीं चाहता कि वह अपने सुखों के लिए साधन जुटाने में संलग्न रहे। उसकी कामना है कि उस पर ईश्वर का अनुग्रह बना रहे, वह दूसरों की सेवा करने का फल प्राप्त कर सके।

सम्पूर्ण कविता में कवि के हृदय में प्रातःकाल की सुखद वेला में उमड़ते हुए सात्विक भावों का चित्रण हुआ है। कवि सांसारिक प्रलोभनों से वीतराग होकर ईश्वर के चरणों का ध्यान करता हुआ अन्य जीवों की सेवा का फल पाने का अभिलाषी है। इन सभी का आधार है सद्बुद्धि। उसी की प्राप्ति के लिए वह ईश्वर से विनय कर रहा है।

नीरव तार ... ...आशय में।

शब्दार्थ—नीरव = आवाज रहित, मंजुल = सुन्दर, लय = स्वर, अनिल = वायु, पुलक = रोमांच, अरुणोदय = सूर्योदय, रज-रंजित = धूल-धूसरित, धूल से युक्त, मधु-रस-मज्जित = मकरंद में डूबा हुआ, आनन्द में निमग्न, चरणामृत = वह जल जो चरण धोने से प्राप्त होता है, आशय = आश्रय।

सन्दर्भ—प्रभात काल की मधुर वेला में कवि के हृदय में अनेक भावों का उदय हो रहा है जिन्हें शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। शुभ कार्यों में संलग्न रहने के लिए कवि ईश्वर से प्रार्थना करता है—

सूर्य के उदय होने पर सर्वत्र स्वर्णिम आभा फैली हुई है। वायु के शीतल स्पर्श से कवि का शरीर रोमांचित है। उसका हृदय आनन्दित हो रहा है। हृदय मधुर भावनाओं से इतना आह्लादित है कि हृदय रूपी वीणा के

तार आप से झकृत हो उठे है पर वे तार शब्दहीन हैं। अत हृदय के उल्लास का गीत शब्दो मे सुनाने का नही, वह अनुभूति का ही विषय है।

कवि ईश्वर से प्रार्थना करता है कि भगवन्! मेरा मन अपने चरणारविन्दो मे अर्पित कर दे ताकि मैं ससार के अन्य प्रलोभनो मे अपने जीवन को बर्बाद न कर सकू। कवि अपने शरीर पर भस्म लगाने के लिए भी उद्यत है। वह वीतराग होकर साधुओ की भाति ईश्वर का ध्यान करता हुआ त्यागमय जीवन व्यतीत करने का अभिलाषी है। कवि की धारणा है कि जब तक मेरा मन ईश्वर के चरणामृत-सरोवर मे निमग्न नही होगा, जब तक ईश्वर की भक्ति का रस का आनन्द लाभ नहीं होगा तब तक मेरा जीवन आनन्दमय नही हो सकता। इसीलिए ईश्वर-अनुग्रह पाने के लिए वह ईश्वर से प्रार्थना करता है।

विशेष—प्रस्तुत पक्तियो मे कवि के सात्विक भावो के प्रस्फुटन का सकेत है।

कवि ने हृदय की वीणा के तारो को नीरव कहा है। वस्तुत हृदय-वीणा के तारो की झकृति सुनी नही जाती उसके भावों को स्वय कवि अनुभूत कर सकता है। इसीलिए पत जी ने हृदय के तारो का नीरव कहा है।

पत जी ने अन्य भक्त कवियो की भाति ईश्वर के चरणकमल की प्रार्थना कर रहे हैं।

नित्य कर्म-पथ ·· ·········मधु-संचय में।

शब्दार्थ—तत्पर = उद्यत, अन्तर = हृदय, निर्मल = विकारहीन, पर-सेवा = दूसरो की सेवा, मधु-सचय = अमृत का भण्डार, शुभ कर्म।

सन्दर्भ—कवि ईश्वर से प्रार्थना कर रहा है कि ईश्वर उसे ऐसे कार्यों में सलग्न रखे जिससे उसका हृदय विकारहीन हो जाय और स्वार्थ त्याग कर वह दूसरो का भला कर सके—

व्याख्या—कवि ईश्वर से विनय करता है कि भगवन्! मैं कर्तव्य कर्मों से कभी विचलित न होऊ। अपने मार्ग की बाधाओं को सहन करके मैं अपने कर्म-पथ पर आगे बढता रहूं। तू मेरे ऊपर इतना अनुग्रह कर कि मेरा हृदय विकारो से मुक्त हो जाय। जिस प्रकार मधुप पराग का सचय करता है उसी प्रकार मैं भी अपने मधु-सचय मे दूसरों की सेवा का पराग एकत्र करता रहू, दूसरो की सेवा करने से कभी सकोच न करू।

विशेष—इस कविता में जैसे सात्विक भावो का चित्रण हुआ है वे प्रातःकाल की मधुर वेला मे सहज स्वाभाविक हैं।

स्नेह

कथ्य—'स्नेह' कविता मे स्नेह की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कवि ने लिखा है कि मनुष्य की ऐहिक लीला समाप्त हो जाने पर भी मनुष्य के स्नेह-गुण की प्रशसा की जाती है। स्नेह का विस्तार असीम है। वह सभी के साथ उसी प्रकार सयुक्त है जिस प्रकार मनुष्य के साथ हर क्षण सास साथ रहती है। हर्ष और शोक सभी मे स्नेह मनुष्य का साथ नही छोडता। दीपक के बुझ जाने पर भी उसमे चिकनाई तेल की अवशिष्ट रह जाती है उसी प्रकार मनुष्य के मरने के उपरान्त भी उसका स्नेह नही भूला जाता। वायु का आवागमन सर्वत्र संभव है, उसी प्रकार स्नेह की स्थिति है। हर भाव के मूल में उसकी विद्यमानता है।

वाल्यावस्था की प्रसन्नता, स्वच्छन्द हास, यौवन की विकास प्रियता और श्रृंगार-भावना स्नेह का ही परिणाम है। जिस प्रकार मधुप पुष्पो का रस लेने में बेखबर हो जाता है उसी प्रकार युवावस्था मे प्रेमियो का मधुर सबंध भी स्नेह पर आधारित होता है। प्रौढावस्था मे मनुष्य की बुद्धि का विकास होता उसका कारण यह है कि मनुष्य मे ज्ञानार्जन की एव लगन इसी अवस्था मे जागृत होती है। यह ज्ञानार्जन की ललक भी स्नेह है और कुछ नहीं। वृद्धावस्था मे मनुष्य का स्नेह अन्तर्मुखी हो जाता है। वह जीवन भर के ज्ञान और अनुभव को अपने विवेक की तुला पर तोलने लगता है। आत्म-चिंतन की प्रवृत्ति के मूल मे वही स्नेह कार्य करता है। किसी के जन्म के अवसर पर मनाई जाने वाली खुशी एव मृत्यु के अवसर पर बहाये जाने वाले आसुओ का कारण स्नेह है। जिस व्यक्ति से हमे स्नेह नही होता उसकी मृत्यु पर हमे दु ख नही होता इसलिए किसी के मृत्यु पर निकले आंसू स्नेह के ही द्योतक हैं।

स्नेह का अस्तित्व नया नहीं है। इसकी विद्यमानता उसी समय से है जब से वेदो की सर्जना हुई। सुख एव दुःख की अतिशयता का कारण स्नेह है, जो वस्तु स्वय को रुचती नही, भले ही दूसरो के लिए वह प्रसन्नताप्रद हो वह हमे प्रसन्नता नही दे सकती। जिस वस्तु से हमे स्नेह होता है उससे ही हमे हर्ष और शोक होता है। स्नेह के कारण एक इन्द्रिय क्या से क्या कार्य करने लगती है। वाणी से ऐसे बोल उमडने लगते हैं जिन्हे सुनकर यह विश्वास होने लगता है मानो वक्ता यह सब स्वय देखकर वर्णन कर रहा है और यह कह दिया जाता है कि गिरा नयनो का कार्य करने लगती है। किसी स्नेही व्यक्ति को देख कर नेत्रों की जो स्थिति होती है उनसे भाव स्पष्ट आके जा सकते है। नेत्र विना बोले भी मन की बातें कह देते है।

स्नेह युक्त व्यक्ति की दशा ही विचित्र होती है। यद्यपि वह रोता है परन्तु उनके आसुओ से भी हास्य या प्रसन्नता का भाव द्योतित होता रहता है।

जब अतिशय प्रिय व्यक्ति विदेश से आता है तो आंसुओं में झलकने वाले अश्रु क्या वैर प्रकट करते हैं ?

विना स्नेह कवि ससार के अस्तित्व की कल्पना ही नहीं कर सकता। दुखो के बीच सुखो की झलक लाने वाला स्नेह ही है। प्रेम के आवेग से पत्थर हृदय भी पिघल कर अश्रुओं के रूप में विगलित हो उठता है। स्नेह ही वह बन्धन है जिससे दो प्रेमी सम्बद्ध रहते हैं। कवि के अनुसार प्रेम की महिमा अनत है।

दीप के........ ....उर में।

शब्दार्थ—दीप = दीपक, जीवन, विकास = दीपक के निर्वाण के बाद बचा हुआ तेल, मृत्यु के उपरान्त रहने वाली स्मृति, स्नेह = तेल, प्रीति, उर = दीपक, हृदय।

सन्दर्भ—प्रस्तुत पक्तियो मे प्रेम की व्यापकता प्रदर्शित करके कवि ने उसकी महत्ता प्रतिपादित की है।

व्याख्या—दीपक बुझ जाय तो भी उसके अन्दर कुछ तेल की चिकनाई शेष रह जाती है उसी प्रकार मनुष्य मर जाता है फिर भी उसका स्नेह याद रह जाता है। मनुष्य के समाप्त होने पर भी स्नेह समाप्त नही होता। पतजी ने इसीलिए स्नेह को 'दीप का बचा विकास' कहा है। पवन का सर्वत्र प्रवेश संभव है, कोई स्थान वायु से रिक्त नही है उसी प्रकार मनुष्य किसी भी स्थिति में क्यो न हो स्नेह उससे विलग नही होता। चाहे मनुष्य प्रसन्न हो अथवा शोक ग्रस्त हो उसके अन्दर स्नेह विद्यमान रहता ही है। उसकी स्थिति सभी मे वैसी है जैसी हृदय में साम की। विना सास के जीवन का अस्तित्व ही नहीं रह जाता वैसे ही मनुष्य स्नेह बिना मनुष्य नही रह सकता।

विशेष—स्नेह को कवि ने अपरिहार्य माना है। सास के समान स्नेह की विद्यमानता मनुष्य मे सदैव रहती है। मृत्यु आने पर मनुष्य का स्नेह शेष रह जाता, शरीर के नष्ट होने पर भी।

अनिल-सा और सास सा में उपमा अलकार है।

यही तो.......... निश्वास।

शब्दार्थ—हास = हसी, प्रसन्नता, खिले यौवन = पूर्ण जवानी, मधुप = आनन्दमय, प्रौढता = युवावस्था से आगे की स्थिति, तीस और पचास के बीच की अवस्था, विकास = विस्तार, जरा = वृद्धावस्था, अन्तर्नयन = आन्तरिक, प्रकाश = ज्ञान, हुलास = हर्ष, दीर्घनिश्वास = गहरी सास।

सन्दर्भ—प्रत्येक अवस्था के मुख्य विशेषता अथवा प्रवृत्ति के मूल मे स्नेह की शक्ति अन्तर्निहित रहती है।

व्याख्या—बाल्यावस्था जीवन की सबसे अधिक निश्चिन्तता की स्थिति है। बालक का हास्य हास्य के लिए होता है। वह स्वच्छन्द हसी भी कवि के अनुसार स्नेह की प्रेरणा से प्रस्फुटित होती है। कवि के अनुसार बालक जिस

वस्तु को देखकर निर्बाध हसी हसता है उससे वह स्नेह करता है। दूसरे शब्दों मे उसका स्नेह ही हसी का रूप ले लेता है। जब यौवन अपने पूर्ण विकास पर होता है उस दशा मे मनुष्य के अन्दर विद्यमान विलासिता की भावना के पीछे स्नेह कार्य कर रहा होता है। भ्रमर फूलो से मकरन्द पान करने मे तल्लीन होकर जैसे बेखबर रहता है उसी प्रकार पूर्ण यौवनावस्था में विलासिता अथवा शृ गारिकता की भावना से आप्लावित हृदय वाले होकर प्रेमी पारस्परिक स्नेह के कारण सब ओर से बेखबर हो जाते हैं। यौवनावस्था के आगे की अवस्था मे मनुष्य मे विवेक जाग्रत होता है। उसमे ज्ञानार्जन की सहज लगन उदित हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप वह ज्ञान के अर्जन मे सलग्न रहता है और बुद्धि का विकास करता है। वृद्धावस्था मे मनुष्य की इन्द्रिया श्लथ हो जाती हैं। उसमे आन्तरिक दृष्टि विकसित होने लगती है। यह भी स्नेह के कारण होता है। बालक के जन्म दिन पर खुशी मनाई जाती है और किसी की मृत्यु होने पर जो शोक मनाया जाता है उसका मूल कारण भी स्नेह है।

विशेष—जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त जितने भी अवस्था विशेष के प्रमुख कार्य हैं उनका मूल कारण स्नेह है।

हे यह ·· ··· ·· 'श्रवण ।

शब्दार्थ—यह = स्नेह, वैदिकवाद = स्नेह का सिद्धान्त जिसका आरभ वैदिक काल है, उन्माद = पागलपन, नाद = ध्वनि, गिरा = वाणी, सनयन = नेत्रो से युक्त, नीरव = शान्त, श्रवण = कान, सुनना।

सन्दर्भ—प्रस्तुत पक्तियो मे स्नेह की प्राचीनता का रहस्य खोला गया है और कवि ने बताया है कि स्नेह के प्रभाव से एक इन्द्रिय दूसरी इन्द्रिय का कार्य करने लगती है।

व्याख्या—जिस स्नेह का अ त मनुष्य की मृत्यु के उपरान्त भी नही होता जिसकी उपस्थिति जन्म से मृत्यु पर्यन्त हर प्रत्येक मुख्य कार्य के पीछे रहती है, वह स्नेह कोई नवीन वस्तु नहीं है। इसका महत्त्व वेदो के समय से ही है, वेद सबसे प्राचीन ग्र थ हैं इसलिए स्नेह भी बहुत प्राचीन है। मानव अत्यत सुख एव दुख की पराकाष्ठा होने पर पागल हो जाता है वैसे ही स्थिति अत्यन्त प्रेम मे होती है। प्रेम मे सुख-दुख मिले रहते है। अत्यन्त स्नेह की स्थिति मे मनुष्य पागल सा हो जाता है। इसका प्रमुख कार्य एकता पैदा करना है। जिस प्रकार स्नेही व्यक्ति के सुख और दुख के बीच मोटी रेखा नही खीची जा सकती उसी प्रकार प्रेमी के लिए जड चेतन मे विशेष अन्तर नही रह जाता। मनुष्य की इन्द्रिया भी एक दूसरी इन्द्रिय का कार्य करने लगती हैं। वाणी जिसका कार्य बोलना है नेत्रो का कार्य करने लगती है। नेत्र शात भाषण कर लेते हैं स्नेह के प्रभाव से। स्नेहयुक्त व्यक्ति के नेत्रो से वे भाव आके जा सकते है जिन्हे कि साधारण स्थिति मे वाणी ही कह सकती है। स्नेह के प्रभाव से मन कानो तक आ जाता है। स्नेह विह्वल व्यक्ति अपने प्रिय पात्र की बात सुनने का इतना लालायित रहता है

कि वह अपने कानो को सावधानी से सचेत रखता है और प्रतीत होता है मानो कान नही अपितु स्वय मन ही बातें सुनने का कार्य कर रहा हो।

विशेष—'है यह वैदिक वाद' अच्छा कथन नही है। 'विश्व का सुख-दुखमय उन्माद !' कहने का कवि का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार उन्माद हो जाने पर व्यक्ति कभी हसता है और कभी रोने लगता है उसी प्रकार की स्थिति स्नेह विह्वल व्यक्ति की होती है। उसे किस क्षण सुख और किस क्षण दुख का अनुभव होता है वही जानता है अन्य कोई नही। जिस समय कोई पत्नी अपने प्राणप्रिय के बहुत समय बाद दर्शन करती है तो उसके मिलने की पत्नी को प्रसन्नता होती है परन्तु अतिशय स्नेहवश फिर विछोह की आशका उसे कचोटती भी रह सकती है।

एक इन्द्रिय दूसरी इन्द्रिय का भी कार्य करने लगती है। जिस प्रकार पन्त जी कहते हैं 'नयन करते नीरव भाषण' उसी प्रकार विहारी के नायक नायिका भी 'भरे भौन मे करत हैं नैननि ही सौ बात।" तुलसीदास का कथन 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' गिरा और नेत्रो की असमर्थता द्योतित करता है क्योकि देखते तो हैं नेत्र और वर्णन करती है वाणी इसलिए दोनो इन्द्रिया यथातथ्य वर्णन नही कर पाती परन्तु बिहारीलाल जी नेत्रो से बातें भी करवा लेते हैं। और पन्त जी भी गिरा से नेत्रो का नेत्रो से वाणी का कार्य करवा लेते हैं यह सब स्नेह का जादू है।

अश्रुओ में हाहाकार।

शब्दार्थ—भास=आभास, झलक, उच्छ्वास=ऊपर छोडी या खीची जाने वाली श्वास, आह भरना, दारुण=दुःख मय, उग्र, हाहाकार=शोकपूर्ण स्थिति झकार=स्नेह रूपी झकार।

सन्दर्भ—स्नेह के कारण व्यक्ति की दशा बडी विचित्र हो जाती है, स्नेह के कारण ही जीवन जीवन है।

व्याख्या—प्रेम मे व्यक्ति की स्थिति उन्मादग्रस्त व्यक्ति की सी होती है, किसी स्नेह-पात्र-से मिलकर प्रेमाश्रु आखो मे झलक आते हैं और उसके मिलने की प्रसन्नता भी होती है। इस प्रकार प्रेमी एक साथ अश्रु और प्रसन्नता दोनो को प्राप्त करता है। सयोग जनित प्रसन्नता की स्थिति मे विछोह की चिन्ता से आंखें गीली भी हो जाती हैं, इस प्रकार हास्य और रुदन की सीमायें एक दूसरी को छूती रहती है, उसकी सासो मे लम्बी आहें भी मिली रहती हैं। विछोह की चिन्ता से हृदय आहे भर उठता है। विछोह की चिन्ता के साथ मिलन की आशा धैर्य बधाये रखती है। अभिप्राय यह है कि स्नेह मे सुख-दुख मिले जुले रहते हैं।

स्नेह ही से जीवन-जीवन है। सभी जीवो मे स्नेह की झकार व्याप्त है। यदि जीवो मे स्नेह न विद्यमान होता तो ससार मे दारुण हाहाकार मच जाता। स्नेह के कारण दुख के बाद सुख प्राप्ति की अथवा विछोह के बाद मिलन की आशा मे जीवन-चक्र चलता रहता है। बिना स्नेह के ससार मे दुख, शोक और उग्र कष्टप्रद भावो का साम्राज्य हो जाता।

विशेष—अपने प्रिय पात्र के मिलन पर स्नेह से गदगद होकर आखो मे अश्रु झलक उठते है परन्तु आसूओ का कारण प्रसन्नता ही होती है। मिलन की प्रसन्नता के समय विछोह की चिन्ता मे हृदय दुख का अनुभव भी कर सकता है। घनानन्द की नायिका अपने प्रिय से मिलते समय भी भावी विछोह की आशका मे दुःख से मुक्ति नही पाती वहा तो "मिलत हू में मारे डारै खरक विछोह की।"

मुरली के-से ....चमकीले।

शब्दार्थ—छिद्र = छेद, दोष, अगणित = असख्य।

सन्दर्भ—प्रस्तुत पक्तियो में कवि स्नेह की तुलना मुरली के छिद्रों से करता हुआ कहता है—

व्याख्या—मुरली में यद्यपि अनेक छिद्र होते हैं जिनके कारण वह निरर्थक कही जा सकती थी परन्तु इन्ही के कारण उससे मधुर ध्वनि निस्सृत होती है। इसी प्रकार स्नेही जनो मे पारस्परिक सबधो मे कभी-कभी कुछ दोष आ जाते हैं। स्नेह की भूलो का तारो की चमक के समान आकर्षण होता है।

विशेष:—मूर्त वशी के छिद्रों से अमूर्त स्नेह की तुलना की गयी है। उपमा अलकार है। छिद्र मे श्लेष है।

अचल ... ... कोमल।

शब्दार्थ—अचल=स्थिर, अविचल = अचल, स्थिर पाहन = पत्थर, कुलिश = वज्र, कठोर वस्तु।

सन्दर्भ:—स्नेह के प्रभाव से व्यक्ति में किस प्रकार परिवर्तन हो जाता है, यही इन पक्तियों मे चित्रित किया गया है।

व्याख्या—प्रेम की शक्ति असीम है। जो स्थिर हैं, जड हैं वे भी चचल हो उठते हैं। चचल प्रवृति वाले व्यक्ति गम्भीर हो जाते हैं। जड पदार्थ चेतन बन जाते हैं। पत्थर का हृदय भी द्रवित हो उठता है। कठोरता का स्थान कोमलता ग्रहण कर लेती है। कवि का अभिप्राय यह है कि स्नेह के प्रभाव से असभव कार्य भी सभव हो जाता है। कठोर से कठोर हृदय व्यक्ति में अपार परिवर्तन केवल स्नेह के द्वारा पैदा किया जा सकता है और अन्य साधन से नही।

विशेष—१ पत के सम्बध मे प्रायः कहा जाता है कि वे शब्दशिल्पी हैं। ये पक्तिया इसी लक्ष्य को प्रमाणित करती हैं तभी तो 'अचल' और 'चपल' के साथ 'अविचल' और 'चचल' की रगत ने भाव माधुरी को पर्याप्त विकास दिया है।

२ प्रणय के सदर्भ से लिखी गई ये पक्तिया तथ्योदघाटन के साथ-साथ भावोद्घाटन भी करती चलती हैं। प्रेम की आग मे तपकर कठोर हृदय भी मोम से पिघल जाते हैं।

चढ़ाता भी है · ··· · ·पास। (पृष्ठ ८)

शब्दार्थ·—गुण = रस्सा, श्लेपार्थ से अच्छाई भी अर्थ किया जा सकता है, चढाता है = प्रशसा के अर्थ मे प्रयुक्त है।

संदर्भ:—कविवर पत की इन पक्तियो मे प्रेम के गौरव का बखान किया गया है। वे कहते हैं कि प्रणय-बधन में बधा प्रणयी अनेक चिन्ताओं और विवशताओं को सहता हुआ भी लक्ष्य से मुख नही मोडता है। कवि का कथन है—

व्याख्या —मानव की सहज जिज्ञासा होती है कि वह उच्चतम शिखर स्थित वस्तु को हस्तगत करे। कारण है कि प्रत्येक आकाक्षा की पृष्ठभूमि आकर्षण मे तैयार होती है। सामान्य तथ्य है कि हम किसी व्यक्ति मे गुण देखकर उसकी ओर ललकते हैं—यह ललकना ही प्रणयजन्य आकर्षण है। पतग को ही ले लीजिए वह उडते समय कितनी भी ऊँची क्यो न चली जाय किन्तु अन्तत: वह उडाने वाले के हाथ मे ही रहती है—मानो उसके करावलम्बन के बिना पतग का कोई अस्तित्व ही न हो। इसी प्रक्रिया मे प्रिय या प्रणयी की स्थिति होती है। वह चाहे कितना ही गौरव सम्पन्न हो जाय, प्रेमी के लिए कोई अन्तर उपस्थित नही करता है। कारण प्रणयी और प्रेमिका के सम्बन्ध को उनके गुण वैसे ही जोडे रहते है जैसे की पतग उडाने वाले और पतग का गुण—रस्सी जोडे रहती है। रस्सी के सम्बन्ध से जैसे पतग और उसका उडाने वाला विलग नहीं है वैसे ही गुणो के सदर्भ से प्रेमी और प्रेमिका भी विविध और उच्चतम स्थितियो मे भी जुडे रहते हैं। चकई को ही लीजिए वह कितनी ही दूर क्यो न फेंकी जावे, तुरन्त व्यक्ति के समीप खिच आती है। इसी प्रकार यदि दो प्रेमी दूरीकरण की प्रक्रिया मे पड जावें तो भी उनके पारस्परिक गुण उन्हे पास और पास खीच लेते हैं।

विशेष:—१ मन को पतग अनेक बार कहा गया है। इसे पतजी की नवीनता नही कहा जा सकता है। गुण शब्द मे श्लेप का गौरव सन्निहित है।

२ चकंह का अर्थ चक्रवाक मान कर भी अर्थ किया जा सकता है। स्नेह ही दोनो प्रेमियो के सदर्भ मे विशिष्टता रखता है।

'उच्छ्वास' की बालिका

कथ्य—'उच्छ्वास' नामक एक कविता के इस अंश मे कवि ने बालिका से किये प्रेम के बदले प्राप्त नैराश्य का चित्रण किया है। उसे पुरानी स्मृति बार-बार कचोटती है। पुन पुनः आने वाली स्मृति के परिणाम स्वरूप उसकी उच्छ्वासें चलने लगती हैं। उच्छ्वास को सम्बोधित करके कवि कहता है कि शैशव, यौवन और बुढापे मे भावनाओं का स्वरूप भिन्न-भिन्न होता है। जीवन की तीन अवस्थाओ मे से शैशव अवस्था मे किया गया प्रेम ही पावन, निश्छल होता है। पत जी ने जिस बालिका से स्नेह किया था उसकी अवस्था भी यही थी। पत को शैशवास्था का प्रेम रुचिकर लगा है। वह बालिका कैसी थी, यही कवि ने इस कविता में बतलाया है।

जिस बालिका से पत जी ने स्नेह किया था, वह इतनी भोली और निश्छल मन की थी कि ऐसा प्रतीत होता था जैसे सरलता ने ही मन का रूप धारण कर लिया हो। उसे अपने शरीर के सौंदर्य की वृद्धि के लिए आभूषणो की आवश्यकता नही थी अपितु उसके लिए प्रकृति से प्रदत्त लावण्य ही पर्याप्त था। उसके नेत्र कानो तक विस्तृत थे। उसका कठ बडा सुरीला था। उसके सहज कान्ति से युक्त होठो से निस्सरित सगीत बडा ही आकर्षक था। उसके होठो पर इठलाती मन्द मुस्कान के समान उसकी वाणी भी कुछ-कुछ अस्फुट हुआ करती थी। उसकी अपरिपक्व भावनायें ओस युक्त अधखिले कुसुम सी सुन्दर लगती थी। उस बालिका के कार्य-व्यापार सीमित थे। जिस प्रकार एक लहर तटो से इधर-उधर टकराती है उसी प्रकार उस बालिका की अवस्था शैशव और यौवन के तटों से टकराया करती थी अर्थात् शैशवास्था को पार करके युवावस्था के द्वार की ओर अग्रसर हो रही थी।

बालिका की सरलता से कवि का हृदय अत्यन्त प्रभावित था। कवि ने इसलिए उसे रिझाने के लिए मीठे गीत सुनाए। कवि ने उससे कल्पना की कल्पलता कहकर आत्मीयता बढाने का प्रयत्न करता था। कवि का तो यहा तक कथन है कि मैं उस बालिका के कारण ही कवि बना हू क्योकि उसके बारे मे अनेक विध कल्पनायें करते-करते मेरा मन नित नवीन भावनाओ से भर जाता था। होठो पर छाई रहने वाली हसी के समान मैं सदैव उसका सान्निध्य पाने के लिए उपक्रम करता रहता था। उसमे कुछ ऐसा आकर्षण था जो मुझे उसकी ओर खीचता ही गया।

हृदय के ····
····बालिका थी वह भी।

शब्दार्थ—सुरभित=सुगध युक्त। हृदय के सुरभित सास=वह सास जिसमे हृदय के भरे हुए प्रेम की सुगध हो। जरा=वृद्धावस्था। सुखद=सुखप्रद। रमणीय=रमण करने योग्य। कमनीय=सुन्दर, चाहने योग्य। वह=जिससे कवि ने स्नेह किया था।

सन्दर्भ—'उच्छ्वास' नामक लम्बी कविता की इन पक्तियों मे कवि बालिका के वियोग मे निस्सृत उच्छ्वासो को सम्बोधन करके जीवन की तीन अवस्थाओ मे से शैशव को ही स्नेह के लिए उत्तम अवस्था बतलाता हुआ कहता है—

अरी सास ! किसी स्नेह-पात्र की हृदय मे विद्यमान स्मृति के स्पर्श से तू बडी सुन्दर लगती है । तेरे अन्दर स्मृति की सुगन्ध रहने मे तुझ से मुक्ति भी नहीं मिल सकती । आगे कवि उच्छ्वास को सम्बोधित करके कहता है कि जीवन की तीन अवस्थाओ मे से वृद्धावस्था आदर की वस्तु है । वृद्ध सम्माननीय होता है स्नेह का पात्र नही । युवावस्था मे विलास-प्रवृत्ति प्रमुख होती है । युवावस्था सुखमय और रमणीय होती है, परन्तु शैशवावस्था का निश्छल प्रेम उसमे नही होता । वासना की अन्ध स्नेह मे कलंक का धब्बा बन जाती है । युवावस्था की प्रीति का आधार कामुकता होती है जबकि शैशव का स्नेह पावन और निष्कलुष होता है । यथार्थ स्नेह की अवस्था शैशवावस्था ही है । युवावस्था की विलास-प्रवृत्ति और वृद्धावस्था की आदर-भावना शैशवावस्था मे नही होती । पत ने जिससे स्नेह किया था वह बालिका ही थी ।

सरलपन .... अवसित । (पृ० ६)

शब्दार्थ—उसका = बालिका जिससे कवि को स्नेह था । निरालापन = बाकापन, लावण्य । अजान = भोलीभाली । लचका गान = ऐसा गान जो कम्पित स्वर में गाया गया हो । विकच = खिला हुआ, विकसित । उपमान = वह वस्तु जिससे किसी की तुलना की जाती है, इसका उल्टा उपमेय होता है । प्रमुदित = प्रसन्न । अवसित = समाप्त ।

सन्दर्भ—पत जी को शैशव ही स्नेह की वस्तु प्रतीत होती है । जिससे पत जी को स्नेह था वह बालिका थी । उसी बालिका का वर्णन प्रस्तुत पक्तियो मे किया गया है ।

व्याख्या—वह बालिका कृत्रिमता से दूर इतनी भोली भाली थी कि ऐसा प्रतीत होता था जैसे सरलता ने ही उसके मन का रूप धारण कर लिया हो । उसका शरीर प्रकृति-प्रदत्त लावण्य से युक्त था । उसे कृत्रिम आभूषणो से सजाने की आवश्यकता न थी । सुन्दर रूप के अपेक्षित गुण उसमे विद्यमान थे । उसके नेत्र इतने आयत थे कि कानो को उनके कोने छूते थे । उसके कान्तियुक्त कोमल होठों से जो अस्फुट, कम्पित स्वर से युक्त सगीत निस्सृत होता था वह उसके होठों का उपमान उचित ही था । क्योंकि जैसे उसके सहज कान्तियुक्त होठ थे उसी प्रकार उनसे निस्सृत सगीत सहज स्वर से युक्त और लचीला होता था जो मन को खीच लेता था । उसका शरीर सहज सौंदर्य से युक्त था । उसके होठो पर इठलाती मुसकान ऐसी प्रतीत होती थी जैसे वह छाप दी गई हो अथवा उसका प्रिय ही मुसकान के रूप मे उसके होठो मे छिपा हो । उसके होठो पर मुसकान उसी प्रकार सदैव विद्यमान रहती थी जिस प्रकार सखिया साथ रहती हैं । उसकी मद मुस्कान ऐसी प्रतीत होती थी वह वाणी से मान करती हो । तात्पर्य यह है कि उसकी मुस्कान मद और वाणी अस्फुट थी । उसकी रगीन भावनायें उन रगीन अधखिले फूलो के समान थी जिन पर

ओस की बूंदें प्रात काल शोभित होती हैं। भाव प्रस्फुटित न होने के कारण वह शैशव और युवावस्था के बीच की अवस्था वाली उसी प्रकार जान पडती थी जिस प्रकार नदी के कूलो के बीच तरग इधर-से उधर-टकराती क्रीडा करती है। यही उसके ससार की सीमा थी। उसकी भावनाओं की सीमा यही थी। अर्थात् उसकी भावनायें कुछ प्रस्फुटित कुछ अप्रस्फुटित होती थी। उसकी क्रीडायें कवि को अपार आनन्द प्रदान करती थीं।

विशेष—पत जी का भाषा पर अप्रतिम अधिकार है। एक एक शब्द से बालिका के गुणो का चित्र यहा खीचा गया है। भाषा का भावानुकूल प्रयोग दर्शनीय है।

'अजान नयन' से अभिप्राय ऐसे नेत्रो से है जिनमे छल आदि का कालुष्य न हो। पत जी ने अपने शब्द तो गढे ही हैं साथ ही अ ग्रेजी से अनुवादित शब्द भी अनेक दिये है। 'अजान नयन' अ ग्रे जी के 'इन्नोसेंट आई' का अनुवाद है। 'अजान' शब्द का भोलापन इसे ही व्यक्त हो सकता है।

बालिका के सहज सौंदर्य पूर्ण शरीर के लिए पत जी ने 'सहज सजा सजीला' कहा है। कालिदास ने भी एक स्थान पर कहा है कि निसर्ग सुन्दर शरीर के लिए आभूषणो की अपेक्षा नही होती। सुन्दर आकृति वालो के लिए कौनसी वस्तु मण्डल नही वन जाती—

"किमिव हि मधुराणा मण्डन नाकृतीमाम"

बालिका की एक एक सूक्ष्म क्रिया, भाव-भगिमा को कवि ने देखा है और अनुरूप भाषा मे चित्रित कर दिया है। कोमल शरीर वाले बालक गाते समय देर तक सास नही चला सकते। उनका सास का क्रम जल्दी भग हो जाता है। उस बालिका के लिए भी कवि ने 'अधूरा लचका गान' कहा है।—

बालिका उस अवस्था की थी जिसे वय सधि कहते हैं। वह न तो निरी शिशु थी और न युवती वरन् उसके शैशव ने युवाथस्था की देहरी देखी भर थी। उसमें दोनो की कुछ विशेषताए थी, तरग सी, ' हपी-सी, पी-सी आदि अनेक शब्दो मे उपमाए हैं।

उसके ·· ····· आया।

शब्दार्थ—उसके = अर्थात् बालिका के, उकसाया = प्रेरित किया, आकर्षित किया, कल = सुन्दर, नवल = नवीन।

सन्दर्भ—उस सहज सुन्दर बालिका का मोहक प्रभाव कवि पर पडा और कवि उसे अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास करता हुआ बाला के समीपतर होता गया।

व्याख्या—वह बालिका बडी सरल, निश्छल और भोलीभाली थी। जैसा उसका लावण्य था वैसा ही उसमे सारल्य था। कवि का हृदय बालिका मे अत्यन्त अनुरक्त था। उसे अपनी ओर आकर्षित करने के लिए मधुर गीत गा-गाकर कवि ने अपने प्रति उसके हृदय में स्नेह जाग्रत किया था। कल्पना के द्वारा सुन्दर से सुन्दर रूप का भी साक्षात्कार किया जा सकता था। बाला भी अत्यन्त सुन्दर थी इसीलिए कवि ने उसे कल्पना की कल्पलता जैसे विशे-

पणो से सम्बोधित किया था। कवि का कथन है कि मेरा मन उसके बारे में कल्पना करने पर नई-नई भावनाओ से भर जाता था।

कवि उसके पास उसी प्रकार बना रहता था जिस प्रकार मुस्कान होठो पर छाई रहती है। उसकी आनन्दमग्न करने वाली सुगन्ध का क्या कहना ? उसके प्रभाव के जादू से मुग्ध होकर दिन-पर-दिन उसके और समीप खिचता गया।

विशेष—प्रातः काल खिले हुए पुष्पो के सौंदर्य से भ्रमर अपने आपको रोक न पाकर उनसे मधु पान करने मण्डराया करता है उसी प्रकार पंत जी उसके शरीर की सुगन्ध से मस्त होकर उसके रक्तिम होठो का चुम्बन लिया करते थे।

प्रतिदिन समीप खिच आया' से यह व्यजित होता है कि कवि उस बालिका से आत्मीयता बढाने के लिए बहुत समय से प्रयत्न करता रहा था और बाद मे अपने प्रयत्नो मे पर्याप्त सफलता प्राप्त कर ली थी।

'हास-सा' मे उपमा अलकार है। 'मैं' पंत जी के लिए प्रयुक्त है, इस मूर्त की तुलना अमूर्त हास से की गई है।

आंसू की बालिका

कथ्य—प्रस्तुत कविता 'आसू' शीर्षक लम्बी कविता का अश है। इसका तारतम्य पिछली 'उच्छ्वास' की बालिका रचना से है। पत जी की बालिका सम्बन्धी कवितायें पढ कर ऐसा प्रतीत होता है कि कवि का किसी बालिका से स्नेह हो गया था अन्यथा उनके प्रणय ग्रन्थ 'ग्रन्थि' के प्रेम वर्णन मे इतनी गम्भीरता कदाचित न आ पाती कवि बालिका को सम्बोधित करके कह रहा है कि तुम अनुपम हो। वीणा की मृदु झकार हृदय को तन्मय बना देती है पर क्या उस झकार का वर्णन किया जा सकता है ? उसी प्रकार तुम्हारा प्राकृत लावण्य भी देख कर अनुभव करने की वस्तु है उसका शब्दों द्वारा वर्णन नही किया जा सकता। तुम्हारा रूप विलक्षण है। दर्पण उसके रहस्य को दिखा सके यह सभव नहीं है। तुम्हारे सानिध्य का सुख और भी वर्णनातीत था। यही कहा जा सकता है कि तुम्हे छूने पर मेरे अन्दर नये प्राण आ जाते थे। जब कभी तुम्हारे साथ रहता तो ऐसी शीतलता ऐसा आनन्द मिलता था जैसे गगा के पावन स्नान से मिलता है। तुम्हारे कठ मे निस्तृत मधुर ध्वनि मे त्रिवेणी के सगम पर लहरो के टकराने से उत्थित ध्वनि का आभास होता था। तुम्हारे चितवन से वैसी ही स्फूर्ति मिलती थी जैसी ऊषा की मनोहर वेला मे प्राप्त होती है। औषधि के प्रभाव से रोग उपशमित होता है वैसे ही तुम्हारी सासो का स्पर्श मेरे लिए उपचार का कार्य करता था। तुम्हारा सानिध्य मेरे को उसी प्रकार शाति और निश्चिन्तता प्रदान करता था जैसे धूप से पीडित व्यक्ति को वृक्ष अपनी शीतल छाया प्रदान करता है।

तुम्हारा हास्य शैशवोचित व सरल था। तुम्हारी आखें तो प्रेम का ही साकार रूप थी। उनमे छल आदि दुर्गुणों का स्पर्श भी नही था। तुम्हारे स्वच्छ हृदय के भावो की मधुरिमा तुम्हारे कपोलों पर झलकती थी। अल्हड अवस्था होने के कारण बालिका के नेत्रो मे सकोच था इसीलिए उसके सकेत बडे शिष्ट थे। स्पष्ट कहने की अपेक्षा उसे दुराव रुचिकर था। उसका हृदय उषा का ही प्रतिरूप था। रागरजित उषा सा उसका हृदय कोमल भावो का आवास था। तुम्हारा स्वभाव उग्र न होकर ज्योत्स्ना-सी शीतलता उत्पन्न करने वाला था।

बालिका सौन्दर्य अपार था। सौन्दर्य-सागर को एक बूद मे सीमित कर दिया जाय तो उस बूद का जो असीम सौन्दर्य होगा वैसा तुम्हारा सौन्दर्य था। सारा सगीत तो जैसे तुम्हारे एक-एक स्वर मे समाया हुआ था। तुम्हारे शरीर की स्वर्णिम कान्ति का तो क्या कहना ? वह ऐसी थी जैसे निखिल वसन्त एक कली में प्रस्फुटित हो गया हो। तुम स्वर्ग की सम्पूर्ण शोभा की साकार प्रतिमा थी।

ऐसी अनुपम बालिका जिसका रूप व गुण वर्णनातीत हो यदि

एक बार प्राप्त होकर विलग हो जाय तो वियुक्त प्रेमी की स्थिति की कल्पना सहज ही की जा सकती है। पर विमुक्त होकर उसकी स्मृति को नही छोड पाये और अब अपने भावो से उसका सौन्दर्य प्रसाधन कर पूजा करने लगे। जिस बालिका को कवि देखता ही नही था छूता था, सदा जिसके पास रह कर पावन गगा-स्नान का पुण्य प्राप्त करता रहा था उसे ही वियोगावस्था मे वह पलको के अन्दर प्रतिष्ठित कर उसके रूप का पान करता है। उस बाला के स्नेह मे विह्वल होकर कवि के दृगो से अश्रु धारा उमड पडती है। कितनी छटपटाहट होगी बेचारे भावुक कवि को। बच्चे जिस प्रकार सरक्षक की याद में विकल होकर रूदन करते है वैसी ही कवि की स्थिति हो गई थी। कवि बच्चो का सा मान करता है, पर सब निष्फल। यहा अब है कौन जिस पर इसकी प्रतिक्रिया हो ?

निराश और असहाय कवि अपने हृदय को ही समझाने लगता है कि अरे हृदय ! तू प्रिया के ध्यान को पलको मे बन्द कर ले। वह किसी प्रकार मिल नही सकती। तेरा रोना-कलपना व्यर्थ है। उसकी पूर्ति भी किसी दूसरे के द्वारा नहीं हो सकती। उसके रिक्त स्थान की पूर्ति त्रिभुवन का ऐश्वर्य भी नही कर सकता। मेरे हृदय तेरे द्वारा अब तक बहाये हुए आसू सुमनो मे वास करेंगे वृथा नही जायेंगे। सहृदयजन तेरी तडफ का अनुभव कर उसे अपने हृदय मे सजो कर रख लेंगे। फूलो पर मडराने वाली मधुप बालायें उन आसूओं की करुण कथा का गुञ्जन करेंगी।

कवि ने प्रस्तुत कविता मे बालिका के सौन्दर्य और उसके सानिध्य से मिलने वाले परम आनन्द का चित्रण किया है। वह बालिका जब कवि से दूर चली गई तो उसके विछोह से उत्पन्न अपनी करुणा स्थिति को बडे ही करुण स्वर मे यहा व्यक्त किया है।

एक वीणा ... ... आभार !

शब्दार्थ—दर्पण = शीशा, आइना, त्रिवेणी = गगा, यमुना और सरस्वती का सगम स्थल, सुधामय = अमृत से युक्त, अमृत सा आनन्द प्रदान करने वाली, उपचार = इलाज, औषधि, आभार = एहसान, अपरिचित = जिससे कोई परिचय न हो।

सन्दर्भ—कवि बालिका के सौंदर्य का चित्रण कर रहा है। उसकी वाणी, उसकी चितवन और उसकी चेष्टाओ आदि की विशेषताओ का यहा वर्णन किया गया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि हे बालिके ! जिस प्रकार वीणा की झंकार बडी ही मनोहर होती है, जो अनुभव की जाती है परन्तु शब्दों के द्वारा बताई नही जा सकती उसी प्रकार तुम्हारी सुन्दरता देखने और अनुभव करने की वस्तु है। उसका कोई पार नही है। शब्दो द्वारा उसे समझाया नही जा सकता। कोई ऐसा दर्पण भी नही है जिसमे तुम्हारा रूप ज्यो का त्यो दिखाया जा सके क्योंकि शब्दो द्वारा वर्णन करने की अपेक्षा दर्पण मे ज्यो की त्यो कोई वस्तु दिखाई जा सकती है परन्तु तुम्हारा रूप तो उसमे भी नही दिखाया जा सकता। मुझे जब तुम्हारा सान्निध्य प्राप्त था और जब कभी मैं

तुम्हे छू लेता था तो ऐसा लगता था जैसे मेरे अन्दर फिर से प्राण लौट आये हों। तुम्हारे साथ रहकर मुझे वैसी पावन अनुभूति, शीतलता और आनन्द प्राप्त होता था जिस तरह गंगा में स्नान करने पर प्राप्त होता है। गंगा यमुना और सरस्वती के संगम पर लहरों की कलकल-छलछल में जो गान सुनाई पड़ता है, हे कल्याणि! वैसा ही गान तुम्हारी वाणी से निस्सृत होता था। तुम्हारी चितवन ऐसी नव स्फूर्ति देने वाली थी जैसी प्रातःकाल की मधुर वेला रात्रि के आलस्य को दूर करके नई स्फूर्ति नई शक्ति प्रदान करती है। तुम्हारी सुरभित सांसो का स्पर्श मेरी चिन्ताओं के लिए अमृत का सा गुण रखने वाली औषधि का कार्य करता था। मुझे तुम्हारी छाया तुम्हारी उपस्थिति वैसी ही शान्ति और सन्तोष प्रदान करती थी जिस प्रकार आतप से पीड़ित व्यक्ति वृक्ष की छाया के नीचे पहुंच कर शान्ति अनुभव करता है। तुम्हारी चेष्टाओं और क्रिया-व्यापारों को देखकर तो मैं अपने को बड़ा आभारी समझता था। जिस प्रकार महान् व्यक्ति के दो शब्द सुन कर साधारण व्यक्ति अपने को धन्य समझता है वैसे ही तुम्हारी चेष्टाओं को देखकर ही मै तो स्वयं को तुम्हारा आभारी समझता था, क्योंकि वे चेष्टायें बड़ी आनन्दप्रद लगती थी।

विशेष—प्रस्तुत पंक्तियों मे कवि की बालिका के प्रति अत्यन्त अनुरक्ति तो प्रकट होती है परंतु इस अनुरक्ति मे कालुष्य नही है। बालिका से कवि का स्नेह गंगाजल के समान पवित्र है।

करुण ... सांस।

शब्दार्थ—आकार = स्वरूप, मूर्तरूप, कपोल = गाल, श्रवण = कान, दुराव = छिपाव। आवास = निवास। मुकुल = कली, भास = चमक, दीप्ति।

सन्दर्भ—कवि ने प्रस्तुत पंक्तियों में बालिका के पृथक-पृथक अंगों मे प्रकृति की सुन्दर वस्तुओं को देखा है।

व्याख्या—कवि को उनकी करुणा प्रकट करने वाली भौंहो मे आकाश दिखाई देता था। तुम्हारी हंसी मे बच्चो का सा सारल्य था, स्वच्छंदता थी। तुम्हारी आंखों से स्नेह व्यंजित होता था, उग्रता नही और मुझे तो ऐसा लगता था कि प्रेम ने ही आंखों का आकार धारण कर लिया था।

तुम्हारे हृदय के मृदुल भावो का प्रतिबिम्ब तुम्हारे कपालो पर स्पष्ट झलकता था। भावो के अनुरूप ही चेहरे की स्थिति बदलती रहती है। कोमल भावों के अनुरूप चेहरा सौम्य दीखता है। तुम्हारे कान और नेत्रो का व्यवहार उचित था। क्रोध की स्थिति में व्यक्ति आवेश मे आकर दूसरो की बात पर ध्यान ही नही देता परन्तु तुम नेत्रो से देख कर भी दूसरो के कथन पर भी ध्यान देती थी। तुमने मेरी प्रत्येक बात को सुना और मेरी ओर नेत्रो से देखा भी। बालिका की अवस्था अधिक नही थी, उसमें बच्चों का सा सहज संकोच था इसलिए वह जो संकेत करती थी उन्हें बड़े संकोच के साथ करती थी। उसके संकेत ऐसे नही थे जैसे परिपक्व अवस्था वाले व्यक्तियो के होते है जिनमे संकोच बहुत कुछ समाप्त हो चुका होता है। तुम्हारे होठ तो मृदुल थे ही

उनमे दुराव की प्रवृत्ति अधिक थी। जिस बात को तुम कहना चाहती थी उसे भी सकोचवश अपने होठो से उच्चरित नही कर पाती थी। तुम्हारा हृदय तो जैसे उषा का निवास स्थल था क्योकि उषा का वातावरण शान्त और सात्विक भावो को उद्बुद्ध करने वाला होता है उसी प्रकार तुम्हारा हृदय भी निष्कलुष और उदार भावनाओ से आपूर्ण था। तुम्हारा नव-प्रस्फुटित मृदुल मुख कली का ही विकास प्रतीत होता था। कली अत्यन्त आकर्षक होती है, मुरझाता फूल नही। तुम्हारा चेहरा भी कली-सा आकर्षक था। तुम्हारा स्वभाव चादनी के समान था। चादनी शुभ्र शीतल और मोहक होती है उसी प्रकार तुम्हारा स्वभाव था। बच्चो के सासो के समान जल्दी-जल्दी आने वाले और सरल तुम्हारे विचार थे।

विशेष—प्रकृति के सुकुमार कवि ने बालिका के विभिन्न अंगो का सौन्दर्य व्यक्त करने के लिए प्रकृति से ही अनक वस्तुओ को चुना है।

बच्चो मे जो गुण जो प्रवृत्तिया पाई जाती हैं वे अकृत्रिम होने के कारण अधिक मनोज्ञ लगती हैं। इसीलिए बालिका के गुणो से अवगत कराने के लिए कवि ने बालको के गुणो को लाकर हमारे सामने स्पष्ट कर दिया है।

कवि ने बालिका के अंगो का पृथक् पृथक् वर्णन किया है परन्तु यह वर्णन रीतिकालीन नख-शिख वर्णन से नितात भिन्न है।

बिन्दु में थी पुनीत।

शब्दार्थ—सिधु अनत=सीमा रहित समुद्र, अखिल=समस्त, धरा=पृथ्वी, जो सबको धारण करती है। पुनीत=पवित्र।

सन्दर्भ—कवि बालिका के सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ कहता है—सौंदर्य के अपार सागर को एक बूद मे सीमित कर दिया जाय उसका जैसा सौंदर्य होगा वैसी ही तुम प्रतीत होती थीं, ऐसा अप्रतिम तुम्हारा सौन्दर्य था। तुम्हारा कठ सुरीला था, जिसे सुनकर ऐसा लगता था कि समस्त सगीत तुम्हारे एक स्वर मे पुंजीभूत कर दिया गया हो। सम्पूर्ण वसन्त अपनी निखिल शोभा को लेकर एक कली मे यदि समा जाय उसकी जैसी शोभा होगी वैसी ही तुम्हारी शोभा थी। तुम्हारे लावण्य के बारे मे यही कहा जा सकता है कि पृथ्वी पर तुम स्वर्ग की समस्त सुषमा लेकर अवतरित हुई थी।

विशेष—प्रकृति की सुन्दरतम वस्तुओं का एकत्रीकृत रूप बालिका के एक-एक अंग को सवारने वाला बताकर कवि ने कमाल कर दिया है। बालिका को धरती पर चलता-फिरता स्वर्ग बताकर धरती के गौरव की भी अभिवृद्धि हो गई है।

प्रस्तुत पंक्तियो मे अनुप्रास और उल्लेख अलकार हैं।

विधुर उर मान!

शब्दार्थ—विधुर=दुखी, वियोगी, अभावग्रस्त, दृगद्वार=नेत्ररूपी द्वार अथवा पलकें, पिघल पडते हैं=द्रवित हो उठते है, बहने लगते है, दृगजल=अश्रु, मान करना=रूठ जाना, अनजान=अबोध।

सन्दर्भ—ऊपर अभी कवि ने बालिका के सौंदर्य का चित्रण किया है। प्रस्तुत पंक्तियों मे कवि बालिका के विछोह से उत्पन्न अपनी स्थिति पर प्रकाश डालता हुआ कहता है—

व्याख्या—हे कुमारी ! तुम से-वियुक्त होकर भी मैं तुम्हें कैसे भूल सकता हू ? तुम्हारे विछोह के कारण दुखी अपने हृदय मे उठने वाले मृदुल भावो से तुम्हे सजाकर मै तुम्हारी सदा अर्चना किया करता हूं। अपने नेत्रो के पलको को बन्द करके उनके भीतर तुम्हारी प्रतिमा प्रतिष्ठित करके मै तुम्हारे सौंदर्य को निहारने मे तल्लीन हो जाता हू, मै उस समय यह भूल जाता हू कि मैं साक्षात् तुम्हें देख रहा हू अथवा कल्पना से सवारी हुई तुम्हारी प्रतिमा को। इसीलिए तुम्हारे ध्यान मे मुझे अतीव आनन्द मिलता है। परन्तु तुम्हारे वियोग का ध्यान आते ही हृदय टूटने लगता है, नेत्रो के मार्ग से जैसे मेरे प्राण ही बाहर निकल आते हैं। अश्रु धारा उमडने लगती है। मुझे तुम्हारे अभाव मे कितनी वेदना होती है, यह और कोई नही जानता। उस व्यथा के कारण मै अपना विवेक भूलकर तुम्हे याद करके अबोध बालको की तरह रोने लगता हू। यद्यपि वहा पर मेरे रुदन पर सहानुभूति प्रकट करने वाला कोई नही होता फिर भी मै मान करने लगता हू।

विशेष—पत जी का बालिका के प्रति प्रेम असीम है और निष्कलुश है। बालिका से विछोह होने पर कवि उसकी प्रतिमा को पलको मे प्रतिष्ठित कर उसकी पूजा करता है उसी प्रकार जिस प्रकार एक भक्त भगवान का बन्द नेत्रो से ध्यान करता है।

पत जी का बालक की तरह मान करना उनके बाल-मनोविज्ञान के अच्छे परिचय का सूचक है।

मूल ·······   ·······सर्वदा।

शब्दार्थ—आह्वान=बुलावा, निमंत्रण, त्रिभुवन=तीनो लोक, पृथ्वी, पाताल एव स्वर्ग, श्री=वैभव, लक्ष्मी, प्रेयसी=प्रियतमा, बालिका, शून्य=रिक्त, अभावग्रस्त, पावन=पुनीत, पवित्र, भग्न=टूटा हुआ, ध्वस्त, अनिल=समीर, मधुप बालिकाएं=भ्रमरिया।

सन्दर्भ—कवि अब बालिका को पाने से निराश होकर अपने हृदय को समझा रहा है कि उसके रिक्त स्थान की पूर्ति किसी प्रकार समव नही है इसलिए दुखी होने से कोई लाभ नही है।—

व्याख्या—कवि अपने भग्न हृदय से कहता है कि अश्रु बहाने से अब कोई लाभ नही है। तू पलको को बन्द करके उसके स्वरूप का चिंतन करता हुआ ही व्यथा को सहन कर क्योकि वियोग ही तुझे झेलना है। उस रूप का कल्पना के द्वारा पान करता हुआ जीवित रह। प्रियतमा मिल नही सकती और उसके स्थान की पूर्ति अन्य किसी प्रकार भी नही हो सकती। उसका सौन्दर्य अनुपम है। उसके स्थान की पूर्ति तो तीनो लोको की श्री सम्पदा से भी समव नहीं है। तेरे द्वारा अब तक बहाये गये आसू व्यर्थ नही जायेंगे।

फूलो पर ये वास करेंगे और इनकी व्यथा को वायु आकर दूर करेगी । [illegible] भ्रमर बालायें उन आसुओ की करुण कथा का गान करेंगी । इस प्रकार अपने प्रिया के वियोग मे बहाये गये तुम्हारे आसुओ की करुण कथा युगो तक गाई जाती रहेगी ।

विशेष—प्रस्तुत पक्तियो मे कवि ने बालिका के महत्व को इतना अधिक बढाकर प्रस्तुत किया है कि उसके स्थान को तीनो लोको का ऐश्वर्य भी पूरा नही कर सकता ! और इससे अधिक बालिका के लिए कवि क्या कहे ?

अनिल पुल्लिग है परन्तु स्वच्छन्द प्रवृत्ति वाले पत जी ने उसे यहा स्त्रीलिग मे प्रयुक्त किया है । ऐसा करने से एक बडी सूक्ष्म बात और व्यजित हो उठी है वह यह कि स्त्री पुरुष की अपेक्षा अधिक दयालु होती है । इसीलिए कवि ने कहा है कि वायु कुसुम के आसू पोछेगी ।

इन पक्तियों की छन्द-योजना पूर्ववर्ती पक्तियो की योजना से भिन्न है । छायावादी कवियो के लिए छन्द का भी कोई कठिन बन्धन नही होता ।

प्रस्तुत पक्तियो मे कवि की कल्पना बडी ही माधुर्यपूर्ण है । कवि का भाषा पर अधिकार असाधारण है । भावानुकूल शब्द-चयन भी द्रष्टव्य है । हृदय को समझाते हुए पत जी ने जिस 'थाम ले' शब्द का प्रयोग किया है उसका स्थानापन्न शायद ही कोई और शब्द हो ।

पर्वत प्रदेश में पावस

परिचयात्मक टिप्पणी—प्रस्तुत कविता मे पर्वत प्रदेश की वर्षा ऋतु का वर्णन किया गया है। पर्वत-प्रदेश मे वर्षा ऋतु मे प्रकृति नवीन-नवीन वेश वदल कर अपने सौंदर्य का प्रदर्शन कर रही थी। पर्वत का आकार अत्यन्त विशाल था उसकी आकृति गोल थी। अपने चरणो के पास भरे हुए जलाशय के जल मे पर्वत अपने फूल रूपी नेत्रो से दर्पण की भाति देखता प्रतीत होता था। पर्वत से वहने वाले झरने झर-झर शब्द करते हुए वह रहे थे। झरनो का शब्द ऐसा प्रतीत होता था जैसे वे पर्वत के गौरव का गान कर रहे हो। उनके झाग ऐसे सुन्दर लगते थे जैसे कि मोतियो की माला सुन्दर लगती है। पर्वत पर लगे हुए वृक्ष मनुष्य की महान् आकाक्षाओ के समान वडे थे। जिस समय वे शान्त निश्चल हो जाते थे तो ऐसे प्रतीत होते थे मानो आकाश की ओर टकटकी लगाकर देखते हुए वे चिन्तन मे लीन हों। पर्वत प्रदेश मे एकाएक वर्षा शुरु होने पर जो दृश्य प्रस्तुत हो गया उससे ऐसा प्रतीत होता था मानो पर्वत जो अभी तक अचल खडा था, उड गया है और उस पर वहने वाले झरने भी नही रहे उनके शब्द शेष रह गये हैं। वर्षा के समय घिरे हुए वादलो को देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि आकाश ही पृथ्वी पर टूट पडा हैं जिससे भयभीत होकर शाल के वृक्ष पृथ्वी मे धस गये प्रतीत होते थे, क्योंकि वादलों के कारण वे पूर्ण रूप से दिखाई नही पड रहे थे। तालाव वादलो और वर्षा की अविरल धारा से अदृश्य हो गया था और जो दृश्य प्रस्तुत हो गया था उसे देखकर ऐसा लग रहा था मानो तालाव तो सूख गया है और उसी का यह धुआँ उठ रहा है। वर्षा का देवता इन्द्र माना गया है। यहा कवि कल्पना करता है कि वादलो की सवारी बनाकर इन्द्र देव घूम घूम कर इन्द्रजाल अर्थात् जादू का खेल दिखा रहे थे।

वर्षा ऋतु मे पर्वतीय क्षेत्रो मे प्राय वादल घिरे रहते है। अवोध वालिका वादलो का घिराव देखकर उस पर्वत को वादलो का घर ही मान बैठी थी। पर्वत प्रदेश की प्रकृति कवि को अत्यन्त मनोहारी लगती थी। पर्वत प्रदेश का प्राकृतिक दृश्य, वह भी वर्षा ऋतु का जव कि वादल घिरे रहते हैं, अनेक रग के फूल खिलते हैं, जलाधिक्य से झरनो का निनाद सुन्दर सगीत पैदा करता रहता है, और भी चित्ताकर्षक लगता है। वह प्राकृतिक दृश्य कवि के लिए चमत्कृत करने वाला चित्र-सा वन गया था क्योंकि उस दृश्य को देखकर शैशव की सुखद स्मृति कवि को सहज ही हो आती थी।

इस कविता मे कवि ने छायावादी शैली मे प्रकृति का मानवीकरण किया है। आरम्भिक छन्दो मे प्रकृति का आलम्वन रूप तथा अन्तिम छन्दो मे उद्दीपन रूप मिलता है।

पावस······ ·· विशाल ।

शब्दार्थ—पावस ऋतु = वर्षा ऋतु, परिवर्तित = बदलता हुआ, दश = यह सम्भवत मुद्रण की भूल से अंकित हो गया है इसके स्थान पर 'वेश' अधिक उपयुक्त है, मेखलाकार = करधनी की आकृति वाला, गोलाकार, अपार = असीम, दृग सुमन = फूल रूपी आँखें अवलोक रहा = देख रहा, महाकार = महान आकार, अपनी विशाल आकृति, चरणों में = तलहटी में, ताल = जलाशय ।

सन्दर्भ—प्रस्तुत पंक्तियों में वर्षा ऋतु में उपस्थित पर्वत प्रदेश के दृश्य का वर्णन अंकित है ।

व्याख्या—वर्षा ऋतु थी और पर्वतीय प्रदेश था । उस पर्वत प्रदेश में प्रकृति नए-नए रूप क्षण-क्षण में बदल रही थी । कभी बादल आकाश में आच्छादित हो जाते थे तो कभी आकाश साफ हो जाता था । मेखला की आकृति में विस्तृत पर्वत बहुत विशाल था । उस पर अगणित पुष्प खिल रहे थे । पर्वत की तलहटी में एक विशाल तालाब था जिसका जल दर्पण सा प्रतीत होता था । पर्वत पर खिले हुए फूलों का प्रतिबिम्ब उस जल पर पड़ रहा था इसलिए कवि कल्पना करता है कि ऐसा प्रतीत होता था जैसे पर्वत फूलों रूपी अपने अगणित नेत्रों को फाड़कर उस जल रूपी दर्पण में अपने महान् आकार को देख रहा हो ।

विशेषः—(१) यहाँ पर्वतीय प्रदेश की प्राकृतिक शोभा का वर्णन किया गया है । क्षण-क्षण परिवर्तित रूप अधिक सुन्दर लगा करता है । उसी में नित नवीनता बनी रहती है और आकर्षण की शक्ति भी । महाकवि माघ ने सौंदर्य की परिभाषा इन शब्दों में देकर इसी बात का प्रतिपादन किया है—"क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूप रमणीयताया. ।" विहारी की नायिका का सौंदर्य क्षण-क्षण परिवर्तित होता रहता था इसलिए उसके रूप को अंकित करने वाले कितने ही कुशल चितेरों को क्रूर बनना पड़ा—

> "लिखन वैठि जाकी छवी गहि-गहि गरब गरनर ।
> भये न केते जगत् के चतुर चितेरे कूर ।।'

प्रकृति के द्वारा अपने बदलते वेश का ऐसा ही वर्णन द्विवेदीयुगीन एक कवि ने किया है—

> "प्रकृति यहाँ एकान्त वैठि निज रूप सवारति ।
> छिन-छिन बदलति वेश छिनहिं-छिन नव छवि धारति ।।'

(२) पर्वत का मानवीकरण किया गया है तभी तो वह पुष्परूपी नेत्रों से दर्पण में अपना आकार निहारता चित्रित किया गया है ।

(३) इन पक्तियों में ध्वनि-सौन्दर्य सराहनीय है । डॉ० नगेन्द्र लिखते हैं—"पलपल परिवर्तित प्रकृति वेश में लघु अक्षरों की आवृत्ति घूमते हुए चित्रों की भांति प्राकृतिक दृश्यों के परिवर्तन का आभास देती है, तो 'मेखलाकार पर्वत अपार' का 'आ' पर्वत के विस्तार का चित्र सम्मुख उपस्थित करता है ।"

(४) 'पल-पल परिवर्तित प्रकृति' मे अनुप्रास अलकार है। दृग सुमन मे रूपक और 'दर्पण-सा' मे उपमा अलकार है।

गिरि .. • चिन्ता पर।

शब्दार्थ—गिरि = पर्वत, गौरव = महिमा, मद = नशा, झाग = फेन, निर्झर = झरने (Water-falls), उच्चाकाक्षाओ = ऊँची अभिलाषाओ, महान आशाओ, नीरव = रव-हीन, शब्दरहित, अनिमेष = निर्निमेष, बिना पलक उठाए-गिराये, लगातार, अटल = बिना हिले-डुले, चितापर = चिन्तायुक्त, चिन्तन मे लीन।

सन्दर्भ—वर्षा ऋतु मे पर्वत से निकल कर बहते हुए झरनो का चित्र खीचा गया है। नीचे की पक्तियो मे विशाल शान्त खडे वृक्षो को मानवो की सी क्रियायें करते दिखाया गया है।

व्याख्या—वर्षा होने से झरते हुए झरनो का झर-झर शब्द स्पष्ट सुनाई पडता था। उसकी झर-झर की ध्वनि को सुन कर सुनने वालो की नसो में उत्तेजना दौड जाती थी। शक्ति और आह्लाद के साथ बहते हुए झरनो को देख कर दर्शको के मन मे भी आनन्द और स्फूर्ति की तरग दौड उठती थी। उन झरनो के जल मे झाग उत्पन्न हो गये थे क्योकि तीव्रता से जल ऊपर से लगातार गिर रहा था। शुभ्र जल के झागो वाले झरनो से मोतियो मे निर्मित माला की सी आकृति बन जाती थी। वे झरने झर-झर शब्द कर रहे थे इसलिए ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो वे पर्वत की महिमा का बखान कर रहे हो।

उस विशाल पर्वत के ऊपर बडे-बडे वृक्ष उसी प्रकार ऊपर उठने की प्रतिस्पर्द्धा सी करते हुए खड़े थे जिस प्रकार महत्वाकाक्षी व्यक्ति के मन में एक के बाद एक बडी-बडी आकाक्षायें उठा करती हैं। आकाश के नीचे वे वृक्ष ऐसे लग रहे थे जैसे किसी भारी चिन्ता मे लीन होकर निर्निमेष नेत्रों से शात आकाश की ओर देख रहे हो।

विशेष—१. 'झर्-झर्' 'झरते हैं झाग भरे निर्झर' से झरनो द्वारा उत्पन्न ध्वनि कानो मे गूजने लगती है। यही इन शब्दो की ध्वन्यात्मकता का कमाल है।

२. मद के कारण झरनो की अपनी नस-नस उत्तेजित हो रही हो यह भी सभव है क्योकि मद से चूर व्यक्ति के मुंह से भी झाग निकला करते हैं। मद मे आकर व्यक्ति कोई भी कार्य निर्बाध रूप से करता है। झरने भी वर्षा-ऋतु मे प्रबल वेग से युक्त थे।

३. मूर्त तरुवरों की अमूर्त उच्चाकाक्षाओ से तुलना की गई है। उच्च आकाक्षाओ का विस्तार सीमाबद्ध नही किया जा सकता।

४ तरुओ का अनिमेष, अटल और चिन्तापर होना यह सूचित करता है कि उस समय वायु बिल्कुल शान्त होगी।

५ नखो को आकाश की ओर झाकते हुए बतलाना उचित नही कहा जायगा। किसी तंग स्थान अथवा छिद्र मे होकर झाका जाना है यहाँ तो विस्तृत आकाश है।

उड गया······ ······इन्द्र जाल।

शब्दार्थ—अचानक = यकायक, भूधर—पर्वत, पारद = पारा, एक श्वेत धातु विशेष रव = शब्द, आवाज। भू = पृथ्वी, अम्बर = आकाश, धरा = पृथ्वी, सभय = भय के साथ, डर कर, जलदयान = बादल रूपी विमान, विचर विचर = घूम घूम कर, इन्द्र = सुरपति, देवताओ का राजा, इन्द्रजाल = जादू।

सन्दर्भ—वर्षा ऋतु मे प्रकृति बच्चो की तरह क्षण-क्षण नई क्रीडायें करती रहती है। कवि यह दृश्य देख ही रहा था कि यकायक पर्वत पर बादलो का समूह छा गया और ऊपर की ओर उठने लगा। स्पष्ट कुछ दिखाई नहीं पडता था। यह सारा परिवर्तन इन्द्र का जादू जैसा प्रतीत होता था।

व्याख्या—जो पर्वत कुछ समय पूर्व स्पष्ट दिखाई पड रहा था वही देखते ही देखते यकायक बादलरूपी पारे के समान चमकीले पखो को फडफडाता हुआ उड गया। उसके उडने मे झरने भी नही दिखाई पडते थे। निर्झरो की झर-झर की आवाज ही सुनाई पडती थी। ऐसा प्रतीत होता था कि आकाश ही टूट कर पृथ्वी पर आ गिरा है जिसमे सब कुछ ढक गया है। इसे देख कर सम्पूर्ण पृथ्वी त्रस्त हो उठी। पर्वत पर खडे शाल के वृक्ष बादलो मे छिप गये जो ऐसे दीख पडते थे मानो आकाश के गिरने से भयभीत होकर पृथ्वी के अन्दर छिप गये हो। ताल के ऊपर उठते हुए बादल ऐसे लग रहे थे जैसे तालाब जल गया हो उससे धुआ उठ रहा है। यह सारी क्रियायें देख कर कवि कल्पना करता है कि इन्द्र बादल रूपी रथ पर बैठ कर घूम-घूम कर कभी पानी बरसा कर कभी आग लगा कर जादू का खेल दिखा रहा था।

विशेष—१ प्रथम पक्तियो में बादलो से घिरे हुए पर्वत के उडने की कल्पना की गई है। अचानक शब्द से ऐसा प्रतीत होता है जैसे किसी आहट को सुन कर बेखबर बैठा हुआ पक्षी हडबडा कर उड जाता है, पखो से फडफड ध्वनि करता हुआ या उसी प्रकार निर्मल पर्वत यकायक बादलो से आच्छादित होकर अदृश्य हो गया।

२ वर्षाधिक्य के कारण ऐसा प्रतीत होता था जैसे आकाश ही पृथ्वी पर टूट कर आ गया हो। 'टूट पडना' मुहावरा भी है जिसका अर्थ आक्रमण करना है। वर्षा तीव्रगति से होने पर शाल-वृक्षो को भी यहा भयभीत होता हुआ दिखाया गया है।

३ पर्वत का पख लगाकर ऊपर उड जाना, शाल वृक्षो को पृथ्वी मे धसे हुए बताना, आकाश का पृथ्वी पर उतर आना तालाब मे आग लग जाना आदि जादू के खेल से प्रतीत हो रहे थे। इसीलिए इस दृश्य को कवि ने 'इन्द्रजाल' कहा है।

वह सरला........ ....मित्र थी।

शब्दार्थ—वह सरला = वह भोली बालिका जिससे कवि ने स्नेह किया था, बादल-घर = बादलो का घर, चितेरे = चित्रकार, भावुक। बाह्य = बाहरी, चमत्कृत चित्र = चमत्कृत कर देने वाला चित्र, शैशव = बचपन, सुधि = स्मृति ।

सन्दर्भ—कवि बालिका के भोलेपन का वर्णन कर रहा है। वर्षा ऋतु का वह मनोरम दृश्य कवि को चमत्कृत कर देने वाला था।

व्याख्या—वह बालिका बडी भोली थी और सरल हृदया थी। पर्वत पर बादल घिरे रहते थे। घाटियो में से बादल ऊपर उठते प्रतीत होते थे तो उसे ऐसा प्रतीत होता था कि वह पर्वत नहीं वरन् बादलो का घर है। इसीलिए वह बालिका पर्वत को बादल-घर कहती थी।

पर्वत प्रदेश की बाह्य प्रकृति कवि के भावुक हृदय के लिए चमत्कृत कर देने वाले चित्र सी प्रतीत हो रही थी। वह बालिका कवि की घनिष्ट मित्र थी। उस पर्वतीय दृश्य को देख कर बाला की स्मृति हो आती थी इसलिए प्राकृतिक दृश्य कवि को बचपन की सुख देने वाली स्मृति के समान आकर्षक लग रहा था।

विशेप—१ कवि ने उस बालिका के लिए 'सरला' शब्द का प्रयोग किया है जो बडा समीचीन है क्योकि बालिका की अवस्था तब तक बहुत कम थी, उसका हृदय छल-कपट से रहित निष्कलक था। वह यह भी नही जानती थी कि बादल पर्वत पर आच्छादित हो गये हैं या पर्वत से निकल रहे है। इसीलिए वह पर्वत को 'बादल-घर' कहती थी।

२ इस दृश्य को देख कर कवि को बालिका की स्मृति हो आती है इसलिए यह वर्णन उद्दीपन रूप में हुआ माना जा सकता है।

३. मूर्त 'बालिका' की अमूर्त 'सुधि' से तुलना की गई है। छायावाद मे ऐसा भी होता है।

४. रूपकातिशयोक्ति, हेतूत्प्रेक्षा एव उपमा अलकार हैं।

आंसू से

कथ्य—इस रचना का सवध पिछली तीन रचनाओ से प्रतीत होता है। आसू का विशद रूप ही 'ग्रन्थि' है। पतजी ने किसी वालिका को अपना हृदय दिया था परन्तु कुछ समय उपरान्त वह कही अन्यत्र चली गई और उसका कवि से कभी साक्षात्कार भी न हो सका। कवि का हृदय उसके मिलन के लिए तडपता रहा। कवि आंसू वहाता हुआ अपने हृदय को मनाता भी था पर सव व्यर्थ। वालिका के विछोह से जनित दुःख अपार था। वह इतना अधिक हो गया था कि दुःख स्वय दवा भी वन गया, विरह मे एक प्रकार के आनन्द का कवि को अनुभव होने लगा। ग्रन्थि' मे पतजी ने वालिका से हुए प्रणय और वालिका के अन्यत्र जाने की कैसी मार्मिक अभिव्यजना की है, देखिए—

"हाय ! मेरे सामने ही प्रणय का
ग्रन्थि-वधन हो गया वह नव कमल
मधुप-सा मेरा हृदय लेकर किसी
अन्य मानस का विभूषण हो गया।"

वालिका से वियुक्त कवि की स्थिति दयनीय हो गई। उस वालिका की स्मृति उसके हृदय को कचोटने लगी अन्त मे विरह उसके रोग का उपचार ही वन गया। यह है कवि के द्वारा वालिका के वारे मे किये गये चिन्तन की तल्लीनता। कवि समझ नहीं पाता कि विरह विरह है अथवा कोई वरदान है क्योंकि विरह तो दाहक होता है परन्तु कवि को विरह मे एक आनन्द का अनुभव होने लगा है क्योकि विरह मे कवि को स्मृति मे सदैव वाला से साक्षात्कार होता रहता है। कवि की कल्पना, कवि के अश्रु, कवि की आहें, सभी के मूल मे वही वाला है। वाला उसकी रग-रग मे समा गई है। ऐसी स्थिति मे कवि को यह विश्वास हो चला है कि अवश्य ही प्रथम कवि मेरी ही भाति कोई विरही होगा। उसके हृदय मे लगी विरह की आग के कारण निकलने वाली आहो से ही गाना निस्सृत हुआ होगा। वेदना की टीस के कारण आखो से निस्सृत आसुओ के साथ ही कविता का जन्म हुआ होगा। कविवर शैली ने भी कहा है कि हमारे सबसे मधुर गीत वे होते है जिनमे तीव्रतम दुःख के भाव अन्तर्ग्रथित होते हैं।

"Our sweetest songs are those
that tell of saddest thoughts"

तीव्रतम दुःख की अनुभूति विरह के अतिरिक्त शायद ही और किसी कारण होती हो। यहा प्रसगवश आदिकवि वाल्मीकि की चर्चा कर देना भी असगत न होगा। व्याध के वाण के द्वारा क्रौञ्च-मिथुन मे से क्रौंच के निधन

पर तडफडाती क्रौञ्ची के दु ख का अनुभव करने वाले आदि कवि के मुख से यकायक उनके हृदय की वेदना श्लोक वनकर निस्सृत हो उठी थी—

मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती समा ।
यत्क्रौंच मिथुनादेकमवधी काम मोहितम् ।।

कवि का हृदय वडा व्यथित है। उससे सहानुभूति प्रदर्शित करने वाला भी उसके पास कोई नही है। सहानुभूति का सुख भी विचित्र होता है। पत जी एकाकी ही प्रश्न करते हैं कि मैं इस भारी व्यथा से राहत पाने के लिये इसे किसके हृदय में उतारू । नेत्रों से बहते हुए आसुओ से भी क्या ? इन्हें स्वीकार करने वाला यहा है ही कौन ? पावस ऋतु में जैसे वर्षा होती रहती है, तालाव पानी से लवालव भर जाते हैं, उसी प्रकार मेरा जीवन है। वर्षा ऋतु मे घुमडते रग-विरगे वादलो के समान मेरे नेत्रो मे विविध रूप धारण करके स्मृति छाई रहती है। मन मानसरोवर के समान अनेकानेक भावो से भरा हुआ है। वर्षा ऋतु मे चहकते पक्षियो के समान हृदय मे अनेक भाव उठते हैं। स्मृति जनित दु ख हृदय के घावो को खोलता रहता है।

कवि के हृदय मे कभी आशा का उद्रेक होता है तो कभी आशा धुमिल हो जाती है और नैराश्य छा जाता है। ज्यो ही वालिका की स्मृति आने पर कवि के हृदय मे उसकी मूर्ति समा जाती है तो कुछ क्षणो के लिए कवि का नैराश्य मिट जाता है। उसके प्राण वालिका के दर्शन के लिए आकुल हो उठते हैं। विरही को, सयोगकाल में स्वर्णमय लगने वाला सध्या का आकाश ऐसा लगता है जैसे लाख का घर आग की लपटो मे जल रहा हो। रात्रि के समय चन्द्रमा एव तारों से भरा हुआ आकाश अंगारे और स्फुलिंगो से भरा प्रतीत होता है। कभी ऐसा भी प्रतीत होता है कि अ धकार रूपी काला नाग अपने सिर पर मणि को साथ लेकर समूचे ससार को निगलने के लिए घर से निकला है।

कवि चन्द्रकला को वादलो का रेशमी घू घट उठाता देखता है तो उसे वालिका के मुख की स्मृति हो आती है, प्रकृति व्यापार देखकर कवि वालिका के ध्यान मे निमग्न हो जाता है। कभी वादल पर्वत-शिखर पर खेल करते हैं कभी पर्वत-शिखर स्वय को वादलो में छिपा लेते हैं। वादल कभी मेमने और कभी हाथी के रूप मे दीख पडते हैं। पार्वत्य व्यापारो को देखकर वाला की स्मृति आने पर कवि वडा दु खी होता है। इन्द्रधनुष प्रिया की भौंहो और पर्वत की हरीतिमा उसकी साडी के अ चल की याद दिलाती है। वादलो से निकलता चन्द्रमा वाला के चन्द्रमुख-सा प्रतीत होता है। ये सभी वस्तुए कवि को वाला की याद दिला कर उसे व्यथित वना देते हैं।

प्रस्तुत रचना मे कवि ने विरह-जनित पीडा का अनेक प्रकार से उल्लेख किया है। प्रकृति की वस्तुओ मे अपनी वाला की वस्तुओ को आरोपित भी किया है। उपमानो को देख कर विरही को तो विशेष रूप मे उपमेय की याद हो ही आती है।

विरह ・ ・ ‥ अनजान ।

शब्दार्थ—कसकती = टीस मारती, कचोटती, दर्द पैदा करती हुई । सुरीले = सुरयुक्त, मधुर लययुक्त, अवसान = अत, समाप्ति, पहिला कवि = आदि कवि, वह कवि जिसने सर्व प्रथम कविता रची होगी. वाल्मीकि, आह = वेदना । अनजान = बिना जाने ही, बिना प्रयास, अपने आप ही ।

सन्दर्भ—कवि का बालिका से विछोह हो गया । उसका विरह उसकी रग-रग मे समाया हुआ है । विरह का इतना आधिक्य हो गया है कि उसे अब उसी मे आनन्द आने लगा है । कवि की कल्पना और अश्रु, गली के मूल मे बाला का ध्यान कार्य कर रहा है ।

व्याख्या—विरह की स्थिति म कवि को एक विशेष प्रकार की अनुभूति हो रही है इसलिए उसके मन मे एक द्वन्द्व उत्पन्न हो गया है । कवि स्वय से ही प्रश्न करता है कि यह विरह सचमुच विरह है अथवा यह मेरे लिए छिपा हुआ वरदान है ? मेरी कल्पना मे ऐसी पीड़ा है जो टीस पैदा करने वाली है, आसुओं मे सिसकता हुआ सगीत है । मेरी सूनी आहो मे सुरीले मधुर छन्दो के स्वर मुखरित हो रहे हैं अर्थात् विरहाधिक्य के कारण मेरी जो आहे निकलती हैं वे ही मधुर छन्द हैं । क्या उस बाला का ध्यान कभी मुझ से भुलाया जायगा ? और क्या कभी मेरे हृदय से उठने वाले आहे निकलना बन्द कर देंगी ? नही ऐसा समव नही है । उस बालिका का ध्यान सदैव बना रहेगा और निरतर मेरी यही स्थिति बनी रहेगी ।

पंतजी विरहावस्था मे जो कटु अनुभूति प्राप्त कर रहे हैं उसके आधार पर वे कहते हैं कि मुझे विश्वास है कि वह व्यक्ति जिसने सर्व प्रथम कविता रची होगी वह कोई विरही रहा होगा । क्योकि विरहावस्था मे व्यक्ति का हृदय बड़ा ही भावाकुल और कोमल हो जाता है । विरही व्यक्ति के हृदय से निकलने वाली आहो से ही सगीत का जन्म हुआ होगा । वेदना के परिणाम स्वरूप उसकी आखों से निकलते हुए आसुओं के साथ ही कविता की रचना हुई होगी अर्थात् किसी प्रिय जन के वियोग में दुःख के कारण आसू बहाते हुए व्यक्ति के भाव स्वत ही कवितावद्ध हो गये होंगे और उसे ही आदि कवि बनने का गौरव प्राप्त हुआ होगा ।

विशेष—१. जब विरही हर क्षण अपने प्रेमपात्र के स्मरण मे इतना तल्लीन रहता है कि उसे प्रेमपात्र से वियुक्त होने का भान नहीं हो पाता तो ऐसी तल्लीनता उसके लिए वरदान ही कही जा सकती है क्योकि वरदान से सुख प्राप्त होता है उधर ध्यान के नैरन्तर्य से भी प्रेमपात्र के साक्षात्कार का सुख प्राप्त होता रहता है । सच्चे विरही अपने प्रेमपात्र के ध्यान से जनित सुख का जैसा अनुभव कर सकते हैं अन्य लोग नही । किसी उर्दू वाले ने कहा है—'दर्द का हद से गुजर जाना है दवा हो जाना ।'

प्रसिद्ध अंग्रेजी कवि शैली की निम्नलिखित पंक्तिया इस सम्बन्ध में किसे याद न होगी—

"Our sweetest songs are those
That tell of saddest thoughts"

विरह का सयोग की अपेक्षा अधिक महत्व इसलिए है कि सयोग की अवस्था मे स्वार्थ की भावना विद्यमान रहती है परन्तु विरह मे नही।

२ कविता सप्रयत्न हर व्यक्ति के द्वारा किसी भी क्षण लिखी जा सके ऐसी बात नहीं है। कवि के हृदय मे क्षण विशेष में भावो का अबाध प्रवाह उमडता है इसीलिए पत जी ने भी कविता के साथ 'बहना' शब्द का प्रयोग किया है।

३ 'पहला कवि' से कवि का अभिप्राय बालमीकि से है। कहा जाता है कि व्याध्य के बाण से क्रौञ्च पक्षी की मृत्यु होने पर कातर स्वर से चिल्लाती, क्रौञ्ची की स्थिति पर दयार्द्र हुए बालमीकि के मुख से सहसा एक श्लोक उच्चरित हो उठा था। बालमीकि को ही आदि कवि होने का श्रेय मिला।

४ 'वियोगी होगा······ ·······अनजान !' ये पंक्तिया बहु-उद्धरित (Oft-quoted) हैं।

हाय········ ·· असहाय।

शब्दार्थ—पावस = वर्षा, मार=टीस, कसक। उपहार = भेंट, मानस = मानसरोवर झील जो हिमालय पर्वत पर स्थित है, अगणित = अनगिनत, मृदु-भाव=कोमल-भाव, कूजते = चिल्लाते, कलरव करते, विहगो-से = पक्षियों के समान।

सन्दर्भ—बालिका के विरह से कवि का हृदय बडा व्यग्र है। दुःख के कारण उसने अश्रु भी बहाये हैं परन्तु दुःख से मुक्ति कहा? विरह का तो दुःख ही अपार है। कवि उससे छुटकारा पाने का उपाय सोचता है। कवि के मन मे अनेक विचार आते है, पुरानी स्मृति हो आती है और कवि की दशा और भी दयनीय हो उठती है।

व्याख्या—कवि बालिका के बारे में चिन्तन करता हुआ एकाकी बैठा हुआ है। विरह के कारण उसका हृदय रो रहा है। वह अपने आप से ही पूछता है कि अपने हृदय की वेदना को किस से कह कर हल्की करू? मेरे हृदय मे अपार वेदना है परिणामस्वरूप आखें अविरल गति से अश्रु बहा रही हैं फिर भी दुःख कम नहीं होता। यहा मेरे आसुओ के मोतियो का हार कौन ग्रहण करने वाला है? एकाकी जीवन में अश्रु बहाने की अपेक्षा ऐसे व्यक्ति के समक्ष, जिससे कुछ सहानुभूति मिलती है, जो व्यथित जन की वेदना का अनुभव करता है, रोने से दुःख हल्का हो जाता है। परन्तु यहा तो कोई भी नहीं है; इसलिए मुझे पीडा से छुटकारा कैसे मिलेगा?

मेरा जीवन वर्षा ऋतु के समान बन गया है। मेरे मन मे असख्य विचार उसी प्रकार उमड़ते रहते हैं जिस प्रकार वर्षा ऋतु मे जल के आधिक्य से मानसरोवर जल से लबालब भर जाती है। वर्षा ऋतु में आकाश मे

सफेद, सावले और धुधले मेघ छा जाते हैं उसी प्रकार मेरे नेत्र भी स्मृतियो से डबडबाये रहते हैं। पुरानी स्मृतिया हो आती हैं और दुःख के कारण नैनो मे अश्रु वादलो के समान उमड पडते हैं।

वर्षा ऋतु में तो विविध प्रकार के पक्षी चहचहाते [illegible] हैं परन्तु मेरे हृदय मे अनेक प्रकार की मृदुल भावनाएँ उठा करती हैं। पुरानी स्मृतिया ताजी हो उठती हैं, गोया हुआ दुःख नवीन होकर सालने लगता है। विरह के कारण मेरे कोमल हृदय मे जो घाव वन गये हैं फिर से फूट पड़ते हैं उसी प्रकार जिस प्रकार लाल रग की कलियां खिल उठती हैं।

विशेष—किसी के सम्मान मे अथवा किसी की प्रसन्नता के अवसर पर अपनी प्रसन्नता के प्रतीकरूप मे जो कुछ दिया जाता है उसे उपहार कहते हैं। कवि वालिका के लिए सब कुछ करने के लिए उद्यत है परन्तु वालिका उसके पास है ही नहीं इसीलिए वह कहता है कि यह अश्रुओं का उपहार किसे दूं? "किसे अव दूं उपहार" कवि के इन शब्दो मे जो व्यथा ओतप्रोत है वह केवल अनुभव करने की वस्तु है।

२. यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि मानव जिस प्रकार अपनी प्रसन्नता में दूसरो को हिस्सेदार बनाना चाहता है उसी प्रकार अश्रु-उन्मोचन के अवसर पर वह दूसरो से अपनी व्यथा व्यक्त करना और सहानुभूति प्राप्त करना भी चाहता है। कविवर शैली ने भी अपनी व्यथा के अवसर पर कहा था कि—काश! कोई मेरी भावनाओं को सुनने वाला होता—

"Did any heart now short in my emotion!"

३ कवि ने अपने जीवन की तुलना पावस-ऋतु से की है। विरह मे नेत्रो से प्राय. अश्रु वहा करते हैं। सूर की गोपियां कृष्ण-वियोग के कारण हुई अपने नेत्रों की स्थिति वतलाती हुई कहती हैं।

"निसदिन वरसत नैन हमारे।
सदा रहत पावस ऋतु इन पै जव तें स्याम सिधारे।"

४. अरुण कलियो से हृदय के कोमल घावो की तुलना अपूर्व है। अनुराग का रग लाल माना गया है काव्य में। वालिका के विरह मे पत जी के हृदय मे जो घाव हो गये थे वे भी लाल ही रहे होगे तभी तो उन्होंने खोज कर अरुण कलियो से उनकी उपमा दी है।

इन्द्रधनु सा ···
········निदान।

शब्दार्थ—सेतु=पुल, अनिल=वायु, अछोर=छोर रहित, अनन्त, धूमिल=धुधली, भावी=भविष्य, होने वाली, तडित=विजली, प्रभा=प्रकाश, कान्ति, गूढ=छिपा कर, अधीर=धैर्य खो देना, निदान=अन्त मे।

सन्दर्भ—कवि वालिका के विरह मे अत्यधिक दुखी है। उसका जीवन पावस ऋतु सा हो गया है। उसके जीवन में वालिका के मिलने की कभी आशा उदित होती है तो कभी निराशा आकर छा जाती है।

व्याख्या—वर्षा ऋतु मे आकाश मे जिस प्रकार कभी-कभी इन्द्र धनुष एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैल कर हवा मे लटके हुए पुल के समान दिखाई पडता है उसी प्रकार मेरे हृदय मे आशा उदित होकर जीवन को पार करने के लिए पुल का कार्य करती है। परन्तु जिस प्रकार इन्द्र धनुप अछोर और आधारहीन होता है चाहे जब विलीन हो जाता है उसी प्रकार आशा की भी कोई सीमा नही होती और वह कभी भी निराशा मे परिणत हो जाती है। कुहरे के समान धुंधली निराशा हृदय मे आच्छादित हो जाने पर मुझे अपना भविष्य अन्धकारमय प्रतीत होने लगता है। भविष्य में तुम्हारे मिलन की निराशा मुझे व्याकुल बना देती है।

वर्षा ऋतु के गहन अन्धकार मे कभी कभी गम्भीर गर्जन के साथ हृदय को प्रकम्पित और नेत्रों को चकाचोध कर देने वाली बिजली की चमक के समान हे सुमुखि जब तुम्हारी स्मृति हो आती है, बिजली बादलो के उर को चीरती हुई उनमे जिस प्रकार प्रविष्ट हो जाती है उसी प्रकार तुम्हारी आकृति मेरे हृदय पर अ कित हो जाती है और हृदय अत्यंत व्यथित हो उठना है। मेरे प्राण तुम्हें पाने की अभिलाषा मे वर्षा ऋतु मे उडने वाले जुगुनुओ की भांति दौडते और विकल होते हैं।

विशेष—(१) आशा की इन्द्र धनुष से तुलना बडी ही समीचीन है। वर्षा ऋतु मे प्रकृति के दृश्य क्षण-क्षण पर परिवर्तित होते रहते हैं। इन्द्र धनुष तो और भी अस्थायी होता है। अनन्त में बिना किसी आधार वाले पुल के समान दिखाई देने वाला इन्द्र धनुष तो देखते-देखते विलीन हो जाना है। आशा भी क्षणिक होती।

(२) 'सुमुखि' सम्बोधन साभिप्राय है। बिजली शुभ और चमक से युक्त होती है उसी प्रकार कवि बालिका के मुख को भी कान्ति से युक्त और सुन्दर बताना चाहता है।

धधकती · .... .. · विशाल।

शब्दार्थ—धधकती = जलाती। जलद = बादल। ज्वाला = ज्वाला, अग्नि। नीलम = नीलमणि। प्रवाल = लालमणि। व्योम = आकाश। जतुगृह = लाख का बना हुआ घर। विकराल = भयानक। बलि = एक राजा जिससे वामनावतार मे भगवान ने तीन कदम भूमि मागी थी। वामन = भगवान का एक अवतार। तमिस्र = अ धकार।

सन्दर्भ—विरहावस्था में कवि को लिए प्राकृतिक सारी वस्तुयें भयानक प्रतीत होती हैं।

व्याख्या—सन्ध्याकाल में बादलो का रग लाल हो गया है। कवि कहता है कि मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि ये बादल पानी देने वाले नहीं रहे, अपितु ज्वाला वर्षाने वाले हो गये हैं। नीलम का आकाश मू गे मा लाल वर्ण का हो गया है। सन्ध्या काल मे जो कभी स्वर्णाभ दिखाई पडता था आज ऐसा भयकर दीख पडता है जैसे लाख के बने हुए घर मे आग लगा दी गई हो।

सन्ध्योपरान्त अन्धकार का साम्राज्य बढता जा रहा है। सूर्य क्षितिज

की ओर चला जा रहा है। इसे देखकर कवि कहता है कि जिस प्रकार भगवान वामन ने एक ही पग में सम्पूर्ण धरती को नाप कर और बलि का अभिमान चूर करके उसे पाताल में पटक दिया था उसी प्रकार इस अंधकार रूपी वामन ने सूर्य रूपी बलि को नीचे पटक दिया है। अन्धकार तेजी से फैल रहा है। अन्धकार के फैल जाने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह संसार में आग लग जाने से उठा हुआ धुआ है, अन्धकार नहीं है।

विशेष—(१) 'जलद' साभिप्राय शब्द है। इसका शाब्दिक अर्थ है जलद देने वाला परन्तु विरही कवि के लिए वह ज्वाला बरसाने वाला लग रहा है।

(२) लाख से निर्मित वस्तु सरलता और शीघ्रता से अग्नि पकड लेती है। इसीलिए कौरवों ने पाण्डवों को मारने के लिए लाख का ही घर बनवाया था। सन्ध्याकाल पंत जी को जलते हुए लाख के घर की तरह भयानक दीख रहा था।

(३) तमिस्र का मानवीकरण किया गया है। 'बलि सा' में उपमा अलंकार है।

चिनगियों से .... व्याल

शब्दार्थ—चिनगियों से=चिनगारियों के समान, स्फुलिंग के समान। लहकता है=चमकता है, झकझकाता है। मणि-जाल=मणियो की राशि। व्याल=सर्प।

सन्दर्भ—बालिका के विरह में कवि को तारे, शशि सभी भयानक प्रतीत होते हैं।

व्याख्या—सन्ध्याकाल की अरुणिमा शनैः शनैः अन्धकार में परिणत होती गई। आकाश में चन्द्र तारे चमचमाने लगे परन्तु कवि को उन्हें देख कर प्रसन्नता नही हो रही। कवि को अन्धकार तारो के रूप में चिनगारियां और चन्द्रमा के रूप में अग्नि का अंगार बरसाता प्रतीत होता है। उसे ऐसा भी प्रतीत होता है कि अन्धकार रूपी काला नाग अपने फन की मणियो से प्रकाश विकीर्ण करता हुआ सम्पूर्ण संसार को डसने के लिए तेजी से बढ़ रहा है।

विशेष—(१) प्रस्तुत पंक्तियो मे प्रकृति का उद्दीपन रूप मे वर्णन हुआ है। ऐसा वर्णन करना रीतिकाल की प्रमुख विशेषता रही है। वहा विरही जनो को प्रकृति की प्रत्येक आनन्द प्रदान करने वाली वस्तु उल्टे कष्ट देने वाली और भयानक बन जाती थी।

(२) अन्धकार को व्याल बताकर जो रूपक बांधा गया है, बड़ा उपयुक्त है। काला व्याल भयानक होता ही है, अन्धकार भी विरही जनो को ही क्या सुखी व्यक्ति को भी अच्छा नही लगता। घने अन्धकार में चन्द्र तारो की ज्योति और भी बढी हुई दीख पडती है। उधर भयानक विषधर काले नाग की

मणियां भी अन्धकार में अत्यन्त लहकती होंगी जिन्हें देखकर भय लगना बड़ा स्वाभाविक है। विरही जन को चन्द्रमा आदि कष्टप्रद प्रतीत होते हैं।

(३) पंत जी ने तारों को मणिजाल कहा है। प्रसाद जी भी उन्हें मणिजाल ही कहते हैं—

पगली हां संभाल ले कैसे,
छूट पड़ा तेरा अंचल,
देख बिखरती है मणिराजी,
अरी उठा बेसुध चंचल।

पूर्व ....मूक।

शब्दार्थ—सुधि = याद, स्मृति। शुक = तोता। सुखकर = सुख देने वाले, आनन्दप्रद। दुहराती हैं = याद हो आती हैं। अगन = अग्नि। पुलकित = रोमांचित। सहस्रों = हजारों, अगणित। सरस = रस युक्त, मधुर। आह्वान = पुकार, बुलावा। गीरा = वाणी। श्रुति = श्रवणेन्द्रिय, कान। मूक = मौन।

सन्दर्भ—विरह की स्थिति में पंत जी को प्रत्येक आकर्षक वस्तु भी भयानक लग रही है। कभी बालिका का स्मरण हो आता तो कभी कवि के प्राण बालिका का आह्वान कर उठते हैं।

व्याख्या—हे सुकुमारि! तुम्हारी भोली बातों को जब मेरी स्मृति तोते के समान दुहराती जाती है तो मुझे कितना आनन्द मिलता है। तुम्हारी बीती हुई बातों का एक क्रम बंध जाता है। तुम्हारी बचपन की बातें बड़ी सरल, बड़ी भोली और मधुर होती थी। उन बातों की याद से मेरे प्राण पुलकित हो उठते हैं साथ ही तुम्हारे अभाव में जल उठते हैं। वे अगणित मधुर स्वरों में तुम्हारा आह्वान करने लगते हैं। मेरी वाणी और कान मौन धारण कर लेते हैं, अपने-अपने गुणों से विरत हो जाते हैं। एक विचित्र सी अचेतनावस्था मुझे आ घेरती है।

विशेष—(१) पंत जी ने स्मृति को तोते के समान बतलाया है। तोता रटी हुई बातों को ही दुहरा सकता है। समृति भी तोते के समान पुरानी बातों को ही एक-एक करके खोलती जाती है।

(२) विषाद में इन्द्रियां शिथिल हो जाती हैं। व्यक्ति की प्रवृत्ति अन्तर्मुखी हो जाती है। गहन विषाद जब होता है तब वाणी की तो बात ही दूर है अश्रु भी नहीं ढुलकते। मनुष्य में अजीब जड़ता सी आ जाती है।

देखता हूं .... अज्ञात।

शब्दार्थ—उपवन = उद्यान, मधुकर = भ्रमर, नवोढा = नव विवाहिता स्त्री, युवती, उपकूल = किनारा, प्रसून = फूल, ढिग = पास में, सत्वर = शीघ्र, आकुलता = व्याकुलता, आघात = चोट कृश = दुर्बल, पग अज्ञात = अपरिचित दिशा की ओर बढ़ने वाले कदम।

सन्दर्भ—कवि विरह मे पहले से ही दुःखी है परन्तु जब वह उपवन और भ्रमर, लहर और तट की क्रीडायें देखता है तो उसे बालिका की स्मृति और अधिक कचोटने लगती है।

व्याख्या—कवि कहता है कि जब मैं उपवन को अपने फूलो रूपी प्यालो मे अपने यौवन की मदिरा भर-भर कर भ्रमरों को पिलाता हुआ देखता हू, जब नव विवाहिता नायिका सी छोटी लहर को तट पर उगे हुए फूलों के पास अचानक रुककर उन्हें चूमकर फिर तेजी से आगे बढती हुई देखता हू तो हे प्राण प्रिये! तुम्हारी स्मृति मीठा सा दर्द पैदा करके मुझे कचोटने लगती है। विरह की पीडा से कृश मेरे शरीर मे सिहरन पैदा हो उठती है और मेरे पैर यकायक ठिठक कर रुक जाते हैं। तात्पर्य यह है कि कवि उपवन और भ्रमर, लहर और तट की केलिक्रीडायें देखता है तो उसे बालिका स्मृति बडी पीडा पैदा करने लगती है।

विशेष—(१) यद्यपि प्रकृति मे सर्वत्र आनन्द की लहर व्याप्त है परन्तु कवि विरह मे दुःखी है, इसीलिए वह मस्त प्रकृति के साथ प्रसन्न नहीं है। प्रकृति उसके लिए पीडा देने वाली बन गई है।

(२) बाल-लहर, जो कि फूलों के पास रुक-रुक कर आगे बढती है, के लिए 'नवोढा' शब्द का प्रयोग बडा उपयुक्त है। नवविवाहिता नायिका भी संकोचवश रुक-रुक कर ही नायक के पास जाया करती है।

(३) 'उपवन' का मानवीकरण है।

(४) छन्दो मे चित्रोपमता है। इन्हे पढकर आखो के सामने चित्र खिचता चला जाता है।

देखता हूं ······ आदान।

शब्दार्थ—इन्द्रधनुषी = इन्द्र धनुष जैसा, रगीन, कुमुद कला = चांदनी, अन्तर्धान = लीन, अन्तर्मुखी, आदान = बदला, पुरस्कार।

सदर्भ—वर्षा ऋतु मे प्रकृति आनन्द-क्रीडाओ मे लीन प्रतीत होती है परन्तु कवि को प्रकृति का प्रत्येक मधु व्यापार झुलसाता हुआ प्रतीत होता है।

व्याख्या—कवि कहता है कि जब मैं चादनी को अपना पतला, इन्द्र धनुष के समान विविध वर्णों वाला बादलो का घूंघट उठाकर कुछ निहारते हुए देखता हू अर्थात रगीन और झीने बादलो मे से जब चन्द्रमा दिखाई पडता है तो हे बालिके! मेरे हृदय मे तुम्हारे चन्द्रमा से मुख की स्मृति नवीन हो उठती है। मैं तुम्हारे स्वरूप का चिन्तन करता हुआ अपनी सुध-बुध खो बैठता हूं। पता नही उस क्षण मेरे प्राण तुम से न जाने क्या पाना चाहते हैं। अभिप्राय यह है कि यद्यपि तुम्हारी अनुपस्थिति मे चन्द्रमा आदि तुम्हारी स्मृति को नवीन बनाकर मेरे लिए और दाहक बन जाते हैं और मैं तुम्हारे ध्यान मे लीन होकर बेसुध हो जाता हू फिर भी मेरे प्राण तुम्हारे चिन्तन से

विग्त नही होते । तुम्हारे चिन्तन मे भी एक प्रकार का आनन्द-लाभ होता है; यही प्राणों को मिलने वाला पुरस्कार है ।

विशेष—(१) वर्षा ऋतु में आख मिचौनी का खेल सा खेलता हुआ चन्द्रमा वडा मोहक प्रतीत होता है । कवि ने झीना, इन्द्र धनुष के रगो वाला रेशमी घू घट पहना कर उसे और भी मनोहर वना दिया है ।

(२) 'अन्तर्धान' शब्द से कवि का अभिप्राय यह है कि वह अपनी चेतना से अदृश्य हो जाता है, उसे अपने अस्तित्व का ध्यान ही नही रहता ।

(३) स्पर्श कल्पना का सुन्दर उदाहरण है ।

वादलों के···· ··· गिरि पर ।

शब्दार्थ—छायामय मेल=छाया के समान मिलन, ऐसा मेल जिसमे एक की दूसरे पर छाया पडे, अवनि औ' अम्बर=पृथ्वी और आकाश, शैल=पर्वत, शिखर=चोटी, मरुत रखवाल=वायु रूपी चरवाहा, वेणु=वाँस, वशी, मेमनो=भेड के वच्चे, कुदकते थे=कूदते थे, प्रमुदित=प्रसन्न होकर ।

सन्दर्भ—विरही कवि के द्वारा प्रकृति का वर्णन किया गया है ।

व्याख्या—कवि को प्रकृति मे मिलन के दृश्य दिखाई पडते है। आकाश मे वादल परस्पर मिल रहे हैं, उनकी छाया एक दूसरी को स्पर्श करती है । यह दृश्य कवि के नेत्रो मे वार-वार घूमता रहता है कभी पर्वत घने वादलो से आच्छादित होकर वादल से प्रतीत होते हैं, कभी वादल इतने नीचे उतर आते हैं कि पर्वत शिखर वादलो से ऊपर स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं । इस प्रकार वादलों के धरती और आकाश के वीच के विस्तार को देखकर ऐसा लगता है मानो पृथ्वी और आकाश परस्पर मिलकर क्रीडा कर रहे हों । पर्वतीय प्रदेशो में गडरिये भेडो की निगरानी करते हुए जव विचरण करते हैं और मस्ती मे आकर वशी से मधुर ध्वनि में जव कोई राग अलापते हैं तो वर्षा ऋतु के स्फूर्तिप्रद वातावरण मे मधुर ध्वनि को सुनकर मेमने खुशी से उछलने फुदकने लगते हैं । इधर पर्वतो पर वहने वाली हवा से वासो से मधुर ध्वनि निकलने लगती है और वादल प्रसन्न मेमनो के से रूप धर-धर कर वायु के प्रवाह से इधर-उधर वहने लगते है ।

विशेष—(१) समासोक्ति अलकार द्वारा प्रकृति के माध्यम से नायक नायिका की केलि-क्रीडाओ का वर्णन भी यहा हुआ है ।

(२) कवि ने प्रकृति की क्रियाओ में मानव-व्यापारो का आरोप किया है ।

(३) अन्तिम चार पक्तियो मे उपमा से पुष्ट सागरूपक है ।

द्विरद ·· गजवर ।

शब्दार्थ—द्विरद-दन्तो-मे=हाथी के दातो के समान । कर-सीकर=सूँड से छोडे हुए जलकण, भूति-से=सम्पत्ति, वैभव, कटि=कमर, पटिवर=फेंटा, कमर में वाधा जाने वाला वस्त्र, गजवर=श्रेष्ठ हाथी, वडे हाथी ।

सन्दर्भ—पर्वतो पर विविध रूप धारण करते और क्रीड़ा करते हुए बादलो का वर्णन किया गया है।

व्याख्या—बादल पर्वतो से ऊपर उठते हुए कोई नया रूप धारण कर लेते थे। ऊपर उठते हुए सफेद बादल काले बादलो मे हाथी के दांतो जैसे प्रतीत होते थे। कुछ क्षण बाद ही उनका रूप बदल जाता था फिर ऐसा प्रतीत होता था मानो हाथी की सूंड से बिखराये गये जल के कण हो। हवा के प्रवाह से बादल जब तितर-बितर हो जाते हैं तो ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे किसी का यश फैल रहा हो। बादलो के द्वारा निर्मित रूप क्षण-क्षण बदलते हैं ही इसलिए कभी बादल कमर मे बाधे जाने वाले फेंटे के समान रूप धारण कर लेते थे। बादल अपने अनेक वेश बदलते जाते थे जिससे पर्वत बड़ा हाथी जैसा प्रतीत हो रहा था।

विशेष—(१) वर्षा ऋतु मे विशेषकर सायकाल मे बादल क्षण-क्षण मे रूप बदलते प्रतीत होते हैं इसीलिए कभी उनकी भेड़ की सी आकृति बन जाती है कभी हाथी की सी। कवि ने रंग और आकार के अनुसार बादलों की हाथी के दात आदि से उपमा दी है।

(२) काव्य मे यश का रग श्वेत माना जाता है। वायु के कारण तितर-बितर किये गये श्वेत रग के बादलों की उपमा यश से देना बड़ा उपयुक्त है।

इन्द्रधनु ·· ····· ·· मेघासार।

शब्दार्थ—टकार=धनुष की डोरी से होने वाली आवाज, उचक= एडिया ऊंची उठा कर, चपला=विद्युत, बिजली, विशिखो की धार= जल की धारा रूपी बाण-वर्षा, मेघासार=मेघो का फैलाव, मेघो द्वारा घिराव, द्रुत=शीघ्र, चुमकार=पुचकार कर।

सन्दर्भ—प्रस्तुत पक्तियो में बादलो से हो रही वर्षा एव चमचमाती बिजली का वर्णन काव्यमय भाषा मे किया गया है।

व्याख्या—बादलो मे बिजली चमक रही है जो अपनी चचलता के कारण पर्वत की ओर दौडती जान पडती है। कुछ समय बाद वर्षा आरम्भ हो जाती है और फिर वायु प्रवाहित होते-ही रुक जाती है। कवि रूपक बाधता हुआ कहता है कि मेघगर्जन रूपी इन्द्र धनुष की टकार को सुन कर बिजली के चचल बालक पर्वत के उस पार छुपने के लिए उछल कर चले जाते हैं। जलधारा रूपी बाण–वर्षा को देख कर डर के कारण बिजली के बादल और दौडते हैं। उन्हें डरते हुए देख कर मानो वायु को दया आ जाती है और वह तेजी से दौड कर उन्हें पुचकारता है और मेघो के फैलाव को रोक देता है।

विशेष—पत जी ने थोड़े से शब्दों मे एक बहुत बडा चित्र प्रस्तुत कर दिया है। इन्द्र धनुष की टकार सुन कर बिजली के बच्चो का उछल कर पर्वत की ओट मे जाना बाण–वर्षा के भय से और भयभीत होकर तेजी से दौडना, उन्हे भयभीत देख कर दया करके पवन का उनके पास पहुचना

और उन्हे पुचकारना साथ ही बादलो के द्वारा अपने शत्रुओ को घेरने के लिए डाले गये घेरे को रोक देना—यह सारा दृश्य बडे ही कम शब्दो मे यहा प्रस्तुत कर दिया है।

अचल ... अम्बर।

शब्दार्थ—अचल = पर्वत, विमल = पवित्र, अवनि = पृथ्वी, विपुल = अत्यधिक, व्यापकता = विस्तार, अविकार = विकार रहित, न बदलने वाला, सत्वर = शीघ्र, विहगम = पक्षी, सुहाता था = सुशोभित लग रहा था, अम्बर—आकाश।

सन्दर्भ—पर्वत पर छाये हुए बादलो के ऊपर उठ कर आकाश मे विलीन होने से जो दृश्य प्रस्तुत हुआ उसी का इन पक्तियों मे वर्णन किया गया है।

व्याख्या—बादल पर्वत से उठ-उठ कर अनन्त मे जब विलीन हो जाते थे तब बादलो रहित आकाश भी स्पष्ट दिखाई देने लगता था। पर्वत और आकाश के बीच कोई बाधा न रह जाने से नीला आकाश पर्वत पर बैठा हुआ पक्षी सा कवि को प्रतीत होता था। कवि उत्प्रेक्षा करता है कि बादल बादल नही थे वरन् वे तो पर्वत के स्वच्छ विचार थे जो कुछ समय बाद उड कर अनन्त के विस्तार मे लीन हो गये। ऊपर जो नीला आकाश दीख पडता था वह पर्वत पर बैठा हुआ कोई सुन्दर पक्षी था।

विशेष—१ यहा समासोक्ति द्वारा यह बताया गया है कि योगी के विचार सासारिक माया-मोह को त्याग कर उन्नत होकर ब्रह्म में लीन हो जाते हैं।

२ पर्वत का मानवीकरण किया गया है।

३ प्रस्तुत पक्तिया भी एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत करती हैं।

पपीहों की ... प्रश्नोत्तर।

शब्दार्थ—पीन=तीखी, गुरु गम्भीर = बहुत गम्भीर, घहर = बादलो की गर्जना, दादुर=मेढक, शैल = पर्वत, पावस = वर्षा ऋतु।

सन्दर्भ—प्रस्तुत पक्तियो मे कवि द्वारा अपनी भाषा में पर्वत और वर्षा ऋतु मे हुए वार्तालाप को प्रस्तुत किया गया है।

व्याख्या—पपीहो की तीखी पुकार, झरनो की झर-झर की आवाज, झींगुरों की हल्की झनकार, बादलो की गम्भीर गर्जना, वर्षा की बूदों की छनननी सी छनकार की ध्वनि और मेढको के टर्र-टर्र के दुहरे स्वर बड मोहक लगते थे। ये ऐसे प्रतीत होते थे जैसे पर्वत और वर्षा ऋतु के बीच प्रश्नोत्तर हो रहा हो। पर्वत पपीहों के माध्यम से कुछ पूछ रहा था और वर्षा ऋतु मेघो की गम्भीर गर्जना द्वारा उसका उत्तर दे रही थी। पर्वत झरनो के झर-झर स्वर मे प्रश्न करता था जिसका उत्तर बरसात बूदो की झनकार द्वारा

देती थी। जब पर्वत झीगुरो की झीनी झनकार मे कुछ पूछता तो वर्षा मेंढको की टर्र-टर्र की आवाज मे उसका उत्तर दे रही थी।

विशेष—१. पपीहो की पीन पुकार, निर्झरों की भारी झर-झर, झीगरो की झनकार, घनो की गुरु गम्भीर लहर बिन्दुओ की छनती छनकार और दादुरो के दुहरे स्वर; ऐसी ध्वनि का वर्गीकरण पंत के अतिरिक्त विरला ही कोई कवि कर पाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति के इस सुकुमार कवि ने प्रकृति के हर पहलू का बडी ही बारीकी से निरीक्षण किया है। जीवो की ध्वनियो को बडे ध्यान से सुना है और अपनी प्रतिभा से उनमे अन्तर स्पष्ट कर दिया है।

२. प्रस्तुत पक्तियो मे पर्वत और पावस का क्रमश नायक और नायिका के रूप मे वर्णन हुआ है। पर्वत और पावस को वार्तालाप करते हुए कवि ने देखा है इससे स्पष्ट है कि उसे अपनी प्रेयसी की याद ने अवश्य सताया होगा। व्यक्ति अपनी भावना के अनुरूप ही प्रकृति के व्यापारो का अर्थ प्राय: लगाया करता है।

३ प्रस्तुत छन्द मे ध्वन्यार्थ व्यजना अपूर्व है। ध्वनि से ही अर्थ स्पष्ट कर देने की जैसी क्षमता इस वयोवृद्ध कवि मे है वैसी कदाचित् किसी मे नही है। प्रस्तुत छन्द कवि के श्रेष्ठतम उदाहरणों मे रखा जा सकता है।

४. अनुप्रास एव क्रमालकार हैं।

खैंच ·····　　　　　　　　　　　　　　　　　　· साकार।

शब्दार्थ—ऐंचीला=तना हुआ, भ्रू-सुरचाप=भौंह रूपी इन्द्र धनुष, मृदुकूल=सुन्दर वस्त्र, आचल, झलमल=झिलमिलाता हुआ, जलद-पट=बादल रूपी वस्त्र या घूंघट, चपला=बिजली, भग्न=टूटा हुआ, व्यथा से युक्त, भूधर=पर्वत।

सन्दर्भ—पावस ऋतु क्या आई कवि के लिए तो वेदना का पहाड उठा लाई है। जिस पर्वत को बालिका बादल घर कहा करती थी, उस पर्वतीय दृश्य की स्मृति कवि को बार-बार आती है और बार-बार उसका हृदय बालिका की याद मे छटपटा उठता है। प्रकृति की सुन्दर से सुन्दर वस्तु उसे अब कष्टप्रद बन गई है।

व्याख्या—कवि कहता है सुमुखि ! पर्वत के विविध दृश्यो को देख कर मुझे तुम्हारी ही याद आने लगती है। पर्वत की वह स्मृति मेरे टूटे हुए हृदय में इतनी वेदना भर देती है मानो पर्वत ही मेरे हृदय पर आ बैठा हो। इन्द्र धनुष को देख कर मुझे तुम्हारी वक्र भौंहो का स्मरण हो आता है। वर्षा ऋतु में पर्वत पर लहराती हरियाली मुझे हवा मे लहराते तुम्हारे सुन्दर आचल की याद दिला देती है। पर्वत से गिरते हुए झरनो का चमकता हुआ स्वच्छ जल तुम्हारे वक्ष पर हिलते मोती के हार का स्मरण कराता है। बादल रूपी घू घट उठा कर जिस समय चन्द्रमा झाकता दीख पडता है उस समय मेरी स्थिति बडी दयनीय हो जाती है, मुझे ऐसा लगता है मानो तुम्ही अपना

घूंघट उठा कर अपना मुख दिखा रही हो। पल-पल पर चमकने वाली बिजली तो तुम्हारे ही पलको का उठना और गिरना है। पर्वत प्रदेश की ये सभी वस्तुयें अपनी ओर आकर्षित करके भी तुम्हारी स्मृति का डक सा मार कर मुझे विकल कर देती हैं।

विशेष—प्रकृति की वस्तुओ पर अपनी प्रेयसी की वस्तुओ का आरोप किया है। प्रकृति का यह वर्णन उद्दीपन रूप मे हुआ है।

२ 'खैंच ऐंचीला भ्रू सुरचाप'—सुन्दर भौंहो के कटाक्ष का प्रतीक है।

३ 'ऐंचीला' एव 'झलमल हार' ध्वन्यर्थक शब्दो का प्रयोग बडा सुन्दर है ?

४ कवि प्रस्तुत कविता के आरभ मे ही वेदना को काव्य और सगीत का जनक मान चुका है। यहा भी प्रकृति के उपादानो का इस प्रकार से वर्णन किया गया है कि उसके हृदय पर वेदना पर्वत का आकार धारण करके ही आ बैठा है।

ग्रन्थि से

कथ्य—यह कविता पतजी के 'ग्रन्थि' शीर्षक एक स्वतन्त्र काव्य का अश है। इसकी पूर्व कथा इस प्रकार है। एक बार कवि नौका विहार कर रहा था। एकाएक उसकी नौका जल मे डूब गई। एक बालिका ने डूबते हुए कवि को बचा लिया और जब कवि को होश आया तो उसने अपने सर को बालिका की जाघो पर रखा हुआ देखा। कवि की आखें खुली और उसकी दृष्टि एक साथ बालिका के चन्द्रमुख एव आकाश के चन्द्रमा पर पडी। आकाश के चन्द्रमा से भी अधिक सुन्दर उसे बालिका का चन्द्रमुख प्रतीत हुआ। कवि ने उससे प्रणय याचना की परन्तु बालिका लज्जित हो गई। कवि ने उसकी शान्ति का कुछ और ही अर्थ लगाया। दोनो पृथक् हो गये परन्तु दोनो के हृदय मे स्मृति की अग्नि जल रही थी। कुछ समय उपरान्त कवि के देखते ही देखते बाला का हाथ किसी दूसरे के हाथ में दे दिया गया। इस ग्रन्थि-बन्धन का कवि पर गहरा आघात हुआ और कवि के नेत्रो से सदा अश्रु-धारा उमडती रहने लगी। यही 'ग्रन्थि' खण्ड काव्य की अत्यन्त लघु कथा है, बसत ऋतु की एक सुहानी सन्ध्या मे जो आरभ हुई थी।

प्रस्तुत अश का साराश यहा दिया जा रहा है। कवि को होश आया तो उसके नेत्र आकाश मे स्थित चन्द्रमा और बालिका के चन्द्र-मुख पर एक साथ ही पडे। चन्द्रमा उदय होने के कारण लाल था और बालिका का मुख लज्जा और सकोच के कारण लाल था। बालिका का मुख चन्द्रमा से भी अधिक सुन्दर लग रहा था। उसके मुख पर एक काली बालो की लट लटक रही थी जो उसके मुख के सौन्दर्य की प्रमुखता प्रकट कर रही थी जिस प्रकार कि काव्य मे किसी शब्द या वाक्य को रेखाकित करके सम्पूर्ण काव्य मे उसका विशेष महत्व दिया जाता है। कवि के नेत्र बालिका के नेत्रो से मिले तो दोनों के शरीर मे रोमाच हो उठा और उनका प्रेम सम्बन्ध और गहरा हो गया। बालिका मुस्कराती थी तो उसके गालो मे गड्ढे पड़ जाते थे। कवि ने बालिका से विनम्र शब्दो मे यह प्रार्थना की कि हे कमलिनी! जिस आहत भ्रमर को तुमने हृदय से लगा कर जल की एक तरग से बचाया है उसे अपने सौंदर्य की दूसरी तरग मे क्यो डुबा रही हो? अनेक प्रकार से कवि ने बालिका से प्रेम याचना की परतु बालिका ने कवि के प्रश्नो का कोई उत्तर नही दिया। कवि ने बालिका को कठोर हृदय वाली कह कर और कठोर होना एक गुण बतला कर अपना अभीष्ट पूरा करना चाहा। आगे कवि ने बालिका को यह भी समझाया कि दान का महत्व तभी है जब वह दीन असमर्थ जन को दिया गया हो। उसने अपने आपको प्रेम शून्य और निराश हृदय वाला बतला कर प्रेम का पात्र सिद्ध करने का प्रयास किया। कवि समझा रहा था कि दीन व्यक्ति को यदि किसी की थोडी भी करुणा मिल जाती है तो वह उसका बढ़ा-चढा कर वर्णन करता है। कवि की बातें सुनकर बालिका ने कोई उत्तर

नही दिया इसलिए कवि की उत्सुकता बढती जा रही थी। ज्योही बालिका ने अपने नेत्रो से उसकी ओर देखा तो कवि के नेत्र प्रसन्नता और उत्साह से चमक उठे।

कहा जाता है कि प्रस्तुत कविता मे वर्णित घटना का कवि के जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। इसलिए दो हृदयो के प्रथम मिलन का इतना भावात्मक और अनुभूति-गम्य चित्रण हो सका है।

इन्दु पर काव्य मे।

शब्दार्थ—इन्दु = चन्द्रमा, इन्दु-मुख = चन्द्रमा रूपी मुख। रक्तिम = लाल, पूर्व को पूर्व था = पहला चन्द्रमा (आकाश का) पूर्व दिशा मे था, द्वितीय = दूसरा चन्द्रमा अर्थात् बालिका का मुख। अपूर्व = अनोखा, बाल-रजनी = रात्रि का बाल्यावस्था अर्थात् रात्रि के आरम की स्थिति जबकि वह अधिक अन्धकारमय नही हुई होती है, अलक = लट, केश, वदन = चेहरा, रेखाकित = किसी को रेखा से अकित करना, किसी के नीचे रेखा खीच देना, सुछवि = सौंदर्य।

सन्दर्भ—सचेत होन के उपरान्त कवि ने चन्द्रमा और बाला के चन्द्र-मुख को एक साथ ही देखा। दोनों मे उसे बाला का चन्द्रमुख अपूर्व लगा। यही प्रस्तुत पक्तियो में वर्णित है।

व्याख्या—कवि कहता है कि ज्योही मेरी मूर्छा भग हुई मेरी दृष्टि आकाश मे स्थित चन्द्रमा पर और बालिका के चन्द्र-मुख पर एक साथ ही पडी। चन्द्रमा अभी उदय हुआ था इसलिए लाल था और बालिका का मुख लज्जा के कारण लाल हो गया था। पहला चन्द्रमा जो आकाश मे स्थित था पूर्व दिशा मे उदित हुआ था, यह दूसरा चन्द्रमा अपने सौन्दर्य के कारण अपूर्व लग रहा था। उसका सौन्दर्य अतुल एव निरूपम था। बाला का मुख चन्द्रमा से भी अधिक सुन्दर था। आकाश के चन्द्रमा के चारो ओर रात्रि का हल्का सा अन्धकार बिखरा हुआ था इधर धरती का चाद अर्थात् बालिका का मुख एक काली बालो की लटा से सुन्दर लग रहा था। वह कोमल लट बाला के चेहरे के नीचे समीर के झोंके से हिल रही थी परन्तु झोके के बन्द होते ही लट स्थिर हो जाती थी तब लट ऐसी प्रतीत होती थी मानों उस सुन्दरी बाला के सम्पूर्ण सौंदर्य मे सुन्दर मुख की प्रमुखता बतला रही हो, सुन्दर मुख को रेखांकित कर रही हो उसी प्रकार जिस प्रकार कि सौंदर्य का वर्णन करने वाले काव्य मे किसी शब्द या वाक्य को रेखाकित करके उस शब्द या वाक्य का सर्वाधिक महत्व प्रकट किया जाता है।

विशेष—१ 'रेखाकित' शब्द का प्रयोग काव्य मे ही प्राय होता रहा है परन्तु पतजी ने इस प्रकार प्रयुक्त करके इसके प्रयोग का क्षेत्र और विस्तृत कर दिया है। कोई पक्ति या शब्द जिसका महत्व दूसरों की अपेक्षा अधिक प्रदर्शित करना होता है काव्य में रेखाकित कर दिया जाता है। पतजी ने उत्प्रेक्षा की है कि यद्यपि बाला का सारा शरीर अत्यन्त सुन्दर था परन्तु

उसका मुख सभी अ गो से अधिक सुन्दर था इसलिए मुख पर लटकती हुई लट उस सुन्दर मुख को मानो रेखांकित कर रही थी ।

२. अतुकांत होते हुए भी इस छन्द की पंक्तियां बड़ी सुन्दर है । कवि ने आकाश के चन्द्रमा को बाला के मुख से कम सुन्दर बतलाया है । यहां उपमान से उपमेय की विशिष्टता दिखाई गई है इसलिये व्यतिरेक अलंकार है । इसके अतिरिक्त इस छन्द में रूपक, यथाक्रम, दीपक, यमक, श्लेष, और मानवीकरण उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास और पुनरुक्ति अलंकार हैं ।

३. सम्पूर्ण छन्द में प्रस्तुत और अप्रस्तुत का अद्भुत सामंजस्य है ।

एक पल ....सौन्दर्य के ।

शब्दार्थ—दृग = नेत्र, सहज = अनायास, चपलता = चंचलता, विकंपित = कांपते हुए, पुलक = रोमांच, प्रणय = प्रेम, मादक सुरा = ऐसी शराब जिसके पीने से नशा हो जाय । सस्मित = मुस्कान से युक्त, आवर्त = भंवर, तरुण = जवान ।

सन्दर्भ—कवि को मूर्छा से जागते ही यकायक चन्द्रमा और बाला का चन्द्रमुख दिखाई पड़ा । उसे बाला का मुख अधिक सुन्दर प्रतीत हुआ । बाला के उस सौन्दर्य का ही प्रस्तुत पंक्तियों में वर्णन किया गया है ।

व्याख्या—कवि कहता है क्षण भर के लिए बाला के और मेरे पलक उठे, दोनों के नेत्र मिले परन्तु लज्जावश अनायास ही नीचे झुक गये । नेत्रों की इस चपलता ने दोनों के शरीर में पुलक का कम्पन भर दिया, शरीर रोमांचित हो उठे और हम दोनो का प्रेम-सम्बन्ध और भी दृढ़ हो गया । दोनो के शरीर का रोमांचित होना प्रेम को प्रकट करने के लिए पर्याप्त था । बाला के कपोल लज्जा के कारण लाल हो गये । उसके कपोल ताजे खिले हुए गुलाब के समान तो थे ही परन्तु लज्जा के कारण उन पर छाई हुई लालिमा से उनका सौन्दर्य और भी द्विगुणित हो उठा । उनका सौंदर्य शराब के समान मादक बन गया, देखने वाले को आकर्षित करके बेसुध-सा कर देने की क्षमता उसमें आ गई थी । मुस्कराते समय उस बालिका के कपोलो में गड्ढे पड जाते थे जो ऐसे सुन्दर प्रतीत होते थे मानो अधखुली सीप से सौंदर्य की बाढ छलकी पड रही हो । कपोलो के इन गड्ढो का सौंदर्य भंवर के समान किसी के भी नेत्रो को उसी प्रकार अपने अन्दर फंसा लेने वाला था जिस प्रकार जल मे पडी हुई भंवर नौका को अपने अन्दर फंसा लेती है और नौका का उससे बाहर निकलना दुष्कर हो जाता है । नौका प्राय डूब ही जाती है । ऐसा व्यक्ति जो युवक हो जिसमे सौंदर्य युवावस्था के कारण अपनी चरम सीमा पर हो, कौन है जिसके नेत्र बालिका के गड्ढो के रूप के आवर्त मे नौका के समान चक्कर काट कर नहीं डूबे ? अर्थात् उस बाला के गड्ढो-के सौंदर्य से प्रभावित हुए बिना कोई नही बचा । मै भी उसके सौंदर्य से प्रभावित होने से अपने को नहीं बचा सका ।

विशेष—(१) यहा प्रस्तुत के द्वारा अप्रस्तुत का बडा चमत्कारपूर्ण

वर्णन हुआ है। बाला के कपोलो के गड्ढे हैं, रूप के भवर हैं और यौवन के भार से बोझिल नेत्र भवर मे फसी नौका हैं। मुस्कराते समय कपोलो में गड्ढे पड जाने से मुख का सौन्दर्य और भी बढ जाता है।

२ किसी वस्तु का किसी के अन्दर घुस कर निकल आना सरल है, धसकर निकलना थोडा कठिन है परन्तु अटक कर निकलना और भी कठिन है।

३ इस छन्द मे उपमा और रूपको का बाहुल्य है। प्रथम चार पक्तियो मे सहोक्ति और उत्प्रेक्षा अलकार हैं।

जब प्रणय' '' ''' ''' '''कान्ति हो।

शब्दार्थ—मूकता = मौन, विनत = विनीत, सलिल-शोभे = पानी के समान स्वच्छ एव कान्ति-युक्त, कमलिनी, पतित = गिरा हुआ। आहत = घावयुक्त, चोट खाया हुआ। सदय = दया करके। कटक = काटा, विद्ध हो बिधकर, सरस = रस से भरा हुआ, मलिन = मैला, तिमिर = अ धकार, अरुण कर = लाल हाथ, सूर्य की किरणें, कनक आभा = स्वर्णिम कान्ति, तम = अ धकार, प्रणय-कलिका = प्रेम की कली, काति = आभा, चमक।

सन्दर्भ—जब कवि की मूर्छा जागी और उसने अपने सर को बाला की गोद मे रखा हुआ पाया तो वह बाला के अपूर्व सौंदर्य से अभिभूत हो उठा। कवि ने बाला के नेत्रो से ही उसके स्नेह का अनुमान कर लिया। इसलिये वह कहता है कि—

व्याख्या —यद्यपि उस बाला ने अपनी रसना से कोई बात नही कही फिर भी उसके चपल नेत्रों ने उसके प्रेम का रहस्य कह दिया था। उसका मौन ही मेरे हृदय को स्नेह का पहिली बार परिचय देने के लिए पर्याप्त था। उसके प्रेम का परिचय प्राप्त करने के उपरान्त उसके पास बैठकर शान्त होकर विनम्र शब्दो मे बडे यत्न से मैंने बालिका से इस प्रकार कहना आरभ किया—कि कमलिनी ! जिस गिरे हुए और चोट खाये हुए भ्रमर को तुमने दया करके अपने हृदय से लगा लिया है और इस प्रकार उसे एक चचल तरग से बचाया है, उसी को अब दुसरी तरग में क्यो डुबाती हो ? तुमने मुझे सरोवर मे डूबने से बचाकर स्नेह भरी दृष्टि मे जब देख लिया है तो अपने सौंदर्य के लिए मुझे क्यो तडफाती हो ? जो फूल अचानक प्रेम के काटे से बिधकर वृक्ष से पृथक् हो चुका है क्या उसे तुम दया से द्रवित अपने हृदय मे स्थान देकर पुन सुन्दर रूप से नही खिला दोगी ? अभिप्राय यह है कि मेरा हृदय तुम्हारा प्रणय प्राप्त करने के लिए विह्वल रहता है क्या तुम दया करके उसकी उत्कट अभिलाषा को पूरी नही करोगी ? क्या तुम मुझे अपने हृदय में स्थान देकर मुझे प्रसन्न नही करोगी ? प्रात कालीन सूर्य की लाल किरणें अन्धकार का मलिन हृदय छूकर अर्थात् अ धकार को दूर करके अपनी स्वर्णिम कान्ति से कमल को खिला देती है। हे प्रिये ! प्रेम के लिए निराशा का अ धकार मेरे हृदय मे व्याप्त है उसे अपने अनुराग रूपी किरण से मिटा कर तुम्हीं मेरे हृदय-कमल को प्रस्फुटित कीजिये। अन्धकारमय मेरे हृदय की प्रणय-कलिका

विकसित करने के लिए तुम्ही एक कान्ति हो अर्थात् तुम्हारा प्रेम प्राप्त करके मेरे प्रेम की कली उसी प्रकार खिल उठेगी जिस प्रकार सूर्य की प्रथम किरण पाते ही कली प्रस्फुटित हो उठती है।

विशेष—१. प्रथम चार पंक्तियां गद्य मे लिखी गई हैं। इन पंक्तियों को एक गद्य-वाक्य मे लिखा जा सकता है।

२. जो सुमन कण्टक से विद्ध हो गया हो साथ ही वृक्ष से पृथक् भी हो गया हो, उसमें किसी का आश्रय पाने की कितनी छटपटाहट होगी, सहज ही अनुमान किया जा सकता है। पंत जी के मन की यही स्थिति है।

३. 'तिमिर' एवं 'अरुण कर' मे मानवीकरण है।

यह विलम्ब ····   · प्रति से।

शब्दार्थ—वालुका=वालू, निठुर=निष्ठुर, कठोर, गिरि शिलायें=पर्वत की चट्टानें, म्लान=कुम्हलाया हुआ, दुखी। तम=अन्धकार, कलाधर=चन्द्रमा, कौमुदी=ज्योत्स्ना, चांदनी, धवल=श्वेत, विकम्पित=कांपते हुए।

सन्दर्भ—बालिका से कवि ने नम्र वाणी मे बहुत कुछ निवेदन किया परन्तु संकोचशील उस बाला ने कोई उत्तर नही दिया। इसलिए कवि पुनः उससे कहता है—

व्याख्या—हे कठोर हृदय वाली! मुझे तुमसे आग्रह करते-करते काफी समय हो गया है परन्तु एक तुम हो कि कोई उत्तर नही देती हो। आश्चर्य है कि इतने अधिक समय में तुम कुछ भी नही बोली हो। तुम निश्चय ही बड़े कठोर हृदय वाली हो। बालू यद्यपि ऐसी होती है कि उससे किसी सहारे की आशा नही की जा सकती परन्तु जल मे डूबता हुआ कोई व्यक्ति यदि सहारे के लिए उसे पकड़ता है तो बालू भी उसे बचा लेती है। कठोर हृदय वालो का मुझे बड़ा भरोसा रहा है। पर्वत की कठोर चट्टानो का सहारा लेकर ही निडर और निश्चिन्त रहा जा सकता है-बालू का सहारा लेकर नही। तुम कठोर हो, इसलिए मुझे विश्वास है कि तुम सहारा देकर मेरी रक्षा करोगी।

घने अंधकार मे ही चन्द्रमा की कला श्वेत चांदनी के रूप मे प्रकट होकर यश की अधिकारिणी बनती है अर्थात् रात्रि के अन्धकार मे ही चन्द्रमा की चांदनी छिटकती है सूर्य के प्रकाश मे नही। इसी प्रकार असहाय गरीब और दुर्बल व्यक्ति को प्रीति से दान दिया जाता है उसी दान का महत्व होता है। समर्थ को दान करके दाता का कुछ महत्व नही बढ़ता। दाता के द्वारा गरीब को यदि थोड़ी वस्तु भी दी जाय तो गरीब व्यक्ति उस वस्तु को कई गुना बढ़ा कर दूसरों को बताता है और कृतज्ञता सूचक अश्रु उसके नेत्रो मे छलक पड़ते हैं, मैं भी तुम्हारे प्रेम का उपयुक्त पात्र हूं। किसी अयाचक को दिया गया तुम्हारा दान निष्फल होगा।

विशेष—१. कवि बालिका से पहले विनम्र वाणी में बहुत निवेदन कर

चुका है परन्तु बालिका से किसी प्रकार का उत्तर जब उसे न मिला तो बालिका को उसने 'कठोर हृदया' सम्बोधन का प्रयोग किया है।

२ दृष्टान्त और विरोधाभास अलकार है। अन्योक्ति का सुन्दर प्रयोग है। अतिम दो पक्तियो में विशेषण विपर्यय (Transferred Epithet) नामक अलकार है क्योकि दीनता का पात्र विकम्पित नही होता दीन का होता है।

प्रिय ··· ··· सदा।

शब्दार्थ—निराश्रिति=दीनता, शिथिल=ढीली, प्रलोभन=लोभ, अल्पता=कमी, अभाव, दयानिल=दयारूपी समीर। उपकृति=उपकार, सजल=कृतज्ञतापूर्वक, मानस = मन, क्षीण=छोटा, करुणा-लोक=कृपा का प्रकाश, प्रतिविम्ब=परछाई, वृहत्=वड़ा।

सन्दर्भ—कवि वालिका से काफी देर तक प्रणय याचना करता है परन्तु वालिका मौन ही रहती है। यह देख कर कवि उसे यह वतलाना चाहता है कि तुम्हारी मिन्नत करते हुए शाघ्र ही थकने वाला नही हू, साथ ही यह भी वतला देना चाहता है कि तुम्हारी कृपा से मैं स्वय को बहुत अनुग्रहीत मानू गा।

व्याख्या—हे प्रिये! दीन व्यक्ति की कठोर वाहे थोडे से प्रलोभन के द्वारा झुकती नही हैं। जब तक अपनी अभितृषित वस्तु वह प्राप्त नही कर लेता तब तक अपनी भुजाओ को वह फैलाये ही रखता है, छोटी वस्तु के लोभ से अपनी भुजायें सिकोड नही लेता। अभावग्रस्त व्यक्ति के ऊपर यदि कोई व्यक्ति दया करता है अपनत्व दिखाता है तो उस दीन व्यक्ति की दीन भावना के कारण सिकुडी हुई आखें कृतज्ञता के सूचक आसू वहाने लगती हैं।

दीन व्यक्तियो का हृदय वहुत जल्दी द्रवित हो जाता है। जिस प्रकार वायु चलने से सरोवर मे असख्य लहरें उठने लगती हैं उसी प्रकार किसी के द्वारा किये गये थोडे से उपकार से भी दीन व्यक्ति में पुलक की लहरें उठने लगती हैं। वह प्रसन्नता से फूल उठता है। मानसरोवर के जल पर पडने वाला थोडा सा प्रकाश भी उसकी असख्य लहरो में प्रतिविम्वित होकर विस्तृत दीख पडता है। उसी प्रकार अपने प्रति प्रदर्शित दूसरों की करुणा को दीन व्यक्ति बहुत वढा-चढा कर गाता फिरता है। अभिप्राय कवि के कथन का यही है कि यदि वालिका उससे प्रणय करने लग जाय तो कवि उसका भारी अहसान मानेगा।

विशेष—१. कवि को चाहिए था कि प्रथम वार परिचय के समय वालिका का सम्वोधन उसके नाम के आगे 'जी' लगाकर करता अथवा आप कह कर करता (आज के शिष्टाचार के अनुसार) परन्तु वह तो वालिका को 'प्रिय' सलिल-शोभे' जैसे शब्दों से सम्वोधित कर रहा है। इससे प्रतीत होता है जैसे उनका परिचय पुराना हो।

२. सागरूपक अलंकार है। 'अल्पता' मे मानवीकरण है।

शरद······ ······घर सदा।

शब्दार्थ—तिमिर=अंधकार, मादक=नशीला। मूकता=खामोशी, मौन। अपाग=आख की कोर, आख का कोना, अनोखी=विचित्र, वारि=जल।

सन्दर्भ—कवि बालिका के लिए 'कठोर हृदये' जैसे कडे शब्द प्रयुक्त करके डरता है कि कहीं वह रूठ न जाये और उनकी सारी मिन्नत खाक मे मिल जाय। इसीलिए वह उसकी खुशामद सी करता जाता है।

व्याख्या—हे प्रिया! ऐसा प्रतीत होता है कि तुम अपने मुख से बिना कुछ कहे ही अपने हाथ के स्पर्श मे सब कुछ कहे दे रही हो, जिस प्रकार शरद ऋतु के निर्मल अन्धकार मे प्रथम बार मिलने वाले प्रेमी-प्रेमिका के पलक प्रणय के मद से झूमने लगते है, नशा करने वाले व्यक्ति के मदमस्त नेत्रो की समता करने लगते हैं उसी प्रकार तुम्हारे इस मौन की आड मे मादकता से भरा कोई हाथ मुझे स्पर्श कर रहा है। अभिप्राय यह है कि यद्यपि तुम मौन हो परन्तु तुम्हारे हाथ का स्पर्श यह सकेत कर रहा है कि तुम्हारे हृदय मे भी प्रथम मिलन के समय उत्पन्न होने वाली मादकता विद्यमान है। तुम प्रणय मे विह्वल हो रही हो परन्तु मौन रह कर कहती नहीं हो।

क्या प्रेम की रीति ऐसी ही विचित्र है कि प्रिया प्रियतम की ओर सीधी नजर से न देख कर थोडा चेहरा घुमा कर नेत्रो की कोर से ही देखती है। यदि प्रणय विह्वल प्रेमिका इसी प्रकार देखा करती है तब तो प्रेम की रीति सचमुच बडी ही विचित्र है क्योकि जिससे जितना अधिक प्रेम उसे उतनी ही टेढी दृष्टि से देखा जाय, इससे अधिक और क्या विचित्र बात होगी। प्रेम की रीति का अनोखापन बतलाता हुआ कवि आगे और भी कहता है कि प्रेमी-प्रेमिका ज्यो-ज्यो दूर होते जाते हैं वैसे ही वैसे प्रेम प्रगाढ होता जाता है। जिस प्रकार प्यासा व्यक्ति पहले तो पेट भर कर पानी पीले और बाद मे पिलाने वाले से उसका घर पूछे, उसी प्रकार प्रेम पहले होता है और प्रेमी-प्रेमिका अपना परिचय बाद मे देते हैं। अभिप्राय यह है कि साधारण व्यवहार में पहले व्यक्ति का परिचय पूछ लिया जाता है तदुपरान्त उसे प्रश्रय दिया जाता है परन्तु प्रेम की रीति की यही तो विचित्रता है कि यहा इसका उल्टा होता है—पहले प्रेम तदुपरान्त परिचय।

विशेष—प्रणय-विह्वल स्थिति मे इन्द्रियो में शैथिल्य, एक प्रकार की मादकता आ जाती है।

२ प्रेम की रीति को अनोखी बताने का कष्ट तो अब तक बहुत से सहृदयों ने उठाया है परन्तु उसकी ऐसी व्याख्या कदाचित् किसी ने नहीं की।

३. प्रेमियो के प्रेम मे घनत्व तो विछोह में ही होता है। वियोगावस्था में प्रेम के अन्दर विद्यमान कालुष्य मिट जाता है, हृदय उदात्त हो जाता है। उद्धव जब गोपियों को समझाने ब्रज मे गये तो सूर की गोपियों ने अपनी विवशता व्यक्त की थी—

इन्द्र धनुप रूपी भृकुटि पर हम चिन्ता के समान छा जाते हैं। कभी हम पर्वताकार दीख पडते हैं तो कभी धूलि-कण के समान लघु रूप धारण कर लेते हैं। हम काल-चक्र की भाति आकाश मे ऊपर-नीचे आते-जाते रहते हैं। बादल रूप लेकर ऊपर चढ जाते हैं और पानी की बूदो के रूप में नीचे उतर आते हैं। हमारे उत्थान पतन का चक्र चलता रहता है।

कभी हम हवा में महल खड़ा कर देते हैं अर्थात् महल का सा आकार बना लेते हैं कभी आकाश मे ही पुल सा बाध देते हैं। ये सारी क्रीडाए करके फिर सासारिक विभूति की तरह क्षण भर मे लुप्त हो जाते हैं। सूखे वृक्ष पर पूरे गये मकडी के जाल की तरह अपना जाल पूर कर इस सूर्य रूपी पतग को उलझा लेते हैं। कभी हम ओस रूपी हिम जल छिडक कर गर्मी से मूर्छित भी कलियो को खिला देते हैं।

हम सागर की उन्मुक्त हसी हैं, जल के धुए और आकाश की धूल हैं। हम हवा के झाग, उषा रूपी शाखा के पल्लव और पानी के बुने हुए वस्त्र हम ही है। हम आकाश मे पृथ्वी और पृथ्वी के अम्बर हैं। पानी की भस्म, वायु, वृक्ष के फूल हमी हैं। दिन मे भी अन्धकार पैदा करना हमारे लिए खेल है। संध्या के समय अपने लाल रग के कारण हम अग्नि की रुई से जान पडते हैं। आकाश मे वेल से लहलहाते दीखते हैं। हमारे चलने के कारण तारे चलते हुए प्रतीत होते हैं। हमारी गर्जन आकाश का सगीत है। तारों के प्रकाश को मन्द कर देने वाले होने से हम उनकी तन्द्रा हैं। हमारी गति के कारण ज्योत्स्ना विकीर्ण करता हुआ चन्द्रमा चलता-सा प्रतीत होता है इसलिए हम चन्द्रमा के रथ से जान पडते हैं। ग्वाला अपनी गायों को हाककर चाहे जिधर ले जाता है। उसी प्रकार पवन भी हमें गायो के समान किधर से किधर कर देता है। सूर्य की कडी मेहनत के ही हम परिणाम हैं। हम जल और अग्नि के बने झीने मडप हैं, दोनों के सयोग से हम मडप के रूप मे आकाश मे छा जाते हैं। हमाने छा जाने से आकाश सोता हुआ प्रतीत होता है। जल में पडने वाली हमारी परछाई जल-पक्षी-सी लगती है। सघन रूप धारण कर जब हम आकाश मे मथर गति से चलते हैं तो बहते हुए थल का दृश्य पैदा कर देते हैं। हम सागर की महान् कल्पना हैं। सागर की महान कल्पना का ही यह परिणाम है कि हमें यह रूप उसने प्रदान किया है।

प्रस्तुत कविता कविवर शैली की 'The cloud' कविता के आधार पर रचित जान पडती है। मानवीकरण और विरोधभास आदि के चमत्कार से यह कविता बडी कलात्मक बन गई है।

सुरपति ....ले जाता ऊपर।

शब्दार्थ—सुरपति = इन्द्र, देवों के देव, जगत्प्राण = पवन, जो जीवित रहने के लिए सर्वाधिक आवश्यक तत्व है, सहचर = साथी, मित्र, मेघदूत = सस्कृत के कवि कालिदास का प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ, सजल = तरल, सरस, सुन्दर, चिर = सदा, चातक = पपीहा, जीवनधार = प्राणों के आधार, मुग्ध = मस्त, मोहित, शिखी = मयूर, सुभग = सुन्दर, स्वाति = सत्ताईस नक्षत्रों में से एक,

मुक्ताकर=मोतियों का खजाना, विहग=पक्षी, गर्भ-विधायक=गर्भ-धारण की प्रेरणा देने वाले, जलधर=जल धारण करने वाले, पानी बरसाने वाले, जलाशय=जल के आगार, तालाब, दिनकर=सूर्य, सत्वर=शीघ्र, अविलम्ब, चल=चचल ।

सन्दर्भ—बादलो को देखकर कितने ही कवियो ने कविताएं की होंगी। बादलों के अनेक उपमान भी प्रस्तुत किये होंगे, पन्तजी ने भी बादलो का यहां वर्णन किया है परन्तु अपने ढग से। कवि के बादल अपना परिचय स्वय दे रहे हैं।

व्याख्या—देवाधिपति इन्द्र के हम ही किंकर है। इन्द्र जो देवताओ के भी अधिपति हैं उनके सेवक होना हमारे लिए गौरव की बात है। वायु जो ससारभर के जीवन का आधार है उसके हम साथी है। महाकवि कालिदास ने मेघदूत की रचना जिस कल्पना के सहारे की उसके आधार हमी हैं अर्थात् हमे देखकर ही महाकवि के भावुक हृदय मे उस सुन्दर कल्पना का आविर्भाव हुआ होगा जिसका कि परिणाम हमारे नाम पर रचित प्रसिद्ध काव्य ग्रन्थ 'मेघदूत' है। पपीहा पक्षी हमारे द्वारा बरसाये गये स्वाति नक्षत्र के वर्षाजल का पान करके ही जीवन चलता है। उसके जीवन के आधार भी हम हैं।

हमे देखकर ही मुग्ध होकर मयूर नृत्य किया करते है। स्वाति नक्षत्र मे सीपियो मे गिरी हुई हमारे जल की बूंदें ही मोती बन जाती है, हमारे आगमन पर ही पक्षियों मे गर्भ धारण करने की इच्छा प्रबल होती है। कृषक बालिकाए आशा भरी दृष्टि से जिन्हें निहारा करती हैं वे हम ही हैं अर्थात् कृषको की खेती को जल प्रदान करने वाले होने से कृषक-बालिकाए वर्षाऋतु में हमारे आगमन की ओर हम से जल पाने की आशा किया करती है।

जिस प्रकार सूर्य के उदय होते ही जलाशयो मे कमलो के समूह खिल उठते हैं उसी प्रकार वह हमे भी खिलाया करता है। क्योंकि सूर्य के ताप से उठी हुई भाप द्वारा ही हमारा निर्माण होता है। बच्चे जिस प्रकार फूलो को चुनकर फिर उन्हे नोंच-नोच कर तितर-बितर कर देते हैं, उसी प्रकार पवन हमें एकत्र कर शीघ्र ही इधर-उदर बिखेर देता है। जब सागर छोटी-छोटी चचल लहरो में पालने मे भूलते हुए बच्चे के समान झुलाता है तो पवन ही चील के समान झपट कर हमे पकड कर ऊपर उडा ले जाता है।

विशेष—१. प्रथम छन्द मे बादलों के लिए प्रयुक्त उपमान—सुरपति के अनुचर वायु के सहचर, मेघदूत की कल्पना, चातक के जीवनधर सभी महान् हैं। सुरपति और जगत्प्राण शब्दो का प्रयोग भी साभिप्राय है। सुरपति का प्रयोग इन्द्र का गौरव बताने के लिए हुआ है। ऐसा इन्द्र जो देवो का भी अधिपति है उसके किंकर और साधारण व्यक्ति के किंकर की क्या तुलना ! पवन जो जगत्भर को प्राण देता है, का सहचर होना भी महान् गौरव की बात है।

२. तृतीय छन्द में दिनकर को उपकारी समझदार व्यक्ति के रूप मे चित्रित किया गया है और 'वायु' को बालक के रूप मे। बालक की तरह वायु हमें बिखरा देती है।

३ 'चील का सा झपट्टा मारना' साधारण बोल-चाल में यकायक किसी वस्तु को बड़ी तेजी के साथ पकड़ने के अर्थ में प्रयुक्त होता है, 'कहीं चील सा झपटा' आह ! इस पंक्ति से क्षिप्रता का भाव प्रकट हो रहा है।

४ सागर की लघु लहरों पर जब बादलों की परछाईं पड़ती है तो लहरों की हलचल के कारण परछाईं भी आगे-पीछे होकर झूलती हुई प्रतीत होती है परन्तु पवन के झोंके के साथ बादल ज्योंही हट जाते हैं त्योंही तुरन्त ही उनकी परछाईं भी लहरों से लुप्त हो जाती है। इसी अर्थ में चतुर्थ छन्द में बादलों का मिलना मिल झूलना, वायु के द्वारा चील की तरह झपटकर उड़ा ले जाया जाना कहा है।

५ चतुर्थ छन्द में सागर और बादल का मानवीकरण है। प्रथम दो छन्दों में 'उल्लेख' अलंकार है।

६ कल्पना के आधार पर अप्रस्तुत चित्रों के विविध रूप अत्यन्त रम्य हैं।

भूमि गर्भ

शब्दार्थ—भूमि गर्भ=धरती के भीतर, रोमिल=रोमदार, रोयेंदार, अस्फुट=अविकसित, पंक=कीचड़, विपुल=विशाल, क्रीड़ा, कौतुक=करिश्मे, अनन्त=सीमा रहित, आकाश, निर्भय=निडर, धरते=रखते, मत्त मतंगज=मस्त हाथी, सजग=चौकन्ने होकर, सावधान होकर, शशक=खरगोश, कीश=बन्दर, नीरवता=खामोशी, चुप्पी, बृहद=विशाल, छद=पंख।

सन्दर्भ—बादलों का संसर्ग बहुत बड़ों-बड़ों से है। वे बहुत से कार्यों के कारण बनते हैं। वायु के संकेत पर वे नाचते हैं। बादल अपने क्रीड़ा कौतुक बतलाते हुए आगे कहते हैं कि—

व्याख्या—जिस प्रकार पक्षी अपने रोमयुक्त कोमल पंखों को फैलाकर अपने अंडों को सेते हैं तथा उन्हें जीवन प्रदान करते हैं, उसी प्रकार हम भी भूमि के अन्दर छिपे हुए असंख्य बीजों के पास जल रूप में जाकर इस योग्य बना देते हैं कि वे अंकुरित हो जाएं। अपने पास लगी हुई कीचड़ से भोजन उन्हें तभी मिलता है जबकि हमारे जल से बीज पुष्ट होकर अंकुरित हो जाते हैं।

तीनों भुवनों की कल्पना की विराटता का क्या वर्णन किया जा सकता है ? उसी प्रकार हमारे द्वारा धारण किये जाने वाले रूपों की संख्या भी अपार है। हम आकाश की गोद में मनचाहे अगणित रूप धर कर अनेक प्रकार से क्रीड़ाएं करते हुए निर्भय होकर विचरण किया करते हैं। हमारी क्रीड़ाओं का क्षेत्र सीमा रहित होता है।

हम कभी तो उसी प्रकार तेजी से दौड़ते हैं जिस प्रकार मृग चौकड़ी भरा करते हैं। चौकड़ी भर कर दौड़ते हुए मृग के चरणों के बीच का अन्तर पृथ्वी पर बहुत अधिक होता है। हम भी इतनी तेजी से दौड़ते हैं कि पृथ्वी

विशेष—(१) प्रस्तुत पंक्तियों में शब्द-चयन बड़ा सुन्दर है। जिस प्रकार भूतों का शरीर भयावना होता है उसी के अनुरूप 'प्रकट' और 'विकट' में ट वर्ग तथा 'महा' 'आकार' में आ की आवृत्ति आकार को भयावना और विशाल बना देती है।

(२) परियों के बच्चों के समान बादलों की कल्पना की गई है जो बड़ी मनोहर है।

अनिल विलोड़ित......................वातुल-चोर।

शब्दार्थ —अनिल विलोड़ित = हवा द्वारा मथे हुए। गगन-सिन्धु = आकाश रूपी समुद्र। उपल = ओले। तिमिर = अंधकार। घनघोर = भीषण तूल-तोम = कपास का गुच्छा। विटप = वृक्ष। दलबलयुत = सेना के साथ, झोंको के साथ। वातुल-चोर = वायुरूपी चोर

सन्दर्भ —बादल कभी भयानक आकार धारण करते हैं कभी कोमल। कभी भीषण रूप धारण करके ओले बरसाते हैं कभी कपास के गुच्छे के समान हल्के बन जाते हैं। किस प्रकार बादल रूप बदल लेते हैं यह वे स्वयं बतला रहे हैं—

व्याख्या:—कभी-कभी पवन के द्वारा मथे गये आकाश रूपी समुद्र में हम प्रलय के समय आने वाली बाढ के समान उमड़ कर चारों ओर फैल जाते हैं। कुछ समय में हम भयानक दृश्य प्रस्तुत करते हैं। आकाश में छाकर संसार में अंधकार पैदा कर देते हैं और ओले बरसाते हैं। जिस प्रकार चोर अपने दल के साथ आकर जबरदस्ती कपास के समूह या ढेर को आसानी से ले जाता है उसी प्रकार हवा रूपी चोर आकर आकाश रूपी वृक्ष से हमें तेजी से लेकर भाग जाता है। जिस प्रकार कपास के गुच्छे को ले जाने में चोर को परेशानी नहीं होती और तेजी से भाग लेता है वैसे ही पवन हमें बड़े तेजी से बड़ी सरलता से लेकर भाग जाता है।

विशेष—(१) प्रलयकालीन मेघ अत्यन्त भयावने होते हैं। उस प्रलयकाल में भारी गर्जन करते हुए बादलों के समूह घिर आते हैं सर्वत्र घना अंधकार छा जाता है और भारी वर्षा होती है। सागर अपनी मर्यादा छोड़कर उमड़ने लगता है।

(२) प्रलयकाल में झंझा के झटके जब चलते हैं तो रुई के समान बादल उसके आगे-आगे उड़ते चले जाते हैं। चोर अपने दल-बल के साथ आकर कोई सामान लेकर भागते हैं तो डर के कारण तेजी से ही चलते हैं। कपास तो वैसे भी हल्की होती है, उसे लेकर तो तेजी से चला जा सकता है।

बुद्बुद्-द्युति .... वायु-विहार

शब्दार्थ—बुद्बुद्-द्युति = बुलबुलों की कांति। तारक-दल-तरालित = बहुत से तारों से युक्त। तम = अंधकार। अम्बाल जाल = काई का समूह। अमूल = बिना जड़ वाले। अविराम = बिना विराम किए, लगातार, निरन्तर।

कुमुद-कला = चादनी । अभिराम = सुन्दर । रजतकर = चादी के से सफेद हाथ, किरणें । ललाम = सुन्दर । विद्युद्दाम = विजली रूपी प्रत्यचा । द्रुत = शीघ्र । विकट = भयानक, विशाल । पटह = नगाडा । निर्घोषित = घोष करके, गरजकर । विशिखो = बाणो । आसार = वितान, फैलाव, विस्तार । वज्रायुध = विजली रूपी शस्त्र । भूधर = पर्वत । भीमकार = विशाल आकार । मदोन्मत्त = मद से पागल । वासव-सेना = इन्द्र की सेना ।

सन्दर्भ—बादल अपने बारे मे बतलाते हुए कह रहे है कि हम कभी भूतो का तो कभी परियो के बच्चो का रूप बना लेते हैं । आगे अपने कारनामे बतलाते हुए कहते हैं कि—

व्याख्या—जब रात्रि के अंधकार मे चचल प्रकाश वाले तारे चमकते हैं और हम आकाश मे विचरण करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानो यमुना के काले जल मे चमकते हुए बुलबुले और बिना जडवाले काई के गुच्छे लगातार बहते चले जा रहे हो ।

जब हम मृदुल ध्वनि करते हुए चादनी रात मे विचरण करते हैं और चाद की श्वेत किरणें जब हम पर पडती हैं तो ऐसा प्रतीत होता है जैसा कि दमयन्ती को उसके प्रियतम राजा नल का प्रिय सन्देश मधुर ध्वनि मे कहता हुआ स्वर्णाभ हस सुशोभित हुआ होगा ।

कभी हम शीघ्रतापूर्वक बिजली की दुहरी प्रत्यचा चढा कर इन्द्रधनुष की टङ्कार के समान घोर गर्जन करते हैं । अर्थात् जिस प्रकार युद्ध मे योद्धा धनुष पर प्रत्यचा चढा कर प्रत्यचा से टकार करते हैं उसी प्रकार बादलों के बीच चमकने वाली बिजली की गर्जन बादलो के धनुष की प्रत्यचा की टकार है । बादल बूदों रूपी बाणो की भयकर वर्षा कर रणक्षेत्र मे बजने वाले नगाडो की आवाज के समान भयकर गर्जन करते हैं ।

जिस प्रकार इन्द्र ने अपने कठोर वज्र के आघात से पर्वतों को विचूर्ण कर दिया था उसी प्रकार हम भी भीमाकार विशाल पर्वतो को तहस नहस कर देते हैं और तदुपरान्त विजयगर्व और अपनी शक्ति के मद मे चूर होकर इन्द्र की विशाल सेना के समान नित्य वायु-विहार किया करते हैं ।

विशेष—१. प्रथम छन्द में अंधकार को यमुना का श्याम जल और जगमगाते तारो को जल के बुलबुले माना है । काई की जड नही होती इसीलिए बादलो की काई से तुलना की गई है क्योकि बादलो की भी कोई जड नही होती । परन्तु काई बहते हुए जल मे पाई नही जाती कही से बहकर आ गई हो वह दूसरी बात है ।

२. नल-दमयन्ती की कथा बहुत प्रसिद्ध है । कहा जाता है कि महाराज वीरसेन के युवराज ने महाराज भीम की कन्या के पास हस द्वारा अपना सदेश भेजा था । द्वितीय छन्द मे प्रस्तुत और अप्रस्तुत का सामञ्जस्य बडा ही उपयुक्त है ।

३. तृतीय छन्द मे बादलो को रणक्षेत्र मे उपस्थित योद्धा के रूप मे

चित्रित किया गया है। बादलों के पास विजली की प्रत्यंचा है, उनकी गड़गड़ाहट नगाड़ों की आवाज है, मूसलधार वर्षा बाणों की वर्षा है। बिजली जब चमकती है तो दुहरी लकीर सी खिंच जाती है। इसलिए उसे 'दुहरा विद्युद्दाम' कहा गया है।

४. एक पौराणिक कथन है कि प्राचीन काल में पर्वतों के पख हुआ करते थे जिनकी सहायता से वे चाहे जहां उड़कर पहुच जाते थे और लोगों को हानि पहुचाते थे। इसीलिए देवराज इन्द्र ने अपने वज्र से उन्हें आहत करके पंखविहीन कर दिया।

५. उपमा, रूपक और श्लेष अलकार हैं।

६. चारों छन्दों मे भाषा की समास शक्ति द्रष्टव्य है।

व्योम-विपिन ... चारों ओर।

शब्दार्थ—व्योम-विपिन = आकाश रूपी वन, पल्लवित = पत्तों से लदा हुआ, अनिल-स्रोत = वायु रूपी नदी या झरना, उदयाचल = एक काल्पनिक पर्वत जहा से सूर्य का उदय होना माना जाता है, बाल हस = हस के बालक सा अथवा बाल सूर्य, अवदात = श्वेत, धब्बे रहित, सशय = सदेह, भ्रम, अपयश = अपकीर्ति, अछोर = छोर रहित, सर्वत्र, निशि = रात्रि, भोर = प्रभात इन्द्रचाप = इन्द्रधनुष, विप्लव = क्रान्ति, कलिन्द = एक वृक्ष, एक पक्षी, यहा भ्रमर, सान्ध्य = संध्या समय के, निकाम = बहुत।

सदर्भ—कभी बादल विशाल वायु पर्वतों को युद्ध में चूर-चूर करके वायु-विहार किया करते हैं और कभी पत्तों के समान वायु द्वारा दूर फेंक दिये जाते है। आगे इसी प्रकार अपना वर्णन करते हुए बादल कह रहे हैं कि—

व्याख्या—जब आकाश रूपी वन मे नए पत्तों के से रग वाला वसत के समान प्रभात फूटता है तब हम सब वायु रूपी नदी मे तमाल रूपी अधकार के पत्तों के समान बहने लगते हैं। अर्थात् जिस प्रकार वसन्त ऋतु के आगमन पर वृक्षों पर नये पत्ते लद जाते हैं और पुराने झड़े हुए पत्ते नदी के जल मे गिरकर बह जाते हैं उसी प्रकार उल्लास-प्रद प्रभात होते ही हम भी वायु के द्वारा बहा ले जाये जाते हैं। उदयाचल से सफेद बाल हस के समान बढते आते हुए प्रभात-कालीन बालसूर्य की स्वर्णिम आभा से आकाश मे तेजी से उड़ते हुए हम सुनहरी रग के दीख पड़ते हैं और ऐसे प्रतीत होते हैं मानों अपने सुनहरे पखों को फैलाकर उड़ते हुए हवा से होड़ कर रहे हों।

जिस प्रकार भौंरा कमलों से दिनभर पराग पीता है और उसके मादक प्रभाव मे झूमता हुआ शोभा पाता है, और सध्या के समय मस्त होकर कमल में बैठकर रात भर विश्राम करता है, उसी प्रकार सध्या की लालिमा रूपी पराग का पान करके हम आकाश रूपी नीलकमल मे निडर होकर विश्राम करते हैं।

जब समुद्र में बड़वाग्नि तीव्र हो उठती है और समुद्र को सोखने लगती लगती है तो उसके बहुत से रत्न बाहर फैल जाते हैं। इसी प्रकार सध्या के

समय लाल रंग का आकाश जो वडवाग्नि से जलता हुआ समुद्र-सा प्रतीत होता है, हम शीघ्र ही उसे सोख लेते हैं और उसके रत्नों को तारों के रूप मे बिखरा देते है।

जिस प्रकार मनुष्य के हृदय में संशय धीरे-धीरे उत्पन्न होता है उसी प्रकार हम भी आकाश में धीरे-धीरे घिरते आते हैं। किसी व्यक्ति का अपयश सर्वत्र बडी तेजी से फैल जाता है उसी प्रकार फिर हम भी सर्वत्र शीघ्र ही फैल जाते हैं। फिर आकाश मे हम इस प्रकार उमडने लगते है जिस प्रकार मनुष्य के हृदय मे मोह उत्पन्न होकर सारे हृदय को आक्रान्त कर लेता है। मनुष्य की लालसा की भाति हम रात-दिन फैले रहते है।

मनुष्य को जब कोई बडी चिन्ता घेर लेती है तो उसकी भौहे वक्र हो जाती हैं उसी प्रकार हम भी आकाश की इन्द्रधनुष रूपी भृकुटि पर चिन्ता के समान छा जाते हैं। फिर हम आकाश मे सर्वत्र इस प्रकार तेजी से गरजते हुए छा जाते हैं जिस प्रकार किसी क्रान्ति के कारण उत्पन्न भय लोगो के हृदयों मे भर जाता है।

विशेष—१. बसत ऋतु के आने तक वृक्षो के जीर्ण पत्ते सूख कर गिर पडते है और वसतागमन पर वृक्षो पर नए पत्ते लहराने लगते है। कवि ने आकाश को वन, प्रभात को बसत अग्नि को नदी, तम को तमाल और बादलो के अधकार के पत्ते माना है।

२. यद्यपि यह विश्वास कि सूर्य उदयाचल पर्वत से उदय होता है बहुत प्राचीन है। इसका आधार पौराणिक कथा है। परन्तु यह कल्पना बडी सुन्दर है कि उदय होते हुए लाल सूर्य की किरणें पडने से बादल सुनहरे पखो वाले पक्षी जैसे प्रतीत होते हैं।

३. 'धीरे · भोर'—मे बादलो की उपमा अमूर्त भावनाओ से की गई है। किसी के प्रति सशय धीरे-धीरे ही पैदा हुआ करता है, अपयश को फैलते देर नही लगती। मोह के उमडने की अनुभूति ही की जा सकती है, मोह की स्थिति मे हृदय भर आता है उसमे कुछ उमडता-घुमडता सा प्रतीत होता है। लालसा का कोई छोर नही होता। बादलो के लिए भी कोई रोक टोक नही है वे आकाश मे सर्वत्र बिखरे रहते हैं।

४ उपमा और मानवीकरण अलकार है।

पर्वत से ....डाल।

शब्दार्थ—जलधर = मेघ, विभव-भूति = सासारिक ऐश्वर्य, अम्बर = आकाश, पतग = पतगा, सूर्य, त्वरित = तुरन्त, शीघ्र, उत्ताल = ऊंचा तीक्ष्ण, आपत = गर्मी, धूप, हिमजल = ठण्डा जल।

सन्दर्भ—बादल कभी अमूर्त भावनाओ की भाति आकाश मे छा जाते हैं। वे कभी पर्वत का रूप धारण कर लेते हैं और कभी धूल का सा सूक्ष्म रूप।

व्याख्या—हम पल भर मे पर्वत के समान अपने विशाल रूप को छोड कर धूलिकण के समान लघु रूप धारण कर लेते हैं। पलभर मे पुन पर्वत का सा विशाल आकार प्राप्त कर लेते हैं। जिस प्रकार समय का चक्र निरन्तर ऊपर नीचे घूमा करता है उसी प्रकार हम कभी आकाश मे चढते हैं तो कभी वर्षा जल के रूप मे नीचे पृथ्वी पर उतर आते हैं। इस तरह हमें भी काल-चक्र के समान उत्थान पतन के चक्र मे घूमना पडता है।

कभी हम हवा मे महल बनाते हैं अर्थात् हमारी आकृति ऐसी बन जाती है कि हवा मे खडा हुआ महल सा प्रतीत होता है और कभी आकाश मे पुल सा बाध बाध देते हैं। कोई समय ऐसा भी होता है कि विशाल महल और पुलरूप मे दीखने वाले हम विलीन हो जाते हैं। हमारे विलीन होने मे कुछ भी समय नही लगता उसी प्रकार जिस प्रकार कि सासारिक ऐश्वर्य लुप्त होने मे समय नही लगता।

कुछ क्षण के लिए हम अदृश्य हो जाते हैं तो दूसरे क्षण फिर उसी प्रकार रूप धारण कर आकाश मे मकडी के जाल के समान फैल जाते हैं। जिस प्रकार किसी सूखे वृक्ष की शाखाओ पर मकडी अपना जाल पूर लेती है उसी प्रकार नग्न आकाश पर हम भी जाल-सा पूर देते हैं। हमारे जाल मे छिपा सूर्य वैसा ही प्रतीत होता है जैसा कि मकडी के जाल में उलझा हुआ कोई पतगा हो। अर्थात् जब हम अपना विस्तार करते हैं तो आकाश मे चलता हुआ सूर्य भी हमारे द्वारा ढक जाता है।

हम जिस प्रकार पर्वत सा विशाल रूप धारण कर लेते हैं और कभी धूल-कणो सा लघु रूप उसी प्रकार हम कभी सूर्य को पतंगा के समान अपने जाल मे उलझा लेते हैं तो कभी विशाल हृदय वाले व्यक्ति के समान शीघ्र ही करुणा से द्रवित होकर तीव्र गर्मी से झुलस कर मूर्छित सी पड़ी कलियो पर ठण्डा जल डाल कर उन्हें हरी-भरी बना देते हैं।

विशेष—१. 'पर्वत से निस्सार'—इन पंक्तियों मे कवि संसार के व्यक्तियो को उपदेश सा दे रहा है। कवि कहता है कि जिनमे इतनी सामर्थ्य है कि जो इच्छानुसार अपने आप को चाहे जैसा बना लेते हैं-क्षण मे पर्वत सा विशाल रूप धारण कर क्षण में धूल के कण जैसे बन जाते हैं—वे भी काल-चक्र के समान उत्थान पतन के चक्कर से बाहर नहीं हैं। उनका अस्तित्व भी सासारिक विभूति के समान क्षण भर में नष्ट हो जाता है। इसलिए मनुष्य को अपनी सामर्थ्य, अपने धन वैभव का अभिमान नही करना चाहिए क्योंकि समय के चक्र मे पड़े हुए इन सभी का विनाश अवश्यम्भावी है।

२. आकाश को पत्तों रहित वृक्ष, बादलो के वितान को मकडी का जाल, सूर्य को पतंगा माना है।

३. 'पतग' में श्लेष है।

हम सागर · · · · · ···महान।

शब्दार्थ—धवल=श्वेत, शुभ्र, धून=घुमा, वारि-वसन=पानी के

वस्त्र, मूल = मूलाधार, जीवन देने वाले, अवनि = पृथ्वी, सलिल = पानी, पावक = अग्नि, तूल = रुई, व्योम-वेलि = आकाशरूपी लता, अचल = पर्वत, तन्द्रा = हल्की सी नींद, ज्योत्स्ना = चांदनी, यान = सवारी, रथ, पवन धेनु = हवा की गाय, रवि = सूर्य, पांशल = धूल से भरे, अनल = अग्नि, विरल-वितान = झीना मंडप, जल-खग = जल में तैरने वाले पक्षी, अम्बुधि = सागर।

संदर्भ—बादल अपना परिचय लगातार दे रहे हैं। बादल ही जल में थल और थल में जल की प्रतीति करा देते हैं। ये शशि के यान हैं और पृथ्वी के तो मूल कारण हैं–बिना बादल-वर्षा के पृथ्वी पर जीवन ही असम्भव है।

व्याख्या—हम मानो समुद्र का शुभ्र हास हैं। हास का रंग श्वेत माना गया है और बादल सागर से उठते हैं। अपने श्वेत वर्ण के कारण और सागर से जन्म पाने के कारण उन्हें सागर का हास कहा गया है। जल के धुए हैं क्योंकि जल से उठने वाली भाप धुए सी लगती है। बादल आकाश की धूल हैं। धूल उड़कर आकाश में छाकर बादल जैसी प्रतीत होती है और उनसे आकाश धुंधला हो जाता है उसी प्रकार आकाश में बादल छा जाने पर भी वातावरण कुछ घिरा घिरा सा लगता है इसलिए बादलों को आकाश की धूल कहा गया है। बादल पवन के झाग हैं। हवा के साथ उड़ते हुए सफेद बादल पानी पर तैरते झाग जैसे प्रतीत होते हैं। बादल उषा के लाल रंग के पत्ते हैं। पत्ते अपनी प्रारंभिक किसलयावस्था में लाल रंग के होते हैं, प्रातःकाल लाल सूर्य का प्रकाश पड़ कर लाल हुए बादल भी लाल किसलयों से प्रतीत होते हैं। बादल जल के वस्त्र हैं कपड़ों में जिस प्रकार शरीर ढका रहता है उसी प्रकार बादलों में पानी छिपा रहता है। बादल पृथ्वी के मूल हैं, जीवन देने वाले हैं, क्योंकि पृथ्वी की उत्पत्ति जल से मानी गई है। बादल जल के ही रूप होते हैं। वैसे भी पृथ्वी के जीवधारियों का आधार जल है जो बादलों से प्राप्त होता है।

बादल कहते हैं कि हम आकाश में पृथ्वी और पृथ्वी पर आकाश हैं। बादल जब भिन्न-भिन्न रूप-रंग की आकृतियों में दिखाई पड़ते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि ऊपर कोई पृथ्वी स्थित है क्योंकि वस्तुओं को आधार पृथ्वी ही प्रदान करती है। जब भारी वर्षा होने लगती है और पृथ्वी जलमय हो जाती है तो काले बादल और आकाश के घिराव से पृथ्वी पर भरा जल धूमिल दीख पड़ता है जिससे ऐसा प्रतीत होता है मानो आकाश ही पृथ्वी पर उतर आया हो। 'हम जल की भस्म हैं' भस्म श्वेत होती है और जल के जलने से उठी भाप भी श्वेत होती है। बादल भाप से बनते ही हैं इसीलिए उन्हें जल की भस्म कहा गया है। हम मारुत के फल हैं। वायु के द्वारा बादल फूलों का रूप धारण कर लेते हैं। हम ही जल में स्थल और स्थल पर जल हैं। जब जल पर बादलों की छाया पड़ती है तो जलमग्न स्थल भी थल जैसा प्रतीत होने लगता है। बादल ही वर्षा करके थल को जलमग्न कर देते हैं। दिन में भी अन्धकार छा जाता है जब आकाश में घने बादल छा जाते हैं इसलिए बादल कहते हैं कि हम दिन के अन्धकार हैं। हम ही अग्नि में जलती रुई के समान हैं क्योंकि सुबह शाम बादलों का रंग जलती हुई

रुई के समान नष्ट हो जाता है। अथवा जिस प्रकार अग्नि मे रुई बडी सरलता से जल जाती है उसी प्रकार अग्नि सी दाहक ग्रीष्म ऋतु भी हमे नष्ट कर देती है। ग्रीष्म ऋतु में हम अदृश्य रहते हैं जबकि वर्षा ऋतु मे हम सदा छाये रहते हैं।

हम आकाश की लता हैं क्योंकि अमरवेल बिना जड के ही सारे वृक्ष पर आच्छादित हो जाती है उसी प्रकार बादलो की कोई जड नही होती और वे भी अमरवेल की भांति आकाश में छा जाते हैं। हमारे कारण ही आकाश के तारे चलते हैं, अभिप्राय यह है कि बादल चलते हैं तो तारे भी चलते हुए प्रतीत होते हैं। हम चलते हुए पर्वत हैं; क्योंकि पर्वतो के समान आकार धारण करके चलते हुए बादल ऐसे प्रतीत होते हैं मानों पर्वत चल रहे हो। हमारी गर्जन आकाश का सगीत है। तारों पर छा कर हम उनकी ज्योति कुछ मलिन कर देते हैं जिससे तारे ऐसे प्रतीत होते हैं मानो वे झपकिया ले रहे हो, ऊघ रहे हो इसलिए हम उनकी तन्द्रा हैं। हम चादनी रात में बर्फ के टुकडों के समान शीतल प्रतीत होते हैं और चांदनी में चलते हुए होने के कारण चन्द्रमा के रथ से प्रतीत होते हैं। तात्पर्य यह है कि चांदनी में चलते हुए बादलो के बीच चन्द्रमा भी चलता हुआ प्रतीत होता है जिससे बादल चन्द्रमा के रथ से प्रतीत होते हैं।

हम पवन की गायें हैं। जिस प्रकार ग्वाला अपनी गायो की देखभाल करता है उन्हें हाकता है उसी प्रकार पवन भी बादलों को गायो के समान हाक कर ले जाता है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति लगातार कार्य करता है और उस पर धूल जम जाती है उसी प्रकार दिन भर तपने वाले सूर्य के ऊपर धुन्ध के रूप मे छाये हुए हम भी सूर्य के ऊपर परिश्रम करने से जमी धूल से प्रतीत होते हैं। हम जल और अग्नि के झीने मडप हैं अर्थात् अग्नि और जल के सयोग से उत्पन्न भाप ही बादलो का रूप धारण करके आकाश में फैल जाती है और ऐसी प्रतीत होती है मानो ऊपर कोई मंडप तना हो। हम आकाश की पलक हैं, जल के पक्षी हैं। जल मे पडती हुई छोटे-छोटे बादलो की परछाई ऐसी प्रतीत होती है मानो जल मे जल के पक्षी क्रीडा कर रहे हों। हम ही बहते हुए थल हैं। जब सघन बादल आकाश मे घिर कर चलते जाते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानो पृथ्वी के टुकडे चल रहे हों। उर्वर कल्पना के द्वारा विविध वस्तुओं की सृष्टि हो जाती है। बादल कहते हैं कि हम सागर की महान् कल्पना हैं, क्योंकि यह समुद्र को महान् कल्पना ही है जिसके आधार पर उसने बादलो को स्वय से भिन्न रूप दिया है। बादल सागर से भाप के रूप में उत्पन्न होकर वर्षा के जल के रूप मे बरस कर सागर में ही विलीन हो जाते हैं। विश्व भी विराट पुरुष की-महान् कल्पना माना गया है जो विराट पुरुष से उत्पन्न होकर उसी में विलीन हो जाता है।

विशेष—१. इन छन्दो में दी गई उपमायें लक्षण-मूलक हैं, वे रूप साम्य पर आधारित हैं।

२. जब व्यक्ति अपने पलक बन्द कर लेता है तो फिर आख नहीं दिखाई देती। उसी प्रकार बादल छा जाने पर आकाश नहीं दिखाई पडता। इसीलिए बादलों को 'व्योम-पलक' कहा है।

३. बादल आकाश में परत पर परत के रूप में छा जाते हैं तो वे थल के समान दिखाई पड़ते हैं। थल स्थिर रहता है और बादल गर्दन हवा के कारण गतिशील रहते हैं इसीलिए उन्हें 'बहते थल' कहा गया है।

४. बादलों को सागर की महान कल्पना इसलिए भी कहा जा सकता है कि कल्पना में डूबा हुआ व्यक्ति अपनी सुध बुध भूल जाता है। उसे ऐसा लगता है जैसे वह धरती पर विद्यमान ही न हो। बादल भी समुद्र से भाप के रूप में उठ कर आकाश में छाकर विविध रूप धारण करते हैं। आकाश में ऊपर छा जाने के कारण और विविध रूप धारण करने वाले होने के कारण बादलों को सागर की महान् कल्पना कहा गया है।

५. अनुप्रास, उपमा, रूपक, परिकरांकुर, विरोधाभास, मानवीकरण अलंकार आदि के चमत्कार से प्रस्तुत कविता बड़ी कलात्मक बन गई है। कवि ने कल्पना का खुल कर प्रयोग किया है। बादलों के द्वारा अनेक संश्लिष्ट चित्र खींचे हैं।

६. चमत्कार का आतिशय्य होने के कारण काव्य की हत्या हो गई है। भाषा और शब्द-योजना सुन्दर है।

७. प्रस्तुत कविता पर स्पष्टतया अंग्रेजी के महान् रोमान्टिक कवि शैली की 'The cloud' शीर्षक कविता का प्रभाव है। शैली के प्रभाव को पंत जी ने स्वयं भी स्वीकार किया है।

मुस्कान

परिचयात्मक टिप्पणी— प्रस्तुत कविता मे किसी मुग्धा नायिका का वर्णन है जो अपनी मुस्कान को रोक नही पाती। उसकी मुस्कान विभिन्न रूपो मे प्रकट हो जाती है। मुग्धा नायिका अपना सखी से बरबस खिल उठने वाली अपनी मुस्कान के सम्बन्ध मे कह रही है कि हे सखी ! यह सोच कर भी कि अनायास खिल उठने वाली मेरी मुस्कान को देख कर लोग क्या कहेगे, मैं अपनी मुस्कान को प्रयत्न करके भी रोक नहीं पाती। वर्षा ऋतु मे वन में चमकने वाले जुगुनुओ के समान मेरे हृदय मे सैकडो कोमल भाव एक साथ हृदय मे जाग उठते हैं और छोटे बच्चो के समान मुझे हसने के लिए बाध्य कर देते हैं। जब मैं सोने का प्रयत्न करती हू तो तारो को देख कर मेरे मन मे अनेक भाव पैदा होते हैं जो मेरे तन, मन और प्राण मे गुदगुदी सी पैदा कर मुझे पुलकित कर देते हैं। हवा मे उडते हुए पत्तो और जल मे उठती हुई लहरो मे मुझे अपने प्रियतम के सकेत का भान होता है। ऐसी स्थिति मे मैं अपनी भी सुध-बुध भूल जाती हू और अनजाने ही हसी आ जाती है। मैं उसे रोकने का प्रयत्न करती हू परन्तु असफल रहती हूँ।

सरल और सरस भाषा में लिखी गई यह कविता भाव-सौन्दर्य के कारण बडी अद्भुत कलाकृति बन गई है। 'उस पार'-शब्दो के द्वारा इसमें रहस्यवाद की गन्ध आ गई है।

कहेगे ······ ··· मुस्कान।

शब्दार्थ—ध्यान = विचार, ख्याल।

सन्दर्भ—प्रस्तुत पक्तियो मे मुग्धा द्वारा अपनी मुस्कान रोकी जाने की असमर्थता व्यक्त की गई है। मुग्धा नायिका अपनी सखि से कहती है कि—

व्याख्या—हे सखि ! अपने प्रियतम के बारे मे कोई बात याद आते ही अनायास ही मेरे चहरे पर मुस्कान खिल उठती है। मुझे जब यह ध्यान आता है कि अनायास खिल उठने वाली मेरी मुस्कान को देखकर सब लोग मेरे विषय में न जाने क्या सोचेंगे, न जाने कैसी धारणा बनायेंगे, तो मैं अपनी मुस्कान को रोकने का प्रयास करती हू परन्तु हे सखि ! वह रुकती ही नही है।

विशेष—प्रस्तुत छन्द मे मुग्धा नायिका की स्थिति का सुन्दर चित्रण हुआ है। जब बेचारी अपने प्रियतम के बारे मे सोचती होगी तो अवश्य ही अन्य बातो का उसे ध्यान न रहता होगा। लोक लज्जावश जब वह अपनी मुस्कान को रोकने का प्रयत्न करती होगी तो भी वह न रुकती होगी। उसकी असमर्थता 'हाय !' शब्द द्वारा बिल्कुल स्पष्ट हो गई है।

विपिन ······ निदान।

शब्दार्थ—विपिन = वन, पावस के मे दीप = वर्षा ऋतु मे दीपको

के समान उठने वाले जुगनू, दुराव = छिपाव, निदान = अन्त मे, आखिरकार ।

सन्दर्भ—वन मे जिस प्रकार वर्षा ऋतु मे जुगनू टिमटिमाते रहते है उसी प्रकार मेरे हृदय मे सैकड़ो कोमल भाव उठते रहते है । जिस प्रकार वन मे टिमटिमाते जुगनू छिपाये नही जा सकते उसी प्रकार अपने कोमल भावों को मैं नही छिपा पाती । जिस प्रकार नादान अबोध बालक अपनी क्रीडाओ से बरबस हसा देते है उसी प्रकार मेरे हृदय में उठने वाले निष्कलुष भाव मुझे वरवस ही हसा देते हैं । मैं हसी को रोकने का प्रयत्न करके भी रोक नहीं पाती ।

विशेप—कभी-कभी मनुष्य कुछ सोचता-सोचता यकायक हसी की मुद्रा कभी क्रोध की मुद्रा बना लेता है । बालको की क्रीडाओ को देख कर गम्भीर मुद्रा मे बैठा हुआ व्यक्ति भी अपनी हसी नही रोक पाता । युवती की कल्पनायें भी भोले बालक के समान उसे वरवस हंसा देती हैं ।

तारको से········   मुस्कान !

शब्दार्थ—तारको = तारागण, नव-नव = नए-नए, हिमजल = ओस, आसू, अपनाव = आत्मीयता ।

सन्दर्भ—युवती के भाव उसकी आखो मे कभी अश्रु छलका देते हैं कभी और किसी प्रकार उसे हसने के लिए विवश कर देते हैं ।

व्याख्या—मुग्धा नयिका कहती है कि मैं जब सोने का उपक्रम करती हू तो ऊपर टिमटिमाते हुए तारो को देख कर मैं भाव-विभोर हो उठती हू । भाव मेरी पलको पर छाकर मेरी नीद हर लेते हैं । प्रयत्न करने पर भी मैं न तो भावो से मुक्त हो पाती हू और न नीद ले पाती हू । कुछ ऐसे भाव भी आते हैं जिनसे मेरी आखो मे अश्रु छलक पडते है तब भाव मुझ से और भी आत्मीयता बढा लेते हैं । भावो से छुट्टी पाना तब और भी असमव हो जाता है । वे मेरे तन, मन और प्राण मे गुदगुदी पैदा करने लगते हैं । उस समय मेरी मुस्कान रुकती ही नही है ।

विशेप—प्रस्तुत पक्तियो मे नायिका ने अपनी मुस्कान का एक बडा कारण भावों के द्वारा की जाने वाली गुदगुदी बताई है । गुदगुदी किये जाने पर वस्तुत हसी रोकना असमव ही है ।

कभी उड़ते ····   ·· ···मुस्कान ।

शब्दार्थ—सुकुमार = प्रियतम, अनजान = बिना जाने ही, यकायक ।

सन्दर्भ—नायिका को भाव जब गुदगुदाते हैं तो उसकी हसी नहीं रुकती साथ ही प्रकृति के उपादान उसकी हसी को और बढ़ावा देते हैं ।

व्याख्या—जब तेज हवा चलती है और उसमें सूखे पत्ते उडने लगते हैं तो उन्हें देख कर नायिका को ऐसा लगता है कि मेरा प्रियतम मुझे मिल गया है । कभी ऐसा भान होता है कि जल मे उठने वाली लहरो के बहाने मेरा

प्रियतम मुझे उस पार आने का सकेत कर रहा है। उस समय मुझे ससार की किसी वस्तु का ध्यान नही रहता। मेरी हसी खिल उठती है। हे सखि ! मैं हसी रोकने का बहुत प्रयत्न करती हू परन्तु उसे रोक नही पाती।

विशेष—१ 'उस पार' कह कर कवि ने इस कविता मे रहस्यवाद का पुट दिया है। सरल और सरस भाव-प्रणव कविता मे 'उस पार' शब्द ही खटकता है। छायावाद की विशेषता है कुछ रहस्यात्मकता ला देना परन्तु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल रहस्य-प्रवृत्ति के विरोधी थे। रहस्यात्मकता मान लेने पर आत्मा नायिका, ब्रह्म उसका प्रियतम है। प्रकृति के व्यापार आत्मारूपी नायिका को ब्रह्म रूपी प्रियतम की ओर बुलाने का सकेत करते है।

२. 'कभी उडते ....उस पार'—इस छन्द मे पत जी अपनी प्रसिद्ध रचना 'मौन-निमत्रण' के लिए आमत्रण दे जाते हैं। यहा तो नायिका को उसका प्रियतम लहरो से अपना हाथ बढा कर ही बुला रहा है परन्तु 'मौन-निमन्त्रण' कविता में तो प्रियतम अपनी नायिका को अनेक प्रकार से सकेत करके बुला रहा है।

मौन-निमंत्रण

कथ्य—'मौन-निमन्त्रण' पंत की रहस्यवादी कविता है। रहस्यवाद का प्रथम सोपान कौतूहल है। पंतजी प्रकृति के उपासक सुकुमार कवि हैं। कवि को प्रत्येक कण-कण मौन रूप से निमन्त्रण सा देता प्रतीत होता है। प्रकृति के रूप में रहस्यमयी सत्ता का कवि को आभास होता है। प्रकृति के अनेक उपादान कवि को रहस्यमयी सत्ता की ओर बुलाते हुए जान पड़ते हैं।

चांदनी रात्रि के समय सारा विश्व शिशु के समान आश्चर्य में डूबा शान्त रहता है, जब लोग निद्रा में डूबे अनोखे स्वप्न देखा करते हैं उस समय न जाने कौन मुझे नक्षत्रों के द्वारा मौन निमन्त्रण देता है। न जाने कौन अपने पास आने के लिए संकेत करता है। आकाश में जब काले बादल चारों ओर से छा जाते हैं, वर्षा होती है तो बिजली के द्वारा, न जाने कौन मुझे बुलाता है। बसंत ऋतु में जब पृथ्वी युवती के समान सुन्दर दीख पड़ती है, सर्वत्र फूल खिल उठते हैं तब सुगन्धि के द्वारा न जाने मेरे पास कौन मौन सन्देश भेजता है। जब पवन समुद्र में उठती हुई ऊँची लहरों को मथकर उन्हें झागों से युक्त बना देता है और असंख्य बुदबुदों का अस्थिर संसार सा बसा कर उन्हें नष्ट कर देता है, उस समय उन लहरों में से हाथ उठाकर न जाने मुझे कौन बुलाता है।

जब सारा संसार प्रभातकालीन स्वर्णिम आभा से दीप्त हो उठता है, सर्वत्र सुख और सौन्दर्य फैल जाता है और पक्षियों का समूह चहचहाने लगता है उस समय न जाने कौन मेरी निद्रा भंग कर देता है। जब अंधकार से आच्छादित संसार में आकार का कोई भेद नहीं रह जाता, सर्वत्र शान्त वातावरण फैल जाता है, उस समय केवल झींगरों की झनकार ही सुनाई देती है। झनकार करते हुए झींगर अन्धकार से डर कर चिल्लाते से प्रतीत होते हैं। तब मुझे जगमगाते जुगनुओं के द्वारा न जाने कौन अन्धकार में रास्ता दिखलाता चलता है। जब प्रभातकालीन वेला में कलियां प्रस्फुटित होकर सुगन्ध विकीर्ण कर देती हैं तब न जाने कौन ओसरूप में ढुलक कर मौन रूप से मेरे नेत्रों को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। दिवस का अवसान होने पर जब रात्रि आ जाती है और श्रम से थककर मैं सो जाती हूं तो उस समय भी न जाने कौन मुझे स्वप्नों के छाया जगत् में घुमाता रहता है अर्थात् सुषुप्तावस्था में मैं स्वप्न देखती रहती हूं। उसके पीछे किसका हाथ रहता है, नहीं मालूम।

हे अत्यन्त सौन्दर्यशाली! न जाने तुम कौन हो जो मुझे अबोध और अज्ञान जानकर मेरा पथ प्रदर्शन करते रहते हो और मेरे अन्दर नव-जीवन का संचार कर देते हो। मैं किसी भी स्थिति में क्यों न रहूं तुम सदा मेरे साथ रहते हो। मैं यह नहीं जानती कि आखिर तुम कौन हो।

इस समस्त कविता मे प्रकृति की विभिन्न वस्तुओ द्वारा कवि को अज्ञात शक्ति का आमन्त्रण मिलता रहा है। कवि में यह जानने की उत्कट अभिलाषा है कि वह शक्ति आखिर कौन है। 'कौन' की जिज्ञासा वृति के कारण ही यह कविता रहस्यमयी बनी हुई है। यह कविता पतजी की प्रसिद्ध रचनाओं मे से है। इसकी कला छायावादी और ध्वनि रहस्यवादी है।

स्तब्ध...... ...मौन।

शब्दार्थ—स्तब्ध ज्योत्स्ना = शान्त चादनी, अजान = अनजाने, अनोखे।

सन्दर्भ—रात्रि के समय जब कि सर्वत्र शान्त वातावरण है तब आकाश मे टिमटिमाते तारो को देखकर कवि को उनमें किसी रहस्यमयी शक्ति का आभास होता है परन्तु यह शक्ति जानी नहीं जाती इसीलिए कवि कहता है कि—

व्याख्या—जब ससार शान्त चादनी रात्रि मे अबोध भोले बालक की तरह चकित सा दीख पडता है और जब सुख की निद्रा मे सोते हुए ससार के प्राणी अनोखे स्वप्न देख रहे होते हैं उस समय न जाने कौन, मुझे नक्षत्रों के माध्यम से मौन निमत्रण दिया करता है।

विशेष—(१) छन्द से ऐसा लगता है जैसे दो प्रेमी हैं जो लज्जावश दिन में तो मिल नही पाते परन्तु रात्रि के समय प्रेमी अपनी प्रियतमा को सकेत द्वारा अपने पास आने का मौन-निमंत्रण देता है।

(२) 'मौन निमत्रण' मे विरोधाभास है।

सघन ...... भेजता मौन।

शब्दार्थ—सघन = घने, बहुत बड़े परिणाम में, भीमाकाय = भयप्रद आकाश, तमसाकार = तमस + आकार = अन्धकार युक्त, निश्वास = सास, प्रखर = तेज, तपक = चमक कर, तड़ित = बिजली, इगित = सकेत, वसुधा = धरती, मधुमास = वसन्त ऋतु, विधुर = वियोगी, दुखी, सोच्छ्वास = उच्छ्वास सहित, सौरभ = सुगन्ध, मिस = बहाने।

सन्दर्भ—आकाश में जब तारे चमक रहे होते हैं तब उनके बहाने न जाने कौन कवि को बुलाता है। जब आकाश मे मेघ छाये होते हैं उस समय भी उसे कोई बुलाता है—

व्याख्या—जब बादलों से भरा हुआ भयकर आकाश गरजना करता है, सर्वत्र अन्धकार छाया रहता है पवन तेजी से चलने के कारण आवाज करता है और मूसलाधार वर्षा हो रही होती है उस समय न जाने कौन तेजी से चमकती हुई बिजली के द्वारा मुझे सकेत करता है।

वसत जब धरती को यौवन के भार से झुकी हुई या पूर्ण देखता है तो भौंरो की गुञ्जार के रूप मे गू ज उठता है। वसन्त ऋतु मे वियोगी जनो के हृदय में वसत के उद्दीपनकारी प्रभाव से उसी प्रकार मृदुल भाव उमर आते हैं जिस प्रकार वसत में अनेक प्रकार के पुष्प खिले रहते हैं। पुष्पो

से बसंत ऋतु मे सुगंध विकीर्ण होती रहती है परन्तु वियोगी जनो के हृदय से दुःख की सांस चला करती है। उस समय- बसंत ऋतु में खिले फूलों से विकीर्ण होती हुई सुगन्ध के बहाने न जाने मुझे कौन मौन संदेश भेजा करता है।

विशेष—(१) उस भयानक वातावरण मे भी जबकि घनघोर वर्षा हो रही हो तेज वायु सांय-सांय कर रही हो, प्रगाढ़ घनाकार छाया हो कवि को बिजली के बहाने कोई आमन्त्रण देना प्रतीत होता है।

(२) बसन्त और धरती का मानवीकरण है। 'विधुर उर के से' मे उपमा एवं 'मिस' आ जाने से अपन्हुति अलकार है।

क्षुब्ध ....मेरे मौन।

शब्दार्थ—क्षुब्ध=भयंकर जल-लहरो से युक्त, जल-शिखरो=जल की ऊची-ऊची लहरें, वात=वात्याचक्र, हवा, फेनाकार=झागो से युक्त, विघुर=विकल, घोर=हुवा, विहग=पक्षी, अलस=आलस्ययुक्त, अलसाये।

सन्दर्भ—कवि को लगता है जैसे लहरो में से कोई बुलावा दे रहा हो।

व्याख्या—जब पवन समुद्र मे उठती हुई अत्यन्त ऊची-ऊची लहरों को मथ कर समुद्र मे झाग पैदा कर देता है और चारो ओर असंख्य बुलबुले उठाता और गिराता रहता है, तब उन लहरो मे से न जाने कौन मुझे मौन रह कर अपने पास बुलाता है।

प्रभात होते ही जब संसार स्वर्णिम आभा से चमक उठता है, सर्वत्र सुख,सौन्दर्य और सुगन्ध फैल जाती है, चारों ओर पक्षी प्रसन्नता से संगीत अलापने लगते हैं और उनकी सुन्दर ध्वनि पृथ्वी से आकाश तक छा जाती है। उस समय मेरे अलसाये नेत्रों के पलकों को मौन रहे रहे न जाने कौन खोल देता है।

विशेष—(१) प्रकृति के भयकर और कोमल दोनो ही रूप कवि को मौन निमन्त्रण देते प्रतीत होते हैं।

(२) 'स्वर्ण ... छोर'—इन पक्तियो मे प्रभात का चित्रण है। प्रभातकालीन लाल रंग के बाल रवि की आभा से सभी वस्तु स्वर्णिम रंग युक्त प्रतीत होती है। भीनी-भीनी सुगन्धमय समीर प्रवाहित हो उठती है। सर्वत्र वातावरण सुखद और सुन्दर प्रतीत होता है।

(३) रात्रि के अन्धकार का अवसान होते ही प्राणी जगत् मे नई चेतना की लहर दौड जाती है। पक्षी वर्ग धरती ही नही आकाश मे उड-उड कर प्रसन्नता से चहकने लगता है। जिससे धरती और आकाश सर्वत्र प्रसन्नता से गाते पक्षियों के मधुर संगीत की ध्वनि सुनाई पडती है। इसे ही भू-नभ के छोर मिलाता कहा है।

तुमुल........ ...: बृग मौन।

शब्दार्थ—तुमुल=सघन, तम=अन्धकार, एकाकार=एक सी आकृति वाला, भीरु=भयभीत, कायर, डरपोक, तन्द्रा=नींद की खुमारी, खद्योत=जुगनू, कनक-छाया=प्रभातकालीन सुनहरी आभा, सकाल=प्रभात, वाल=बच्चे, सुरभि-पीडित=सुगन्ध से मस्त।

सन्दर्भ—पन्तजी को सोने से न जाने कौन चुपके से जगा लेता है। अन्धेरी रात में जुगनुओं के माध्यम से उन्हें न जाने कौन रास्ता दिखा देता है।

व्याख्या—जब रात्रि के घने अन्धकार मे संसार ऊघने लगता है। किसी वस्तु में अन्तर नही दिखाई पडता उस समय झनकार करते हुए झींगुर-तन्द्रा को भग करते जान पडते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो रात्रि के सघन अन्धकार को देखकर डरने के कारण कायर झींगुर चिल्ला रहे हो। उस सघन अन्धकार में टिमटिमाते जुगनुओ के माध्यम से न जाने तब कवि को कौन पथ दिखलाने का प्रयत्न करता है। पथ दिखाने वाले को कवि जान नही पाता।

प्रात काल सूर्य की स्वर्णिम आभा सर्वत्र फैल जाती है उस समय रात्रि भर सोती रहने वाली कलिया अपने हृदय के द्वार खोलकर अर्थात् खिलकर सुगन्ध वितरित कर उठती है। उस सुगन्ध से मस्त होकर भौंरो के बच्चे कलिकाओ से रस पान करने के लिए तडप उठते हैं और अपनी तड़प को गुञ्जार के रूप मे व्यक्त कर उठते है। उस समय न मालूम कौन ओस के रूप में ढुलक कर मौन ही रहकर मेरे नेत्रो को आकर्षित कर लेता है।

विशेष—(१) वर्षा ऋतु की कृष्णपक्ष की रात्रि में जबकि आकाश मे घनघोर बादल छाये रहते हैं सूचीभेद्य अन्धकार छा जाता है। ऐसा प्राय भाद्रव माह की कृष्णपक्ष की रात्रि मे होता है। निश्चय ही वे रात्रिया भयावनी लगती हैं। फिर बूंदें पड रही हो, बिजली के साथ-साथ बादल गर्जना कर रहे हों तब तो दृश्य और भी भयावना हो जाता है। हाथों-हाथ दिखाई नही पडता। ऐसी स्थिति मे ससार एकाकार दीख पडता है। जड-चेतन छोटे बड़े वृक्ष और मनुष्य किसी मे अन्तर ही नही किया जा सकता। अन्धकार के अतिरिक्त कही कुछ दिखाई ही नही पडता।

(२) झींगुरो की झनकार वैसे ही झीनी होती है। वह तो रात्रि के शान्त वातावरण में ही सुनी जा सकती है। भयावनी रात्रि मे झनकार करते झींगुरो के सम्बन्ध मे कवि कल्पना करता है कि डरपोक झींगुर, जबकि सर्वत्र शान्ति छाई रहती है, निश्चय ही डर के कारण चिल्लाते रहते हैं।

(३) प्रस्तुत पक्तियों में शब्द-चयन अत्यन्त कोमल एव मोहक है। झींगुरों को झनकार को झीनी तो पहले ही पन्तजी कह चुके हैं।

विद्धा ... ...हो कौन।

शब्दार्थ—विद्धा=समाप्त कर, गुरुतर भार=भारी बोझ, सुवर्ण अवमान=सुनहला अन्त, श्रमित=थके हुए, जुडाती=शीतल करती,

छाया-जग=स्वप्न लोक, छविमान=सौन्दर्यशाली, अघोष=शब्दविहीन, मन्द, छिद्रों=कानों।

सन्दर्भ—कवि को उस अज्ञात सत्ता की छवि प्रकृति के प्रत्येक व्यापार में दिखाई पड़ती है। रात्रि को सोते समय स्वप्न-लोक में वही अज्ञात सत्ता भ्रमण कराती है।

व्याख्या—जब दिवस का अन्त होते ही सायंकाल की सन्ध्या हो जाती है तो मैं दिनभर के कार्यों के बोझ से मुक्ति पाकर आराम करने के लिए शैया पर लेटकर अपने व्याकुल प्राणों को शान्ति प्रदान करता हूँ उस समय न जाने कौन मौन रहकर ही मुझे स्वप्नों के संसार में भ्रमण कराया करता है। अर्थात् दिन भर कार्य करके मैं जब रात्रि में विश्राम करता हूँ जिससे कि मेरे प्राणों को सुख शान्ति मिले परन्तु उस स्थिति में भी न मालूम कौन व्यक्ति मुझे स्वप्न दिखाया करती है।

हे अपार सौन्दर्य सम्पन्न ! मैं जान नहीं पाता कि तुम कौन हो। तुम मुझे अबोध और अज्ञान जानकर मुझे ऐसे रास्ते दिखा देते हो जिनसे मैं अपरिचित हूँ। तुम मेरे रोम-रोम में सुख का संगीत फूँक देते हो, मुझे नव स्फूर्ति प्रदान कर देते हो। मौन बने रहकर मेरे सुख और दुःख में सदा साथ रहने वाले मैं नहीं कह सकती कि आप कौन हो। अभिप्राय यह है कि एक ऐसी अज्ञात शक्ति का कवि को आभास होता रहता है, जो उसकी सदा सहायता करती रही है। यह शक्ति कौन है कैसी है कुछ ज्ञात नहीं। वह कभी बोलती भी नहीं है।

विशेष—(१) स्वप्नों के संसार को पन्तजी ने छाया-जग कहा है जो उपयुक्त ही है। किसी वस्तु की छाया में उसके विभिन्न अंग स्पष्ट नहीं देखे जा सकते। उसमें अस्पष्टता रहती है। इसी प्रकार स्वप्न देखने के उपरान्त जब आँख खुलती है तो स्वप्न में देखी वस्तु अदृश्य हो जाती है। स्वप्न में देखी हुई वस्तु की स्मृति भी धूमिल होती है जैसी कि छाया होती है। इसलिए स्वप्नों के संसार को छाया-जग कहना उचित ही है।

(२) कुरान के अनुसार अल्लाह असीम सौन्दर्यशाली है। पन्तजी ने अज्ञात शक्ति के द्वारा ईश्वर की ओर ही संकेत किया है, ऐसा प्रतीत होता है और उसे 'छविमान' विशेषण देकर सम्बोधित किया है।

(३) इस समूचे गीत में कवि को प्रकृति के कोमल और भयङ्कर दोनों रूपों ने आकर्षित किया है। दोनों ही रूपों में इतना ही नहीं विश्व के कण-कण में उसे अज्ञात विराट सत्ता का आभास हुआ है।

(४) कवि ने स्वयं को नायिका भी माना है और ब्रह्म को प्रियतम। कवि की अपने प्रियतम से कभी बातें नहीं हुईं। उसके प्रियतम ने तो मौन रहने का मानो व्रत ले लिया है परन्तु मौन रहते हुए भी वह कवि को प्रत्येक राह दिखाता चलता है, और सुख-दुख सभी में उसका साथ देता रहता है। ऐसे चौबीस घण्टे साथ रहने वाले अपने सहचर को कवि कभी जान नहीं पाया कि वह कौन है आखिर।

अनित्य जग

कथ्य—प्रस्तुत कविता मे 'निष्ठुर परिवर्तन' कविता के भावो को ही दूसरे रूप मे व्यक्त किया गया है। यहा कवि ने ससार को नश्वर माना है और उसके करुण चित्र उतारे हैं। यह कविता पंतजी के 'पल्लव' काव्य ग्रन्थ की सर्वश्रेष्ठ रचना 'परिवर्तन' का एक भाग है। 'परिवर्तन' जैसा कि नाम से स्पष्ट है, इस कविता का कवि के जीवन मे विशेष महत्व है। इस कविता के साथ कवि का मानसिक परिवर्तन भी सम्बद्ध है। इस तथ्य को स्वय पतजी एव आलोचको ने स्वीकार किया है।

बसत ऋतु मे जिस डाल पर फूलो का समूह लदा रहता था, भौरे जहा गुञ्जार करते थे शिशिर ऋतु में वही डाल अपना सारा वैभव खोकर दरिद्र होकर दुःख से काप उठती है। उसके सारे फूल पत्ते गिर जाते हैं। उसे अपना जीवन तब भार मालूम होने लगता है। वर्षा ऋतु मे नाले जल से उमडते हुए बहा करते हैं परन्तु ग्रीष्म ऋतु की तीव्र गर्मी से उसका सारा जल समाप्त हो जाता है। नाले का केवल एक चिह्न रह जाता है जो काल के परिवर्तन के सूचक चिह्न बन जाते है, प्रात कालीन लाल सूर्य की स्वर्णिम आभा से मण्डित सारा ससार सौन्दर्य-सम्पन्नता के कारण सोने सा प्रतीत होता है वही समय के परिवर्तन के साथ सध्या के समय अग्नि मे जलता हुआ सा दीखने लगता है।

युवावस्था में मनुष्य का शरीर सुगठित सुडौल और सुन्दर प्रतीत होता है परन्तु वही शरीर वृद्धावस्था मे हड्डियो का ककाल मात्र रह जाता है। युवावस्था मे सर्प के समान काले और चिकने दीख पडने वाले केश सर्प की केंचुली कास और सिवार के समान सफेद, रूखे और उलझे हुए से असुन्दर लगने लगते हैं। कवि कहता है कि ससार मे चार दिन तक सभी सुख-सौंदर्य भोग सकते हैं सदा नही।

शरीर की जो कान्ति और स्निग्धता बचपन मे रहती है वह वृद्धावस्था मे कहा रहती है। चादनी सा आनन्द-प्रद तो यौवन काल ही होता है वृद्धावस्था तो भयकर अन्धकार के समान होती है। शिशिर ऋतु मे जिस प्रकार पाला प्रफुल्लित पुष्पो को जला डालता है, उसी प्रकार निराशा और वेदना के कारण आखो से निकले हुए आसू फूल से कोमल गालो को झुलसा देते है। युवावस्था का निर्मल शीतल हास कष्टों से उत्पन्न गहरी सासो के द्वारा भुला दिया जाता है। जगत में सयोग के दिन अल्प होते हैं परन्तु वियोग के दिन काटे से नही कटते। युवावस्था की काम क्रीडाएं वृद्धावस्था में समाप्त हो जाती हैं।

यदि किसी को सुख मिल जाता है तो काल उन्हे ऋण के समान सुखों को छीन कर बदले मे असख्य दुख दे देता है। असख्य मणिरत्नो का सौंदर्य

ज्वाला सी प्रतीत होती है। प्रभात दिन के आरंभ का सूचक है और सध्या उसके अवसान की। जीवन के शैशव-काल की तरह दिन का आरंभ प्रभात सर्वत्र सुख शान्ति विकीर्ण करता हुआ आता है परन्तु सध्या के उपरान्त सर्वत्र अंधकार ही अंधकार फैल जाता है जो किसी वस्तु के जलने के उपरान्त बची राख सा प्रतीत होता है। युवावस्था बड़ी रंगीन होती है। मनुष्य का शरीर यौवन की कान्ति और अंगो के विकास, अंगों की सुडौलता के कारण बड़ा सुन्दर लगा करता है परन्तु क्या यह स्थिति सदैव रहती है? वृद्धावस्था के आते ही मनुष्यो के शरीर जो युवावस्था में मास से भरे रहने के कारण उभरे हुए दीख पडते थे, हड्डियो के हिलते हुए ककाल रह जाते हैं। युवावस्था के सर्प के समान चिकने कालेकेश वृद्धावस्था में सर्प की केचुली, काम और सिवार घास के समान सफेद और रूखे हो जाते हैं। कवि कहता है कि इस अनित्य ससार मे सभी का वल वैभव चार दिन तक ही रहता है। बसत ऋतु की शोभा शिशिर ऋतु के आगमन पर समाप्त हो जाती है। यौवन का सौंदर्य और वल वृद्धावस्था के द्वारा अपहृत हो जाता है। सुख के वाद लम्बा दु ख भोगना ही पडता है।

विशेष—१. पतजी ने ऐसे उपादानो को प्रकृति से लिया है जो अपने आरम मे आकर्षक होते है परन्तु उनका अवसान दु खपूर्ण होता है। वसत सुखद है तो शिशिर उसके सौन्दर्य का नाशक है। प्रात काल नया जीवन और प्रकाश देता है तो सध्या दिनभर की थकान और अन्धकार दे जाती है। यौवन जीवन की वैभवपूर्ण अवस्था है तो वृद्धावस्था दु खो का भण्डार। प्रकृति के ऊपर वर्णित उपादानो से जीवन की नश्वरता भी व्यजित हो रही है। अतिम पक्तिया तो स्पष्टत मानव-जीवन से सम्बद्ध हैं।

२ अतिम दो पक्तिया उपर्युक्त सम्पूर्ण कथन का सार है और 'चार दिन की चादनी फेरि अंधेरी रात' का साहित्यिक रूपान्तर है।

आज बचपन " " भूल।

शब्दार्थ—गात=शरीर, जरा=बुढापा, जरा का पीला पात=वृद्धावस्था, जब शरीर पीले पत्ते के समान रक्त के अभाव मे पीला पड जाता है। नयनो का नीर=आसू, प्रणय=प्रेम, अधर=होठ।

सन्दर्भ—बसत, प्रातः, यौवन सभी का अवसान दु:खद होता है। हर सुख की वस्तु का स्थान दुखद वस्तु ग्रहण करती है।

व्याख्या—बचपन का शरीर कितना कोमल कितना सुन्दर और लालिमा युक्त होता है परन्तु बचपन सदा नही रहता। हर परिवर्तनशील वस्तु की तरह वह भी वृद्धावस्था का मुह देखता है। वृद्धावस्था मे शरीर सूखे पीले पत्त की तरह पीला हो जाता है उसमे रक्त का अभाव हो जाता है। शरीर न बचपन के समान कोमल और कमनीय रहता है और न लालिमा युक्त। जिस प्रकार सुखद चादनी रात्रि के उपरान्त अंधेरी रात्रि आया करती है उसी प्रकार बचपन और युवावस्था के बाद वृद्धावस्था। सुख की अवधि बहुत कम और दु:ख की अवधि बहुत लम्बी होती है। शिशिर ऋतु मे जिस प्रकार

पाला पडने से फूल सूख कर गिर जाते हैं, उसी प्रकार यौवन के [illegible] कपोल वृद्धावस्था में [illegible] और [illegible] के कारण आँखों में [illegible] के द्वारा कुम्हला जाते हैं। [illegible] के [illegible] और [illegible] पड जाती हैं। यौवन में मनुष्य [illegible] अधरों का चुम्बन करने के लिए अधीर बना रहता है, वही वृद्धावस्था में [illegible] पकने को भूल जाते हैं क्योंकि यौवन में [illegible] वृद्धावस्था में दुर्बलता के कारण अपना शरीर भी बोझ बन जाता है। [illegible] की ओर सोचने तक का अवसर ही नहीं मिलता है।

विशेष—१ पंत जी ने सुख के दिन [illegible] बताये हैं—[illegible] परन्तु दुःख की अंधेरी रात्रियों की संख्या तो अनन्त बताई है। सुख की घड़ियों में भी दुःख की [illegible] बनी रहती है परन्तु मनुष्य [illegible] है तब उसके मुँह से यही निकलता है कि न जाने [illegible]।

मृदुल होठों···· [illegible]

शब्दार्थ—हिमजल=ओस, [illegible] आकाश, अधर-मधुर संयोग=होठों का मधुर मिलन, [illegible] अनन्तकाल, विधुर=एकाकी, सपना=[illegible], [illegible] रोते=फूट-फूट कर रोते, निरवाय=[illegible], [illegible]।

सन्दर्भ—वसंत को शिशिर में, प्रातः की सन्ध्या में तथा यौवन को जरा में परिवर्तित होते देख कर पंत जी को यह विश्वास हो गया कि संसार की प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है। मिलन क्षणिक होता है और विरह का समय अपार होता है।

व्याख्या—युवावस्था में कोमल होठों पर ओस की बूंद के समान निर्मल हास छाया रहता है परन्तु वृद्धावस्था के कष्टों और चिन्ताओं से उत्पन्न वेदना के कारण चलने वाली गहरी साँसों के कारण यह मिट जाता है। प्रातःकाल फूलों के ऊपर पड़ी हुई चमक से युक्त ओस की बूंदें जिस प्रकार हवा चलने पर जमीन पर गिर पड़ती हैं उसी प्रकार युवावस्था का मृदुल हास वृद्धावस्था की परेशानियों के कारण लुप्त हो जाता है। शरद ऋतु का आकाश बादलों से रहित तथा स्वच्छ रहता है परन्तु बरसात में काले बादल छा कर आकाश को निर्मल नहीं रहने देते, उसी प्रकार यौवन में प्रसन्नता के कारण जो भौंहें सरल थी वही चिन्ता के भार से बुढ़ापे में सिकुड़न युक्त हो जाती है, उसमें बल पड़े रहते हैं।

युवावस्था में होने वाला होठों का मधुर संयोग वृद्धावस्था में चलने वाली गहरी सांसों द्वारा रोक दिया जाता है। वियोग में जिस प्रकार मनुष्य को एकाकी जीवन व्यतीत करना पड़ता है उसी प्रकार वृद्धावस्था में वही मधुर चुम्बन नहीं मिल पाते। बहुत थोड़े दिन तक मिलन का सुख भोग कर मनुष्य को लम्बे काल तक वियोग का कष्ट सहना पड़ता है, अथवा संयोग के समय मिलने वाले आनन्द में भूल कर मनुष्य को समय के बीतने का भान ही नहीं हो पाता, परन्तु विरह जनित कष्ट के कारण उसे एक-एक पल काटना भी कठिन लगता है।

युवावस्था मे प्रेमी और प्रेमिका सहज अनुरागवश एक-दूसरे से पृथक् होने का कष्ट न सहन कर टकटकी लगाए एक-दूसरे की ओर निहारा करते थे परन्तु वृद्धावस्था मे जीवन की अनेक आपदाओ एव समय के अनुगामी बने दुर्बल शरीर के कारण प्रेमी-प्रेमिका लगातार आसू बहाया करते हैं। युवावस्था मे आलिंगन के समय उनके शरीर आनन्द से रोमाचित हो उठते थे परन्तु अब वृद्धावस्था मे वे आलिंगन और वे रोमाच स्मृति के विषय बन कर रह गये हैं। युवावस्था के रोमाच जब स्मृति-पटल पर आते हैं तो काटो के समान दु खदायी लगते हैं क्योकि कहा तो यौवन का आनन्दमय जीवन था और कहा अब वृद्धावस्था का दु ख भरा जीवन। बीते हुए जीवन का सुख वृद्धावस्था के दु ख की भूमिका बन जाता है।

विशेष—१ प्रकृति-व्यापारों का वर्णन करते समय भी पत जी प्रणय-व्यापारो को नही भूलते। 'अधर-मधुर-सयोग' और प्रेमी-प्रेमिकाओं के आलिंगन की बात यहा भी उन्होंने कही है।

२ यहा कवि ने अनेक मुहावरे बडी सफलता के साथ प्रयोग किये हैं—जैसे—आठ आसू रोना, काटो के समान कसक उठना।

किसी को सोने बयार।

शब्दार्थ—विपुल=असख्य, अत्यधिक, विभव=वैभव, समृद्धि, विद्युत-ज्वाल=बिजली की चमक, क्षणिक, डार=डाल, शाखा, बयार=पवन।

सन्दर्भ—प्रस्तुत पक्तियो मे कवि ने बताया है कि किसी को यदि थोडा सुख मिल जाय तो उसे कुछ दिन बाद सुख से अधिक दुःख देखना पडता है।

व्याख्या—पत जी को ससार मे सुख की अपेक्षा दु ख का आधिक्य जान पडता है। इसीलिए कवि कहता है कि यदि किसी को स्वर्ण के समान कुछ सुख मिल भी जायें तो वे काल के दिये गये ऋण के रूप मे ही मानने चाहिये। क्योंकि किसी से लिया गया ऋण ब्याज सहित चुकाना पडता है। काल भी कुछ समय के लिए सुख देकर बाद मे ब्याज सहित अपना दिया ऋण वसूल कर लेता है अर्थात् किसी व्यक्ति को कुछ सुख देकर बाद मे बहुत अधिक दुख देता है। लेन देन के कार्य मे काल बडा ही स्पष्ट है, सकोच रहित है। उसे किसी की शर्म नही है।

यदि कुछ व्यक्तियो के पास अपार मणि रत्नों की सम्पत्ति है तो उन्हे यह बात नही भूलनी चाहिए कि उन मणि रत्नो का सौंदर्य इन्द्र धनुष की छटा के समान क्षण स्थायी है। सासारिक धन वैभव बिजली की चमक से अधिक ठहरने वाला नहीं होता। जिस प्रकार बिजली एक पल के लिए चमकती है और आखो को चकाचौंध कर छिप जाती है, परिणामस्वरूप कुछ देर तक मनुष्य कोई चीज स्पष्ट रूप से नही देख पाता और ठोकर खा जाता है उसी प्रकार वैभव मनुष्य की आखों में चकाचौंध उत्पन्न कर, लुप्त हो जाता है। उसमें घमड पैदा कर उसे अधा बना कर छिप जाता है। प्रात काल वृक्ष की डाल पर लदी ओस की बूदें सूर्य की किरणे पडते ही मोतियो के समान चमकने लगती हैं परन्तु कुछ देर बाद पवन आकर उन्हे गिरा कर धूल मे मिला कर समाप्त कर देता है। उसी प्रकार मानव-जीवन की डाल पर वैभव भी

क्षणिक होता है। काल की बयार आकर उसे क्षण भर मे नष्ट कर देती है। मनुष्य काल के कारनामो को जान भी नही पाता। उसके सभी कारनामे चुपके से होते रहते हैं।

विशेष—१. सुखी मनुष्य को इसलिए गर्व नही करना चाहिए कि अपने सुखों का सृष्टा वह स्वय नही है। उसके पास जितने भी सुख हैं वे दूसरे के ऋण हैं। ऋणदाता का क्या विश्वास कि वह अपना ऋण कब वसूल कर ले और गरीबी का दुःख देखना पड़े।

२. धन की उपमा बिजली की चमक से दी गई है। बिजली की चमक बडी ही क्षणिक होती है, उसी प्रकार धन कब लुप्त हो जाय कहा नहीं जा सकता। इसीलिए लक्ष्मी को चचला भी कहा जाता है।

खोलता उडगन।

शब्दार्थ—हुलास = उल्लास, आनन्द, अवसाद = दुख, उच्छ्वास = आह, अचिरता = अस्थिरता, अनित्यता, क्षणभगुरता, सिसकता = रोते समय हिचकी भी लेना, सिहर उठते = काप उठते, उडगन = तारे।

सन्दर्भ—ससार मे सुख के बाद दुख का आगमन होता है। इसी बात को कवि ने अनेक प्रकार से कहा है। कवि कहता है कि—

व्याख्या—ससार का नियम बडा विचित्र है। ससार मे कही मानव जन्म लेकर अपने नेत्र खोलता है तो उसी क्षण कही दूसरे स्थान पर कोई व्यक्ति अपने नेत्र बन्द करता हुआ इस ससार से सदा के लिए चला जाता है। प्रत्येक क्षण ससार मे मृत्यु और जन्म की आख-मिचौनी होती रहती है। जिस स्थान पर एक क्षण पहले उत्सव मनाया जा रहा था, हास और उल्लास का वातावरण फैला हुआ था, वही दूसरे क्षण दुख, अश्रु और गहरी सासो का साम्राज्य फैल जाता है। कवि कल्पना करता है कि ससार मे इतना शीघ्र होने वाला परिवर्तन, ससार की अनित्यता देखकर वायु भी कराह उठता है, आकाश का हृदय ओस के अश्रुओं के रूप मे उमड पडता है अर्थात् नीला आकाश ओस की बूदो के रूप में अश्रु बहाकर रोने लगता है। समुद्र का मन लहरो के रूप मे सिसकिया भरने लगता है और तारे भय से कापने लगते हैं।

विशेष—(१) कवि ने प्रस्तुत कविता मे ससार की परिवर्तनशीलता पर खेद अनेक प्रकार से व्यक्त किया है कही-कही सासरिक प्राणियो को धन वैभव का गर्व न करने का सकेत दे दिया है।

(२) अनुभूति की तीव्रता और सवेदनशीलता के दर्शन इस कविता मे बडी सरलता से किये जा सकते हैं। सवेदनशीलता के कारण ही कवि को आकाश अश्रु बहाता, समीर निःश्वास भरता और समुद्र सिसकता जान पडता है।

(३) प्रत्येक व्यक्ति अपने भावो के अनुरूप प्रकृति के रूपो को व्यापार करते देखा करता है। दुखी व्यक्ति को प्रकृति रोती हुई और सुखी व्यक्ति को हसती हुई प्रतीत होती है। सम्भवतः इस कविता मे चिर-कुमार कवि का प्रणय-वचित हृदय असह्य वेदना से व्याकुल होकर ससार की नश्वरता का बहाना लेकर चीत्कार कर रहा है।

निष्ठुर परिवर्तन

कथ्य—ससार मे कवि को परिवर्तन का ताण्डव नृत्य होता दीख पडता है। ससार के सारे दु खो का मूल कारण कवि परिवर्तन को ठहराता है। शिवजी जिस प्रकार ताण्डव नृत्य करके सृष्टि का सहार करते हैं उसी प्रकार परिवर्तन अपनी क्रूर क्रियाओ द्वारा ससार में ध्वस का साम्राज्य फैला देता है। परिवर्तन जब अपने नेत्र खोलता है तब उसी प्रकार ससार मे ध्वस का साम्राज्य व्याप्त हो जाता है जिस प्रकार शिवजी के तीसरे नेत्र खोलने पर ससार मे सहार प्र रम्भ हो जाता है। परिवर्तन के शान्त पडे रहने पर ही ससार उन्नति की ओर अग्रसर होता है।

कवि परिवर्तन को नागराज वासुकि के समान घोषित करके उससे कहता है कि हे वासुकि से भयकर परिवर्तन ! तुम वासुकि के समान ही ध्वस विशेष के रूप मे पृथ्वी पर अपने पद-चिन्ह छोड जाते हो। तुम्हारे द्वारा किये गये ध्वस के चिन्ह खोज निकाले जाने वाले खडहर हैं। वासुकि अपने मुह से झाग छोडा करता है और उसकी झागभरी फुकारें अत्यन्त भयानक होती हैं। ऐसा लगता है यह आकाश उसी की फुकारो से घूमता रहता है। आकाश में छा जाने वाली भयानक मेघ घटाए मानो तुम्हारा ही झाग है। मृत्यु तुम्हारे विषैले दात है। विषैले दात के समान तुम्हारे मृत्यु रूपी दात से कोई नही बच सकता। जब प्रलय के उपरान्त नवीन सृष्टि होती है वही मानो तुम्हारा केंचुली बदलना है। सम्पूर्ण विश्व तुम्हारे निवास के लिए बिल के समान है। वासुकि कुण्डली मारकर बैठता है दिशाओ की गोलाकार प्रतीति ही मानो तुम्हारी कुण्डली है। तुम वासुकि के समान कभी पकड मे नही आते। तुम्हारे सामने देवता तक मस्तक टेकते हैं। रथ के पहियो के बीच घूमती लकडियों के समान हजारो व्यक्तियो के भाग्य तुम्हारे हाथ में हैं। तुम्ही उनके भाग्य-विधाता हो।

तुम एक क्रूर एवं अत्याचारी राजा के समान हो। जिस प्रकार क्रूर सम्राट अपनी इच्छानुसार कार्य करता हुआ चाहे जिसे कुचल देता है उसी प्रकार तुम भी सृष्टि को नष्ट-भ्रष्ट कर देते हो। जिस ओर तुम्हारी दृष्टि उठ जाती है उधर ही युग-युग का वैभव, कला और कौशल मिट जाता है। शारीरिक तथा मानसिक क्लेश अत्यधिक वर्षा, तूफान, बाढ और भूकम्प आदि तुम्हारी सेना है जो तुम्हारी आज्ञा पाते ही ध्वंस कार्य में जुट पडती है। पृथ्वी काप उठती है।

हे निष्ठुर परिवर्तन ! ससार के हृदय में होने वाली धडकन तुम्हारे ही भय की सूचक है। तुम्हारा निमन्त्रण पलकें झुकाकर मानना पडता है। मनुष्य अपनी आकाक्षाओ को पूरा करने के लिए कठिन परिश्रम करते हैं परन्तु तुम सफलता में बाधक बन जाते हो—कमल को भीतर-ही-भीतर काटने वाले कीडे के समान। इच्छाओं से मनुष्य के हृदय को तुम उसी प्रकार काटने

रहते हो जिस प्रकार कमल का कीड़ा कमल को काटता रहता है। कृषक खून पसीने से अपनी खेती को सम्भालता है परन्तु तुम ओले बरसा कर उसे क्षण भर में नष्ट भ्रष्ट कर डालते हो। हे निष्ठुर परिवर्तन सम्पूर्ण संसार राशि के आकाश के समान तुम्हारा ही रमास्थल है। सम्पूर्ण दिशाए तुम्हारे ध्वंसकारी कार्य से निनादित होती रहती है। यमराज का क्रोध मानो तुम्हारे द्वारा मनुष्यो का उड़ाया गया मजाक है। संसार की दु खभरी कहानी तुम्हारी ही कथा है, अर्थात् संसार के दुखो के कारण तुम हो। तुम्हारी वक्रदृष्टि पड़ते ही संसार मे प्रलय हो जाती है। बड़े-बड़े साम्राज्यो का निशान तक नही रहता। तुम्हारे एक बार के रोमाञ्च से ही दिशाए और सम्पूर्ण पृथ्वी काप उठती है। नक्षत्र भयभीत पक्षियो के समान गिरने लगते है। समुद्र मे आलोडन हो उठता है। गगन आहत होकर गम्भीर गर्जना करने लगता है।

निष्ठुर परिवर्तन ! बहरे व्यक्ति के समान संसार के करुण क्रन्दन का तुम्हारे ऊपर कोई प्रभाव नही होता। तुम्हारे पत्थर-हृदय पर दु ख के कारण बहने वाले संसार के प्राणियो के आसुओं का कोई प्रभाव नही होता। संसार की आहो का भी तुम्हारे ऊपर कोई प्रभाव नही होता इसीलिए तो तुम सभी दिशाओ मे अशान्ति भेजते रहते हो। संसार में सर्वत्र दु ख का साम्राज्य दिखाई पड़ता है फिर भी मानव सुख शान्ति की कामना किया करता है। कितना बड़ा मनुष्य का भ्रम है। भला उसे इस संसार मे कही सुख मिल सकता है। सृष्टि ही अशान्ति के लिए होती है। जीवन मे सर्वत्र सग्राम ही सग्राम है विराम तो एक स्वप्न है। कोई वस्तु कुछ दिन तक अस्तित्व रख कर नष्ट हो जाती है। कुछ समय तक जहां सुन्दर-सुन्दर नगर उपवन रहते हैं वहा सैकड़ो वर्षों तक भूमि विरान पड़ी रहती है। इसीलिए तो ससार असार है कि यहा वस्तुओ का सृजन होता है, वे फलती फूलती हैं और नष्ट हो जाती हैं। वैभव सम्पन्न भवन खण्डहर होकर नष्ट हो जाते हैं। इस समस्त विश्व में दिन-रात एक ऐसा खेल चलता रहता है जैसा कि मेघ और पवन के बीच हुआ करता है। ससार में भी सृष्टि और ससार का क्रम चलता रहता है। काल्पनिक लोक से आखें फेर कर कवि ने ससार की वास्तविक स्थिति की ओर देखना यहा आरम्भ कर दिया है।

अहे निष्ठुर······ · ·· पतन।

शब्दार्थ —निष्ठुर=कठोर हृदय, ताण्डव नर्तन = प्रलय उत्पन्न कर देने वाला नृत्य, विवर्तन = परिवर्तन, घूमना, नीचे की ओर लुढकना, नयनोन्मीलन = आखो का खोलना, निखिल=अखिल, समस्त, सम्पूर्ण, उत्थान पतन=उन्नति एव अवनति।

सन्दर्भ—कवि ने परिवर्तन की एक कठोर हृदय व्यक्ति के रूप मे कल्पना की है। उसे सम्बोधित करके कवि कहता है कि—

व्याख्या—हे परिवर्तन ! तुम्हारा ताण्डव नृत्य ससार की सम्पूर्ण सुख शान्ति को हर कर उसे ऐसा रूप प्रदान कर देता है कि जिसे देखकर दया आने लगती है; अर्थात् जिस प्रकार शिव अपने ताण्डव नृत्य के द्वारा अखिल विश्व का सहार कर देते हैं उसी प्रकार तुम अपनी क्रियाओ द्वारा सारे ससार

को मृत्यु और विनाश का क्षेत्र बना देते हो। तुम्हारी क्रियाए बडी कठोर होती हैं। तुम्हारा नेत्र खोलना सृष्टि के विनाश का कारण है। तुम्हारे नेत्र खोलते ही, तुम्हारी हलचल आरम्भ होते ही ससार मे विनाश का साम्राज्य छा जाता है। तुम्हारे नेत्र-उन्मीलन का वही परिणाम होता है जैसा कि शिव के तीसरे नेत्र खोलने का होता है।

विशेष—(१) कवि ने परिवर्तन का प्रलय के समय के शिवजी के रूप मे वर्णन किया है।

(२) 'निष्ठुर परिवर्तन' मे विशेषण विपर्यय है।

अहे वासुकि…… दिङ् मण्डल।

शब्दार्थ—वासुकि = नागो का राजा, लक्ष = लाखो, सख्यातीत अलसित = अदृश्य, न दीखने वाले, विक्षत = घायल, वक्षस्थल = सीना, फेनोच्छ्वसित = झाग से भरे स्फीत = शक्तिशाली, वडी, फूत्कार = फुकार, घनाकार = बादलो के रूप मे, गदलदन्त = जहर का दात, कचुक = केंचुली, कल्पान्तर = एक सृष्टि के उपरान्त दूसरी सृष्टि की उत्पत्ति, विवर = विल, वक्र = टेढी, कुण्डल = कुण्डली, साप की कुण्डली वना कर बैठने की स्थिति, दिङ् मण्डल = दिशाओ का घेरा।

सन्दर्भ—कवि परिवर्तन को वासुकि के समान सम्बोधित करके कह रहा है कि वासुकि जिस प्रकार भयानक होता है वैसा ही परिवर्तन भी भयानक होता है। वासुकि के समान परिवर्तन का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि—

व्याख्या—हे हजारो फन वाले वासुकि के समान भयानक परिवर्तन ! तुम्हारे लाखो न दीखने वाले चरण ससार के घायल वक्षस्थल पर निरन्तर चिन्ह छोडते जा रहे हैं। जिस प्रकार सर्प के चलने से रास्ते के ऊपर लकीर बन जाती है उसी प्रकार परिवर्तन के चिन्ह ध्वस अवशेषो के रूप मे रह जाते हैं। ससार मे परिवर्तन वस्तुओ के सुन्दर मूल रूप को विकृत बना देता है उन्हें ध्वस्त कर देता है। ध्वसावशेष ही घावो के समान हैं। वासुकि के सास छोडने से झाग निकल आते हैं और भयकर फुफकार होती है। झागो के साथ-साथ निकलने वाली फुकार से ही मानो आकाश घूमने लगता है। आकाश मे घिरी रहने वाली प्रलय का सा दृश्य उत्पन्न कर देने वाली बादलो की घटाए मानो तुम्हारा ही झाग है। बादलो की भाग-दौड से आकाश घूमता-सा प्रतीत होता है उसी प्रकार परिवर्तन भी भयकर उथल-पुथल मचाकर ससार को आतकित कर देता है। हे परिवर्तन मृत्यु तुम्हारा दात है जिसके चगुल से कोई बच नही सकता। वासुकि के विषैले दात के काटे जाने पर भी कोई नही बच पाता। सर्प तो अपनी केंचुली बदला करता है, उसी प्रकार एक सृष्टि के विनाश के बाद दूसरी सृष्टि होना तुम्हारा केंचुली बदलना है। सर्प का निवास बिल होता हैं तुम्हारा निवास सम्पूर्ण विश्व है। सर्प कुण्डली बना कर बैठा करता है। यहा समस्त दिशाओ का मण्डल ही मानो तुम्हारी कुण्डली बना कर बैठने की स्थिति है। तात्पर्य यह है कि समस्त विश्व तुम्हारा क्षेत्र है जहा तुम अपनी मनमानी किया करते हो।

विशेष—१. प्रस्तुत छन्द मे पतजी ने वासुकि द्वारा परिवर्तन का साङ्ग-रूपक प्रस्तुत किया है।

२. 'लक्ष——निरन्तर' मे विरोधाभास है।

३. 'घनाकार' मे श्लेष अलङ्कार है।

४ 'विक्षत' शब्द मे यह ध्वनि निकलती है कि ससार मे परिवर्तन का चक्र आदि काल से चलता आ रहा है। पृथ्वी पर जितने भी ध्वसावशेष हैं वे परिवर्तन से उत्पन्न मानो घाव है।

५ 'शत-शत———मयकर'—जैसी पक्तियो मे शब्द योजना बडी सघन है जिसमे भाषा की शक्ति बढ गई है। ऐसी शब्द योजना मे कवि अपने कथ्य को चित्र रूप मे प्रस्तुत कर सकता है। वर्णित भाव साकार हो उठता है।

६ परिवर्तन का क्रोध व्यक्त करने वाले उमड-घुमड कर आकाश मे छाने वाले बादलो को कवि ने क्रोधाविष्ट सर्प के द्वारा मारी गई फुकार के साथ निकले विष के झागो के समान बताया है।

७. एक कल्प जो कि चार अरब बत्तीस करोड मानव-वर्षो का होता है, के उपरान्त नवीन सृष्टि होती है। यही मानो वासुकि का केंचुली छोडना है।

अहे दुर्जेय..........धरातल ।

शब्दार्थ—दुर्जेय=जिसे जीतना दुष्कर हो, अजेय, विश्वजित=विश्व को जीतने वाले, नरनाथ=नरपति, राजा, तल=नीचे, माथा=मस्तक, नृशस=क्रूर, निष्ठुर, अनियन्त्रित=नियंत्रण रहित, स्वाधीन, ससृति=ससार, उत्पीडित=दुखी, पद-मर्दित=पैरो से कुचला हुआ, प्रतिमाए=मूर्तियां, चिर सचित=बहुत समय से इकट्ठी की हुई, आधि=मानसिक पीडा, व्याधि=शारीरिक कष्ट, वृष्टि=वर्षा, वात=आधी, तूफान, वह्नि=आग, विपुल = बडा, निरकुश=अनियन्त्रित, पदाघात=पैरो की चोट, विह्वल=दु.खी।

सन्दर्भ—परिवर्तन का क्षेत्र सम्पूर्ण विश्व है। परिवर्तन अपने पद-चिह्न वस्तुओ के विकृत रूप मे छोडता चला जा रहा है। उसकी शक्ति अपार है। वह स्वय निरकुश है और विश्व को जीतने वाला है। परिवर्तन की शक्ति का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

व्याख्या—हे निष्ठुर परिवर्तन! तुम अपार शक्ति वाले हो। तुम किसी के द्वारा जीते नही जा सकते। अपनी शक्ति के बल से तुम्ही ने समस्त ससार को जीत कर अपने नियत्रण मे कर रखा है। सैकडो बडे-बडे राजा और देवता तक तुम्हारे सिंहासन के सामने मस्तक टेका करते हैं अर्थात् जिस प्रकार अपने इन्द्रासन पर बैठे हुए देवताओं के राजा इन्द्र के सामने अन्य देवता सिर झुकाया करते हैं उसी प्रकार सत्तारूढ तुम्हारे सामने सभी सिर झुकाया करते हैं। तुम्हारे सामने किसी में सिर उठाने का साहस नही होता।

तुम्हारे रथ के पहियो के साथ सैकड़ो अनाथ लोगो के भाग्य घूमते रहते हैं। अर्थात् जिस प्रकार पहिये मे लगी लकडिया पहिये के साथ घूमा करती हैं उससे सम्बद्ध रहती हैं उसी प्रकार अगणित व्यक्तियो के भाग्य का उत्थान-पतन तुम्हारे आधीन होता है। तुम स्वाधीन रहकर एक क्रूर राजा के समान शासन करते हुए ससार को चाहे जितना कष्ट दिया करते हो। जिस प्रकार दुष्ट राजा किसी नगर पर आक्रमण करके उसे कुचल डालता है और उसे उजाड देता है, उसके भवनो को तोड देता है और मूर्तियो को टुकडे-टुकडे कर देता है उसी प्रकार तुम सभी कुछ ध्वस्त कर मानव का चिर-सचित वैभव और कला कौशल की प्रतीक सभी वस्तुओ को नष्ट कर दिया करते हो। भाव यह है कि परिवर्तन के एक सकेत से मानव द्वारा युग-युग से सचित कला-कौशल की वस्तुए नगर, भवन, प्रतिमाए आदि नष्ट हो जाती हैं। भूकम्प, ज्वालामुखी, बाढ आदि परिवर्तन के एक सकेत मात्र हैं जिनसे नगर के नगर विलीन हो जाते है। हे दुर्जेय परिवर्तन! शारीरिक पीडा, मानसिक पीडा, अतिवृष्टि, तूफान, उत्पात, आग, बाढ और भूकम्प आदि तुम्हारे भारी सैन्यदल हैं। किसी के नियत्रण मे न रहने वाले परिवर्तन! तुम्हारे सैन्यदल द्वारा कुचला हुआ ससार पीड़ा से काप उठता है तुम्हारे भारी सैन्य दल के वजन से पृथ्वी हिल उठती है। भाव यह है कि जिस प्रकार क्रूर राजा के सैनिक चाहे जिससे कष्ट दिया करते हैं उनके क्रूर आचरण से प्रजा कापने लगती है उसी प्रकार परिवर्तन के सैनिक रूप भूकम्प आदि द्वारा पृथ्वी काप उठती है।

विशेष—१ प्रस्तुत छन्द मे सागरूपक है। परिवर्तन एक क्रूर राजा के रूप मे चित्रित किया गया है।

२ 'पद मर्दित', 'पदाघात पद दलित' शब्दो का प्रयोग कवि ने परिवर्तन द्वारा ससार को कुचले जाने के लिए किया है। इनके साथ ही 'दुर्जेय' और 'विश्वजित' सम्बोधनो का प्रयोग करके कवि ने परिवर्तन को सर्वशक्तिमान बताया है।

जगत् ... समाधि स्थल।

शब्दार्थ—अविरत = निरतर, लगातार, हृत्कपन = हृदय की धडकन, सूचन = सूचना देने वाला, निखिल = सारे ससार के, विकच = खिला हुआ, विकसित, शतदल = कमल, कृमि = कीडा, स्वेदसिंचित = पसीने से सींचा हुआ, कडे परिश्रम से कमाया हुआ, ससृति = ससार, शस्य = खेती, फसल, दलमल देते = पैरो के नीचे कुचल देते, रौद देते, उत्पल = ओले, वाछित = चाहा हुआ, कृषि फल = परिश्रम से प्राप्त वस्तुए, स्पन्दित = कम्पन युक्त, नैश गगन = रात का आकाश, सकल = सम्पूर्ण समस्त।

सन्दर्भ—परिवर्तन सर्वदा अनिष्ट ही किया करता है, ऐसा कवि का विश्वास है। यहा परिवर्तन के द्वारा होने वाले दुष्परिणामो का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि—

व्याख्या—हे निष्ठुर परिवर्तन! ऐसा प्रतीत होता है कि ससार भर के प्राणियो के हृदय की धडकन तुम्हारे ही भय का परिणाम है। जिस प्रकार

किसी प्रकार का भय उपस्थित होने पर हृदय फडकने लगता है उसी प्रकार तुम्हारे निरतर बने रहने वाले भय के परिणामस्वरूप ही मानो सभी प्राणियो के हृदय मे धडकन हुआ करती है। जिस प्रकार किसी का निमत्रण स्वीकार करने के लिए जब हमे अनिच्छापूर्वक विवश होना पडता है तब हमारी आखें नीची हो जाती है और पलकें झुक जाती हैं, उसी प्रकार तुम्हारा निमत्रण-मृत्यु का निमत्रण प्राप्त करके हमे वह विवश होकर स्वीकार करना पडता है और हमारी आखें बन्द हो जाती हैं। आखो का बन्द होना ही अपनी विवशता का सूचक है।

ससार के प्राणियो के हृदयो मे अनेक आकाक्षाए रहा करती है और उन्हें पूरी करने के लिए वे कडा परिश्रम किया करते है परन्तु आकाक्षाओ को तुम पूरी नही होने देते ? तुम उस कीडे के समान हो जो कमल को भीतर ही भीतर काटता रहता है। अनेक वासनाओं से भरे ससार रूपी कमल के भीतर कालरूपी कीडे के समान घुसकर तुम उसे धीरे-धीरे काटते रहते हो। हे परिवर्तन ! किसानो द्वारा अपने कडे परिश्रम से अभिवृद्ध खेती को तुम ओले बन कर नष्ट-भ्रष्ट कर डालते हो और अभीप्सित फल से उन्हे वचित कर देते हो। भाव यह है कि ससार के व्यक्ति अपनी कामनाओ को पूर्ण करने के लिए जी-तोड परिश्रम करते हैं परन्तु क्रूर परिवर्तन उनको अभीप्सित फल मिलने से पूर्व ही उनके परिश्रम को विफल कर देता है। हे परिवर्तन जिस प्रकार बादलो की गम्भीर गर्जना से दिशाए गूजा करती है उसी प्रकार अविरल गति से चलने वाले तुम्हारे चक्र की ध्वनि को सुनकर सम्पूर्ण पृथ्वी भयभीत होकर कापा करती है। भाव यह है कि परिवर्तन हर क्षण हुआ करता है और ससार के सभी प्राणी उससे डरा करते हैं। रात्रि के आकाश सा समस्त विश्व ही तुम्हारा समाधि स्थल है। जिस प्रकार रात्रि मे आकाश मे सर्वत्र अन्धकार और नीरवता छा जाती है उसी प्रकार तुमने अपने क्रूर कर्मो से ससार को निराशा के अधकार से व्याप्त और उत्साह से हीन बना दिया है। अपनी नीरवता, निराशा के कारण ससार एकान्त में बने समाधि स्थल सा हो गया है।

विशेष—१ रात्रि निराशा और अवसाद की प्रतीक मानी गई है। परिवर्तन भी निराशा और अवसाद उत्पन्न करने वाला है। समाधि स्थल एकान्त मे होता है और वहा समाधिस्थ जन रात्रि मे भी अपनी साधना मे लीन रहा करते हैं उसी प्रकार इस पृथ्वी पर परिवर्तन रूपी साधक दिन-रात अपनी क्रियाओ मे लीन रहता है। परिवर्तन हर क्षण होता रहता है। इस ससार को समाधिस्थल कहना उचित है। अनवरत गति से कार्य तभी किया जा सकता है जब कि मार्ग में कोई बाधा न आवे, कार्यकर्ता मे कार्य करने की क्षमता हो। परिवर्तन तो दुर्जेय है।

२. प्रथम चार पक्तियो मे हेतुत्प्रेक्षा अलकार है। आगे सागरूपक है।

३ परिवर्तन के निमत्रण को आखे झुकाकर स्वीकारने से परिवर्तन का बडप्पन और आमत्रण स्वीकार कर्ता की विवशता स्पष्ट होती है।

४ 'नैश गगन सा'—में उपमा अलकार है।

काल का   गर्जन ।

शब्दार्थ—अकरुण = कठोर निष्ठुर, करुणा रहित भृकुटि विलास = क्रोध, भौंहो को टेढा करना, परिहास = मजाक अश्रु पूर्ण = करुणा पूर्ण अश्रुओ मे भरा, दु ख प्रकट करने वाला, निसर्ग = प्रकृत, निरतर, अभ्र ध्वज सौध = गगनचुम्बी महल, शृ गवर = ऊ ची चाटी, मेघाडम्बर = मेघों की सघन घटाए । दिग्भू = दिशाए और पृथ्वी, पक्षिपोत = चिडियो के बच्चे, उडगन = तारे, नक्षत्र, आलोडित = मथा हुआ, फेनोन्नत = झागो से भरे हुए, भुजगम = सर्प, इ गित = सकेत, दिक्पजर = दिशा रूपी पिंजडा, गनाधिप = गजो का अधिपति, गजराज, विनतानन = नीचा मुख किये हुए, वाताहत = वायु के द्वारा आहत, वायु से टकराकर, आर्त = पीडित, दुखी, गुरु गर्जन = भयकर चिघाड ।

सन्दर्भ—परिवर्तन का परिणाम सदा अनिष्टकारी होता है । परिवर्तन को सर्वत्र कवि ने अनिष्ट करने वाले के रूप में ही चित्रित किया है । कहीं उसके कार्यों की तुलना वासुकि से की गई है कहीं क्रूर राजा से । प्रस्तुत पक्तियो मे भी ऐसा ही वर्णन है ।

व्याख्या—काल का निर्दयी होकर भौंहों का टेढा करना तुम्हारे द्वारा मनुष्यो का उडाया गया मजाक है । जिस प्रकार कोई क्रूर व्यक्ति अशक्त व्यक्ति को अनेक प्रकार से कष्ट देकर उसकी स्थिति को देखकर हसा करता है उसी प्रकार काल के रूप मे प्राणियो के प्राण लेकर तुम अपना मनोरजन किया करते हो । तुम्हारा इतिहास और क्या है ? यही कि अनादिकाल से तुम प्राणियो को कष्ट दे देकर उन्हें रुलाते आ रहे हो । तुम्हारे ही कारण जीवो को कष्ट उठाने पडते हैं ।

तुम्हारे द्वारा एक बार भौहें टेढी करने पर ही ससार मे प्रलय का सा दृष्य उपस्थित हो जाता है । विश्व मे अविरल गति से होने वाला युद्ध छिड जाता है । गगन चुम्बी प्रासाद, पर्वतों की ऊ ची-ऊ ची चोटिया भूमि पर आ गिरती हैं । वडे वडे साम्राज्यो का ऐश्वर्य भी उसी प्रकार क्षणिक सिद्ध होता है जिस प्रकार आकाश छाये हुए मेघो का समूह । भाव यह है कि रगविरगे वादलो का समूह क्षणभर मे तितर वितर होकर लुप्त हो जाता है उसी प्रकार वडे-वडे साम्राज्यो का वैभव विलीन हो जाता है ।

तुम्हें एक वार रोमांच भी हो जाय तो समस्त पृथ्वी और आकाश भय से कापने लगते हैं और आकाश में चमकने वाले तारे पक्षियो के बच्चो के समान गिरने लगते हैं । समुद्र मे उथल पुथल मच जाती है जिससे सम्पूर्ण समुद्र झागो से भर जाता है जो ऐसा लगता है जिस प्रकार वीन की मधुर ध्वनि सुनकर मुग्ध हुआ झागो से युक्त सैकडों फनो को उठाकर सर्प नृत्य कर रहा हो । दिशाओ से घिरा हुआ आकाश झुककर तूफान की आवाज के रूप मे उसी प्रकार गर्जना करने लगता है जिस प्रकार पिंजडे में घिरा हुआ वलवान हाथी । अ कुश के प्रहार खाकर दर्द भरी चिंघाड लगाया करता है ।

विशेष—१ प्रकृति का परुष रूप दर्शनीय है ।

२. यहाँ दिशाएं, पिंजडा, आकाश उनके घेरे मे बद्ध शक्तिशाली हाथी और तूफान के थपेडे अंकुश का प्रहार है ।

३. परिवर्तन का निष्ठुर और विनाशकारी रूप उसी के अनुरूप सशक्त भाषा मे चित्रित किया गया है ।

जगत···· ···सुख शांति ।

शब्दार्थ—कातर=करुणापूर्ण, चित्कार=दुखभरी आवाज, क्रन्दन बधिर=बहिरे, स्रोत=झरना, चतुर्दिक=चारो दिशाओ मे । घहर-घहर= गरज गरजकर, आक्रान्ति=अशांति ।

व्याख्या—हे निष्ठुर परिवर्तन ! तुम्हारे द्वारा सताये अगणित प्राणियों की करुणा भरी चित्कारें सदा ही तुम्हारे कानो से टकराया करती हैं परन्तु क्या तुम उनको सुनकर कभी दयार्द होते हो ? नही । तुम तो दुःख से चिल्लाते प्राणियो की ओर ध्यान ही नही देते और बधिर व्यक्ति का सा अभिनय किया करते हो । कितने ही प्राणी दुखाधिक्य के कारण अपने अश्रुओ के झरनो से तुम्हारे पाषाण हृदय को सींचा करते हैं परन्तु अपनी निष्ठुरता के कारण तुम आसुओ से कभी विचलित नही होते ।

क्षण-क्षण पर उठने वाली दुखी मनुष्यो की सौ-सौ निश्वासें पृथ्वी के ऊपर आकाश बनाती रहती हैं अर्थात अपार दुख से व्यथित असख्य व्यक्ति गहरी सासें, आहें भरा करते है । चारो दिशाओ मे तुम्हारे द्वारा प्रेरित अशान्ति गरज-गरजकर सुख और शाति को मिटाती रहती है । अभिप्राय यह है कि परिवर्तन इतना क्रूर है कि उस पर किसी चीत्कार आदि का प्रभाव नही होता । वह अपने क्रूर कर्मो से कभी विरत नही होता ।

विशेष—१ परिवर्तन किसी की आर्त पुकार पर ध्यान नहीं देता इसलिए कवि ने उसके लिए 'बधिर' और 'पाषाण' सा हृदय शब्दो का प्रयोग किया है ।

हाय री ···· ···· ··जाल ।

शब्दार्थ—भ्रान्ति=भ्रम, विराम=विश्राम, हर्म्य=हरम, महल, उलूको=उल्लुओं, नश्वर=नाशवान, मन्त्रोच्चार=मन्त्रो की उच्चारण, मायाजाल=जादू, दिखावटी खेल ।

सन्दर्भ—परिवर्तन किसी की आर्त पुकार पर ध्यान नही देता । उसका हृदय पाषाण सा कठोर है । सर्वदा अशाति और दुख देना ही उसकी क्रीडा है । कवि बतला रहा है कि परिवर्तन के इस ध्वसकारी रूप को देखकर भी मानव ससार मे सुख पाने की कामना किया करता है, यही मानव की भ्राति है ।

व्याख्या—कवि कहता है कि मनुष्य की यह कितनी बडी भ्राति है कि यह देखकर भी कि नश्वर ससार मे सर्वत्र दुख का ही साम्राज्य है, वह शान्ति पाने के लिए कामना किया करता है । उसे इस नश्वर ससार मे शाति नही प्राप्त हो सकती । सृष्टि रचे जाने का अर्थ ही अशान्ति है अर्थात जब से

सृष्टि का अविर्भाव हुआ है तभी से इस ससार मे आने वाले दुख और अशान्ति का सामना करते चले आ रहे हैं। यह ससार निरतर चलते रहने वाले जीवन-सग्राम का ही दूसरा नाम है। इस ससार मे जीवन मे अनेक आपदाए आती रहती हैं। जीवन चलाने के लिए उनका सामना करना ही पडता है। ऐसे संघर्ष मे विश्राम करना, सुख की कामना करना व्यर्थ है सुख स्वप्न के समान है। इस ससार में सौ वर्ष तक सुन्दर सुन्दर नगर और उपवन शोभा पाते हैं परन्तु उसी स्थान पर सौ वर्ष तक सुनसान जगल खडे रहते हैं अर्थात कुछ समय तक रहने वाली सुख शाति का स्थान विनाश ग्रहण कर लेता है।

यहा पहले निर्माण होता है फिर निर्मित वस्तु की हर प्रकार से उन्नति और विकास होता रहता है अन्त में सब कुछ नष्ट हो जाता है। सृजन पोषण और विनाश यही विश्व का वास्तविक रूप है। कोई भी चीज जिसका अविर्भाव होता है विकास प्राप्त करती है और वही अन्त मे समाप्त भी अवश्य होती है। स्वय सृष्टि का भी यही क्रम है। आज जहा गर्व से सिर ऊचा कर के अगणित प्रासाद खडे हैं जिनमें रत्नों के दीपको से प्रकाश किया जाता है, मन्त्रों का नित्य प्रति उच्चारण होता है, वे प्रासाद कल भग्न हो जायेंगे। उनमे उल्लू बोला करेंगे, झिल्लियो की झनकार सुनाई देने लगेगी। यह विशाल विश्व जिसमें दिन-रात का चक्र चला करता है मेघ और पवन के खेल की तरह अस्थायी है, पवन के साथ-साथ कभी बादलो की पर्त की पर्त लग जाती हैं और कभी वे तितर-बितर हो जाते हैं। उसी प्रकार ससार में वस्तुओं का सृजन होता है और कुछ समय बाद वे नष्ट हो जाती हैं।

विशेष—१ प्रस्तुत कविता मे ससार की नश्वरता दिखाने के लिए कवि ने अनेक दृष्टान्त दिए है। कवि परिवर्तन से दुखी है। डा० नगेन्द्र ने इस कविता को अत्यन्त उच्चकोटि की कविता माना है। कला की दृष्टि मे यह वास्तव मे है भी ऐसी ही। शब्द चयन, भाषा, अलकार, छन्द सभी की दृष्टि से यह कविता अत्यन्त सुन्दर बन पडी है। पन्तजी की यही एक कविता है जिसमे प्रकृति के उग्र रूप के दर्शन उन्होंने कराये हैं।

२ सृजन, सिंचन और संहार—यही विश्व का रूप है। इन तीन क्रियाओ मे विश्व का सम्पूर्ण रूप समाविष्ट है। इन तीनो कार्यों के लिए हमारे यहा ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीन देवता माने गये हैं।

३. 'दुर्बल भ्रान्ति' मे विशेषण विपर्यय है। भ्रान्ति दुर्बल नही होती अपितु हृदय दुर्बल होता है।

नित्य जग

परिचयात्मक टिप्पणी—यह ससार उस शाश्वत पुरुष की क्षणिक क्रीडा है। वह नित्य रहने वाली अप्रत्यक्ष सत्ता ही स्वय को संसार के रूप मे व्यक्त किया करती है। यह ससार परिवर्तनशील है परन्तु इसी मे उस अविनाशी सत्ता की खोज करना ही सच्चा दर्शन है, उस असीम सत्ता के हृदय मे सृजन की एक उमग उठने पर सैकडो ससार बन-बन कर नष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार तीव्र वायु बालू के ढेर खडे कर दिया करती है और स्वय ही उन्हें गिरा देती है उसी प्रकार असीम सत्ता अनेक बार विश्व-रचना करती है और अनेक बार उसे विलीन कर देती है।

ससार की हर वस्तु मे एक विराट सत्ता का भान कवि को हो रहा है। वह एक ज्योति ही असख्य नक्षत्रो का प्रकाशित करती है। उनकी गतिविधि का नियन्ता एक विराट पुरुष है। सुख-दुख, दिन और रात एक चेतन शक्ति रूपी चचल लहर के दो छोरो के समान हैं। यह त्रिगुणात्म विश्व सुख-दुख और दिन-रात के युग्मो से ही पूर्णता प्राप्त करता है। यहा निर्माण और विनाश का सतत एक क्रम चलता रहता है। जिस प्रकार रात्री के आगमन पर ससार के प्राणी आखें बन्द किए हुए सोया करते है और प्रभात होते ही जाग उठते हैं उसी प्रकार मृत्यु जीवन को समाप्त कर देती है, जीव को विश्राम दिलाती है और जन्म देकर नया जीवन प्रदान करती है। शिशिर ऋतु की सभी कुछ नष्ट कर देने वाली हवा अप्रत्यक्ष रूप से किसी आगे आने वाली वस्तु के बीज बोया करती है अर्थात विनाश के बाद ही सृजन सभव है। जब फूल मुरझा जाते हैं तभी नवीन फल लगा करते हैं। ससार और क्या है ? यह केवल आदान प्रदान है। जब फूल अपनी मुस्कान का बलिदान कर देता है तभी तो नवीन फल का आगमन होता है। फल अपना बलिदान कर के बीज प्रदान कर नवीन फूल को जन्म देता है।

असीम आनन्दमय एक ही सत्ता ससार मे अनेक रूपो मे प्रतिभासित हुआ करती है। समुद्र के जल की हरीतिमा वही सत्ता ही है। आकाश मे व्यक्त नीलिमा भी वही है। ससार की हर वस्तु मे उसी की छटा विद्यमान है, विविध रूपों मे। मनुष्य की प्रज्ञा में, हृदय मे विद्यमान प्रेम मे, नेत्रो के अनुपम सौन्दर्य मे, लोक का कल्याण करने की भावना में वही एक सत्त्व तत्त्व विद्यमान रहता है, जिस प्रकार एक ही गुण से (धागा) कही राखी बनाई जाती है कही बेडी, उसी प्रकार अपने कर्मो के अनुसार एक ही गुण विभिन्न फल देता है।

मनुष्य के हृदय मे उठने वाली कामनायें ही उसे कर्मशील बनाती हैं जिस प्रकार वीणा के तारो पर आघात करने से झकार-उत्पन्न हुआ करती है उसी प्रकार कामनायें जाग्रत होने पर मनुष्य में कर्म करने की चेष्टा उत्पन्न

होती है। मनुष्य कर्म करके सुख-दुख का सामना करता हुआ ही ज्ञान प्राप्त कर पाता है। एक ही तत्त्व सुख मे हास और दुःख मे अश्रु बन जाता है। वेदना के द्वारा ही प्राण निष्कलुष और निर्मल हो जाते हैं। जिस वस्तु को प्राप्त करने के लिए जितना कष्ट सहन करना पड़ता है वह उतनी ही आकर्षक बन जाती है।

जीवन मे एकरसता कष्टप्रद बन जाती है। इसीलिए बिना दुःख के सुख का कोई महत्त्व नहीं है। यह ससार दैन्य और दुर्बलताओं से युक्त है इसीलिए इसमे क्षमा, दया और प्यार जैसे गुणो का इतना अधिक महत्व है। यह ससार स्वप्न के समान एक उलझी पहेली या समस्या है। इसे समझना कठिन है क्योकि जो वस्तु कभी सुख प्रदान करती थी वही दुखद बन जाती है और दुखद वस्तु कभी सुख प्रद हो जाती है। ससार मे जीवन का अर्थ विकास है। विकास का रुक जाता ही मृत्यु है।

हम जो कुछ कार्य करते हैं उनकी प्रेरणा देने वाली एक अज्ञात सत्ता होती है। हमारा प्रकट रूप हमारा वास्तविक रूप नहीं है। हमारा सासारिक रूप हमारे मूल रूप का आवरण मात्र है। अपने असली रूप को पहचान कर ही आत्मज्ञान प्राप्त होता है।

अपने चिंतन मनन के द्वारा कवि इस निष्कर्ष पर पहुचा है कि ससार की हर नश्वर वस्तु के अन्दर एक नित्य तत्त्व विद्यमान है। अज्ञात सत्ता ही जगत् की वस्तुओ का निर्माण करती है। स्वय ससार उसी का व्यक्त रूप है। यहां दु.ख का भी बडा महत्व है। दुःख के उपरान्त ही सुख अच्छा लगता है। अपने व्यक्त रूप के भीतर मनुष्य का वास्तविक रूप छिपा रहता है। उसे पहचानने पर ही आत्मज्ञान प्राप्त होता है। इस कविता मे कवि का दार्शनिक रूप उभर आया है। प्रस्तुत कविता को पढने से लगता है कि कवि की किसी अज्ञात शक्ति मे दृढ आस्था है।

नित्य ··· ····अज्ञात।

शब्दार्थ—नर्तन = नृत्य, खेल, विवर्तन = किसी वस्तु का अन्य आकार मे परिवर्तित हो जाना, व्यावर्तन = परिवर्तित वस्तु का पुन अपना मूल रूप धारण कर लेना, चिर = शाश्वत, नित्य, अन्वेषण = खोज, तत्वपूर्ण = तत्व से भरा हुआ, वास्तविक, अकूल = असीम, बूड = डूब, निस्सार = सारहीन, सैकत = रेत, बालू, अतिवात = तेज हवा।

सन्दर्भ—प्रस्तुत पक्तियों मे कवि ने अज्ञात शक्ति और ससार का सम्बन्ध स्थापित करके दिखलाया है।

व्याख्या—यह ससार नित्य रहने वाली वस्तु अर्थात् सत्ता का अनित्य नृत्य है। असीम सत्ता ससार के रूप में कुछ समय के लिए व्यक्त हुआ करती है। यह ससार परिवर्तित होकर अव्यक्त सत्ता मे लीन हो जाता है और फिर व्यक्त होकर अपना रूप ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार ससार का व्यक्त रूप अस्थायी है अचिर है। इसके अन्दर विद्यमान चिर सत्ता की खोज ही

वास्तविक खोज है। ससार का देखना तभी वास्तव मे देखना है जब। उसमे विद्यमान मूल शक्ति का दर्शन कर लिया जाय।

जिस प्रकार समुद्र के गर्भ मे एक असीम उमग उठ कर असख्य लहरो के रूप मे सागर मे छा जाती है और अनगिनत बुलबुले पैदा हो-होकर उसी मे लुप्त हो जाते है, उसी प्रकार उस अज्ञात सत्ता के हृदय मे सृजन की उमग उठने पर असख्य जगत् पैदा हो जाते हैं और बुलबुलो के समान नष्ट हो जाया करते हैं। तीव्र वायु धान्य के ऊचे ऊचे किनारों का सृजन कर स्वय ही गिरा देती हैं उसी प्रकार असीम सत्ता सैकड़ों जगतो का सृजन कर स्वय ही उन्हें नष्ट कर दिया करती हैं।

विशेष—१ उपनिषदो मे उल्लेख है कि जब विराट पुरुष एकाकीपन से व्याकुल हो उठा तो उसने सृष्टि की—'एकाकी न रमते, एकोऽहं बहु स्याम्।' स्वय ही उसने सृष्टि को नष्ट कर दिया। अनादि काल से सृष्टि और विनाश का यह क्रम चला आ रहा है।

२. दूसरे छन्द 'अतल''' निस्सार'–मे सांग रूपक है।

३. 'विकार' एव 'विवर्तन' दोनो अलग बात हैं। दूध का दही मे बदल जाना विकार है परन्तु जब रस्सी साप मे बदल जाती है तब यह परिवर्तन विवर्तन कहा जाता है। विवर्तन मे एक वस्तु दूसरा रूप ग्रहण नहीं करती उसके बदलने का भ्रम हो जाता है। रस्सी से साप का केवल भ्रम हो जाता है इसलिए रस्सी ही सर्प प्रतीत होने लगती है। ससार भी चिर का विवर्त है, ब्रह्म चिर है शाश्वत है, ससार मे उसी का अन्वेषण तत्वपूर्ण दर्शन है।

४ यहां वेदान्त और उपनिषदो का काफी प्रभाव है।

एक छवि ···· ·· आदान–प्रदान।

शब्दार्थ—उडगन=तारे, स्पदन=कपन, विभात=प्रभात, लोल=चचल, उभय=दोनो, त्रिगुण=तीन गुण–सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण, सर्व-प्रलयकर=सब कुछ नष्ट कर देने वाली, वात=समीर, म्लान=मुरझाये हुए, अम्लान=बिना मुरझाई, ताजा, आदान–प्रदान=लेन–देन।

सन्दर्भ—कवि को सृष्टि के कण–कण मे एक ही अज्ञान शक्ति का आभास होता है। वही उसे विविध रूपों मे दृष्टिगोचर होती है। सम्पूर्ण ससार को वही शक्ति उत्पन्न करती है।

व्याख्या—एक अज्ञात सत्ता की छवि सभी तारागणो मे दीप्त होती है। तारो में जो स्पन्दन जो गति है उसकी नियन्ता भी अज्ञात सत्ता है। सारे तारे एक ही प्रभात के प्रकाश में लीन हो जाते हैं। तारो की हरेक गतिविधि का नियन्त्रण एक सत्ता के द्वारा होता है।

सुख और दुःख, दिन और रात एक अज्ञान सत्ता रूपी चचल लहर के दो छोरो के समान हैं। एक सत्ता के द्वारा ही आपस मे आबद्ध हैं।

सत्, रज और तम् तीनों गुणों से युक्त संसार—सुख-दुख एवं दिन-रात के द्वारा पूर्णता प्राप्त करता है। यहां न तो केवल दुःख ही दुःख है और न केवल सुख। बिना एक के दूसरे का कोई महत्व नहीं है। संसार का सृजन होता है और फिर विनाश होता है।

जिस वस्तु का नाश होता है उसका किसी दूसरे रूप में व्यक्त होना अवश्यम्भावी है। मृत्यु की रात के उपरान्त जीवन का प्रभात अवश्य होता है। मृत्यु से जीवन का विकास रुक जाता है परन्तु जन्म के द्वारा मनुष्य नव-जीवन प्राप्त कर लेता है। रात्रि के अन्धकार के उपरान्त ही प्रभात काल का प्रकाश होता है। शिशिर ऋतु मे बहने वाली ठण्डी हवा पेड़-पौधो को हानि पहुंचाती है, छोटे पौधो को तो नष्ट भी कर देती है परंतु क्या स्थिति ऐसी ही रहती है ? शिशिर ऋतु हेमन्त मे फूटनेवाली कोंपलो का कारण है क्योंकि विनाश के उपरान्त ही सृजन होता है। शिशिर ऋतु मे जब पेडो के पत्ते तक मुरझा जाते हैं तभी बसत मे उन पर नई कोपलें निकलती हैं।

फूल कैसे मुस्कराते से प्रतीत होते हैं परन्तु कुछ समय उपरान्त वे भी कुम्हला जाते है। उनका सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। वास्तव मे फूलो का मुरझाना ही फलो के बनने का कारण है। फूलो के मुरझाने पर ही फल बनना आरभ होता है। इस प्रकार एक की मुस्कान समाप्त होते ही दूसरे की मुस्कान आरभ होती है। आत्म-बलिदान वस्तुत बहुत बडी वस्तु है। यह संसार आदान-प्रदान के अतिरिक्त और क्या है। पुराना जीवन छोड़ना नवीन को ग्रहण करना यही ससार के विकास का मूल है। एक ओर मृत्यु होती है दूसरी ओर जन्म। शिशर ऋतु वृक्षों से आदान करती है तो बसत उन्हें कुछ प्रदान कर देता है।

विशेष—१. ससार एक छवि से स्पन्दित है। उपनिषद और गीता मे भी यही बात कही गई है कि एक ही सत्ता संसार भर का सचालन करती है।

२. एक छवि ⋯ स्पन्दन—जैसी बात जायसी ने भी कही है—

जेहि दिन दसन जोति निरमई। बहुतें जोति जोति ओहि भई।
रवि सीस नखत दिपहिं ओोहि जोति। रतन पदारथ मानिक मोती॥

३ 'उभय ⋯ ससार' कह कर पत जी ने ससार की पूर्णता सुख-दुख और दिन-रात के द्वारा ही बताई है। प्रसाद जी ने भी निम्नलिखित पंक्तियों मे ऐसा ही भाव व्यक्त किया है—

विषमता की पीडा मे व्यस्त,
हो रहा स्पदित विश्व महान।
यही दुःख, सुख-विकास का सत्य,
यही भूमा का मधुमय दान॥

४ सांख्य शास्त्र में सत्, रज एवं तम—इन तीनों गुणो के योग से संसार की उत्पत्ति बताई गई है। इसीलिए यह संसार त्रिगुणात्मक कहलाता है।

५, 'मूंदती ...... प्रात'—कह कर कवि ने बताया है कि मृत्यु के उपरान्त जन्म अवश्य होता है। संहार के बाद सृजन अवश्य होता है। गीता में यही भाव भगवान कृष्ण के मुखारविन्द से अर्जुन के प्रति व्यक्त हुआ है।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥

नैयायिकों ने भी कहा है—यद् यद् जन्य तद् तद् अनित्यं।

६ निशि दुःख का प्रतीक है और भोर सुख का। 'सुख-दुःख' के अनुसार 'भोर-निशि' का क्रम होना चाहिए था परन्तु तुक के आग्रह से कवि ने हेर फेर कर दी है। इसलिए यहां क्रम भंग दोष आ गया है।

७ 'मृत्यु' 'रात' एवं 'कुसुम' का मानवीकरण है। इसके अतिरिक्त अनुप्रास अलंकार भी है।

एक ही.. भार।

शब्दार्थ—उल्लास = आनन्द, विविधाभास = अनेक प्रकार की द्युति, प्रतीति, हरित विलास = हरे रंग की शोभा, अम्बर = आकाश, लास = कोमल नृत्य।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

व्याख्या—मूल आनन्दमय तत्त्व एक ब्रह्म ही है। यह आनन्द स्वरूप ब्रह्म ही विभिन्न वस्तुओं में विभिन्न प्रकार से प्रतिभासित होता है। समुद्र की चंचल चंचल लहरों का हरी आभा वही है। वही शान्त आकाश में नीलिमा के रूप में उद्भासित हो उठता है। प्राणियों के हृदय में वही चिरंतन उल्लास प्रेम का उच्छ्वास बन जाता है। काव्य में रस वही है, फूलों में सुगन्धि, नक्षत्रों में प्रकाश रूप में व्यक्त हास और चंचल लहरों का कोमल नृत्य उसी के विभिन्न रूप है। विश्व की विविध प्रकार की वस्तुओं में विविध प्रकार से एक ही रहस्यमय अज्ञात सत्ता प्रकट हुआ करती है।

विशेष—(१) विश्व की सृष्टि कवि ने यहां 'उल्लास' से मानी है। यहां 'निष्ठुर परिवर्तन' और 'अनित्य जग' के समान कवि निराश नहीं है। उसे तो एक अज्ञात सत्ता का ही मधुर संगीत सर्वत्र सुनाई पड़ता है और मृत्यु अथवा विनाश ही आगे के विकास के बीज बोती जान पड़ती है।

(२) इसमें वेदान्त के 'प्रतिबिम्बवाद' का प्रभाव स्पष्ट प्रलक्षित है।

वही प्रज्ञा.. भार।

शब्दार्थ—प्रज्ञा = ज्ञान, शुद्ध बुद्धि, प्रणय = प्रेम, लावण्य = सौन्दर्य, शिव = कल्याण, भलाई, स्वीय = अपने, स्वयं के, गुण = विशेषता एवं रस्सी, धागा।

व्याख्या—वही आनन्दमय तत्त्व सब में विद्यमान है। वह एक ही अनेक प्रकार से व्यक्त होता है। शुद्ध-बुद्धि में शुद्ध ज्ञान के रूप में प्रकाशित

होने वाला वही हृदय मे अपार प्रेम के रूप मे वदल जाता है। नेत्रो मे अनुपम सौन्दर्य और लोक की सेवा मे स्वच्छ कल्याण की भावना वही कहा जाने लगता है। सगीत के स्वरो मे गूजने वाले प्रेम के उद्गार उसी सत्य स्वरूप असीम उल्लास की मधुर अभिव्यक्ति हैं। शुद्ध बुद्धि का सत्य स्वरूप ही अलौकिक सौन्दर्य, स्नेह की साकार मूर्ति और भावनाओ से युक्त ससार है; अर्थात किसी वस्तु का दिव्य सौन्दर्य, स्नेह और भावनामय जगत सभी उसी सत्य स्वरूप की अभिव्यक्ति हैं।

जगत् की प्रत्येक वस्तु यदि उसी एक सत्ता की अभिव्यक्ति है तो ससार की हरेक वस्तु समान क्यो नही हैं? इसका कारण कवि के अनुसार यह है कि एक ही गुण मनुष्य के अपने कर्मों के अनुसार विभिन्न रूपों मे परिणत होता है। एक धागे से कहीं राखी बनाई जाती है कहीं पैर की वेडी। राखी प्रसन्नता आदि का सूचक हैं और वेडी अपराधी के दुष्कृत्य का।

विशेष—(१) प्रथम छन्द साहित्य में बहुत उद्धरित होता है।

(२) 'भावनामय' ससार से तात्पर्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति का दृष्टिकोण अपनी भावना के अनुरूप होता है। वैसे ही उसके कर्म के और कर्म अनुसार ही उसको फल मिलता है। इसलिए भावना सबमे महत्वपूर्ण है, इसीलिए यह कहा गया है कि 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी'।

गीता मे भी कहा गया है—

सदृश चेष्टते स्वस्याः प्रकृते ज्ञानिवानपि।
प्रकृति यान्ति भूतानि निग्रह किं करिष्यति॥

(३) अपने कर्मों के अनुसार मनुष्य को फल भोगना पडता है ऐसा भारतीय विश्वास है—

'अवश्यमेव भोक्तव्य कृत कर्म शुभा शुभम्।

कामनाओं ... मोल।

शब्दार्थ—जगती = ससार, स्फूर्ति = चेतना, पुलिन = तट, किनारा, स्वर्णहुलास = स्वर्ण की काति, सुनहलापन, याम = प्रहर, प्रकाम = जिसकी अभिलाषा की जाय, अभिराम = सुन्दर, अलभ = अप्राप्य, इष्ट = इच्छित वस्तु, जीवन का मोल = जीवन की सार्थकता।

सन्दर्भ—प्रस्तुत पक्तियो में बताया गया है कि ससार में कष्ट और आपदाओ का भी महत्व है। दुखो का सामना करके ही मनुष्य को ज्ञान की उपलब्धि होती है।

व्याख्या—मनुष्य के हृदय मे अनेक कामनाएँ जाग्रत होती रहती हैं। उन्ही से मनुष्य जीवन के विकास मे अग्रसर होता है। शान्त रखी हुई वीणा पर जब उँगलियों का आघात होता है तभी उससे मधुर ध्वनि निस्सरित होती है। उसी प्रकार भावनाएँ ही मनुष्य को निष्क्रियता से दूर रखकर उसे कर्मशील बना देती हैं। कर्म करने से मनुष्य को सुख-दुख दोनों का

अनुभव प्राप्त होता है। उनमे समान रहकर प्रयत्नशील रहकर ही व्यक्ति ज्ञान प्राप्त करता है। सुख और दुख जीवन-नदी के दो किनारे हैं जिनके बीच मे ज्ञान रूपी अमृत की धारा प्रवाहित होती रहती है। भाव यह है कि जो व्यक्ति दुखों से घवड़ाकर कर्म पथ मे विरत हो जाते हैं अथवा जो सुख मे सब कुछ भूलकर कर्मशील नही रहते उन्हें ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती।

सुख के समय होठो पर हंसी छा जाती है परन्तु दुःख के समय आंखो मे अश्रु ढुलकने लगते हैं। हास्य ही मानो नेत्रो के जीवन (पानी) का दान देता है। सुख और दुख अथवा हास और अश्रुओ मे कोई अन्तर नहीं है क्योंकि सुख के समय आनन्द में फूल उठने वाला व्यक्ति थोड़े दुख को देखकर ही आसु वहाने लगता है। वाछनीय यह है कि मनुष्य सुख दुख दोनो मे सतुलित रहे। वेदना की अग्नि मे तप कर ही हमारे प्राण स्वर्ण की सी कान्ति धारण करते हैं अर्थात वेदना के द्वारा मनुष्य की आत्मा निर्मल उसी प्रकार हो जाती है जिस प्रकार अग्नि मे पिघल कर स्वर्ण कुन्दन बन जाता है। इस प्रकार वेदना अथवा दुखों से भी मनुष्य को लाभ होता है। जिस प्रकार वेदना मे कष्ट की अनुभूति होती है और आत्मा परिष्कृत हो जाती है उसी प्रकार सुख प्राप्त करने से पूर्व हम जो पहले तरसने का कष्ट सहते हैं तभी हमे सुख अधिक सरस और रमणीय लगता है। विजय पाने के लिए लालायित रहने के कारण हम संग्राम के कष्ट सहते हैं इसलिए विजय हमारे लिए इतनी आकर्षक और सुन्दर लगती है, यदि विजय हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहने से ही मिल जाती तो उसे कोई न पूछता। जिस वस्तु की हमे जितनी अधिक चाहना होती है, जितनी अधिक कठिनाई से उसकी प्राप्ति होती है वह उतनी ही मूल्यवान और महत्त्वपूर्ण हो जाती है। जिसने जीवन मे जितनी साधना की है उसका जीवन उतना ही मूल्यवान है। जीवन की सार्थकता साधना में है।

विशेष—१. यहाँ कवि दुःख-सुख दोनो का सापेक्षिक महत्व बतला रहा है।

२ जिस प्रकार खराव और अच्छे स्वर्ण की जांच करने के लिए उसे अग्नि मे तपाया जाता है उसी प्रकार मनुष्य की जाच भी आपत्तियो के द्वारा होती है। जो व्यक्ति आपत्तियो से घवरा कर निराश होकर नही बैठा रहता उसी का जीवन विकासशील है।

विना दुख ··· ··· प्यार।

शब्दार्थ—निस्सार = सारहीन, व्यर्थ।

सन्दर्भ—कवि पिछली कविताओं मे परिवर्तन को क्रूर और न जाने क्या क्या कह चुका है परन्तु अव दु ख का भी उसके लिए महत्त्व ही नही है अपितु दु ख को वह अनिवार्य बता रहा है।

व्याख्या—सुख में वास्तविक आनन्द तभी मिलता है जब दुःख का अनुभव हो चुका हो। दु ख के विना सारा सुख निस्सार है, व्यर्थ है। यदि जीवन मे दु ख न होता अश्रु न वहाने पडते तो जीवन भार वन जाता है।

जीवन की एकरसता मे आनन्द नही है । जीवन की सार्थकता सुख-दुख, हास और अश्रुओ के सयोग मे है । दया, क्षमा और प्यार का महत्त्व इसलिए है कि ससार मे दीनता और दुर्बलता विरोधी तत्त्वो की विद्यमानता है यदि कोई भी व्यक्ति दीन, दुर्बल न हो तो दया, क्षमा जैसे गुणो की आवश्यकता ही न पडे और न इनका कोई महत्त्व हो ।

विशेष—यह भी एक परिवर्तन है कि जो कवि पत परिवर्तन जनित दुःख को कोसते थे वे ही दु.ख को जीवन के लिये अनिवार्य मान रहे हैं । 'गुञ्जन' में कवि ने कहा है—

'सुख दु ख के मधुर मिलने से ।
यह जीवन हो परिपूरण ।'

आज का दु ख **ह्रास ।**

शब्दार्थ—आह्लाद = प्रसन्नता, विषाद = दु ख, स्वप्न-गूढ = स्वप्न की भांति समझ में न आने वाला, रहस्यपूर्ण, ह्रास = अवनति ।

सन्दर्भ—प्रस्तुत पक्तियो मे कवि ने जीवन और मृत्यु का अर्थ बताया है एव सुख दुःख को परिवर्तनशील बताया है ।

व्याख्या—आज का दु:ख कल सुख मे बदल जाता है इसी प्रकार अतीत का सुख आज विषाद मे परिवर्तित हो जाता है । यह ससार स्वप्न के समान न समझ में आने वाली समस्या है जिसकी पूर्ति जिसका समाधान इस पार अर्थात् इसी जगत् में नहीं हो सकती । स्वप्न मे कभी कभी बडी रहस्यमय समस्याए आ जाती हैं जिनको सुलझाया नहीं जा सकता । इसी प्रकार यह जानना भी एक समस्या के समान है कि किस प्रकार कल का सुख आज विषाद बन जाता है और दु ख-सुख मे कैसे बदल जाता है । इसीलिए यह ससार स्वप्न-सी गूढ एक समस्या है । इसका ज्ञान तभी सभव है जब मनुष्य सासारिकता से निर्लिप्त हो गया हो । ससार में जीवन का अर्थ है विकास करना । विकास का रुकना ही मृत्यु है ।

हमारे काम स्वरूप ।

शब्दार्थ—उपनाम = दूसरा नाम, अपरूप = कुरूप, भद्दा, अपूर्व रूप, स्वीय = अपना ।

सन्दर्भ—कवि बतला रहा है कि जिन कार्यों को हम अपने द्वारा किए हुए मानते हैं वे वास्तव में हमारे द्वारा किये हुए नही होते । हमारा प्रकट रूप भी हमारा वास्तविक रूप नही है ।

व्याख्या—जिन कर्मो को हम अपने बतलाते हैं वे हमारे नहीं होते । उन कर्मों को करने वाला कोई और होता है । हम तो केवल निमित्त बनते हैं । जिस रूप में हम अपने आपको हम कहते है वह रूप हमारा वास्तविक रूप नहीं है । हमारा शाश्वत रूप तो अव्यक्त रहता है । हमारा व्यक्त रूप तभी

की छाया है। जिस प्रकार अग्नि [illegible] के [illegible] लिया जाता है उसी प्रकार [illegible] हमारे [illegible] जिससे वास्तविक रूप का ज्ञान नहीं होता। हम इस संसार में [illegible] रूप से अनभिज्ञ रहने के कारण [illegible] है। [illegible] अपने सांसारिक रूप को, प्रगट रूप को, [illegible] हो जाते हैं, [illegible] से निर्लिप्त रहते हैं तभी वास्तविक रूप को प्राप्त करते हैं। हमारे वास्तविक स्वरूप का परिचय ही आत्म ज्ञान है।

विशेष—१. प्रस्तुत पंक्तियों में उपनिषद् का प्रभाव स्पष्ट है।

२. 'हमारे काम न अपने काम'—ऐसा ही भाव श्रीमद्भगवद्गीता में निम्न पंक्तियों में व्यक्त हुआ है। श्री कृष्ण भगवान् ने अर्जुन को बताया कि सभी कार्य प्रकृति के गुणों द्वारा किये हुए हैं परन्तु अहंकार [illegible] व्यक्ति अपने आपको कर्त्ता मान लेता है—

प्रकृते क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥

३. 'परिवर्तन' रचना भाव और शैली प्रत्येक दृष्टि से पंतजी की [illegible] में श्रेष्ठ गिनी जाती है। कविवर निराला ने कहा था—"यह [illegible] भी बड़े कवि की कविता से निस्संकोच मैत्री कर सकता है।"

प्रार्थना

प्रस्तुत कविता मे बादल के रूपक द्वारा ईश्वर की स्तुति की गई है।

जग के ·· सुख यौवन।

शब्दार्थ—उर्वर = उपजाऊ, ज्योतिर्मय = तेजोमय, मगलमय, अव्यय = कभी न घटने वाला, सदा एक सा रहने वाला, प्रणय = प्रेम, स्मित = मुसकान।

सन्दर्भ—कवि बादलो के रूप मे कवि से प्रार्थना करता हुआ कहता है कि—

व्याख्या—हे चिर अविनश्वर ! हे चिर नवीन ! तुम ससार के उपजाऊ आँगन मे कल्याणकारी जल का रूप धारण करके बरसो। तुम तो अव्यय हो, तुम्हारा कोष अक्षय है इसलिए छोटे-छोटे तिनको एव वृक्षो पर जल की वर्षा करो। फूलो मे तुम मधु बन कर बरसो, हृदय मे अमग प्रेम का रूप धारण कर लो, होठो पर मुस्कान, पलकों मे सुख के स्वप्न, हृदय मे सुख और अगो मे यौवन बनकर बरसो।

विशेष—१ कवि ईश्वर से बादलो के रूपक द्वारा प्रार्थना कर रहा है कि हे ईश्वर तुम्हारा भण्डार अक्षय है इसलिए तुम पृथ्वी को सुख वैभव से समृद्ध कर दो। पृथ्वी पर सर्वत्र फूल फूला करें, व्यक्तियो के हृदय मे परस्पर प्रेम बढ़े, प्रसन्नता के कारण होठो पर मुस्कान झलका करे, दुख के बारे मे किसी को सोचना भी न पडे, सभी के शरीर युवको के शरीर जैसे शक्तिशाली रहे।

२ निष्ठुर परिवर्तन कविता मे कवि ससार मे सर्वत्र दुख ही दुख देखता है। यहा वह पृथ्वी को सब प्रकार से सुख-वैभव से समृद्ध बनाने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता है।

३ 'स्मति ·· यौवन' इन पक्तियो मे क्रमालकार, लघु-लघु मे वीप्सा एव 'तृणतरु' 'स्मित स्वप्न' में अनुप्रास अलकार है।

छू छू··· सावन।

शब्दार्थ—मृन्मरण=मिट्टी रूपी मृत्यु, सुखमा=सौन्दर्य, सस्रृति=सृष्टि, सावन=सावन की भाति उपयोगी।

व्याख्या—कवि बादल के रूप मे ईश्वर की प्रार्थना करता हुआ कहता है कि हे भगवान ! तुम निर्जीव मिट्टी के समान पड़े हुए बीज रूपी रजकणो

को अपनी कृपा रूपी वर्षा के जल से सींच कर उन्हे घास आदि के तिनको और वृक्षो के रूप मे नया जीवन दे दो। अर्थात तुम ऐसी कृपा कर दो कि क्षुद्र जीव भी गौरवान्वित हो जाए। हे भगवान्! तुम मिट्टी सी मृत्यु को समाप्त कर दो। मिट्टी की निष्प्राणता मिटाकर उसमें चेतना भर दो। हे ससार के जीवन के धन! अर्थात् संसार को जीवन देने वाले भगवान! तुम सुख और सौन्दर्य बनकर विश्व मे प्रत्येक दिशा मे और प्रत्येक क्षण बरसो। जिस प्रकार श्रावण का महीना ससार मे वर्षा कर सर्वत्र नव-जीवन का सचार कर देता है उसी प्रकार तुम भी ससार के लिए सावन बनकर जीवन की वर्षा करो। तात्पर्य यह है कि तुम छोटे-छोटे जीवो को भी महत्व प्रदान कर दो। संसार को सुख एव सौन्दर्य से उसी प्रकार मडित कर दो जिस प्रकार श्रावण महीना वर्षा कर के ससार मे नव जीवन ला देता है और उसे सुख सुषमा से पूर्ण कर देता है।

विशेष—१ सम्पूर्ण गीत के दो अर्थ निकलते हैं, एक अर्थ मेघ के पक्ष मे लगता है और दूसरा ईश्वर के।

२. सावन के महीने मे वर्षा के कारण पृथ्वी में छिपे हुए बीज अंकुरित हो उठते हैं। सर्वत्र हरियाली छा जाती है, कवि ईश्वर से प्रार्थना करता है कि तुम भी सावन के महीने की भाति ससार को हरा-भरा बना दो।

३. वीप्सा, रूपक, अनुप्रास एव श्लेष अलंकार हैं।

एक तारा

कथ्य—सन्ध्या के समय सर्वत्र नीरवता छाई हुई है। जिस प्रकार वीणा के तारों के गतिहीन हो जाने पर उनसे कोई ध्वनि नही निकलती उसी प्रकार वन के वृक्षो से कोई आवाज भी नही हो रही है। पक्षियो ने चहचहाना बन्द कर दिया है, पशु चरागाहो से लौट आये हैं। मार्ग की धूल शान्त है क्योकि सध्या के अन्धकार मे उन पर कोई नही चल रहा है। मार्ग मटमैले टेढे सर्प के समान दिखते हैं। शात वातावरण मे झींगरों की झनकार ही सुनाई पडती है जो ऐसी प्रतीत होती है जैसे शाति के प्रतीक ब्रह्म के पूर्णतया शान्त हृदय मे सृष्टि रचने की इच्छा उत्पन्न होकर उसे विकल बना रही हो।

सध्या की सुनहरी आभा समाप्त होने पर विश्व की सभी वस्तुओ मे कोई अन्तर नहीं रह गया। गगा के निर्मल जल में पडते हुए सान्ध्यकालीन लाल सूर्य का प्रतिबिम्ब लाल कमल सा लग रहा था परन्तु अब वह अदृश्य हो चुका है इसलिए ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो वह लाल कमल बन्द हो गया हो। सन्ध्या के समय डूबते हुए लाल सूर्य की किरणें पडने से गंगा की लहरो पर लालिमा छा रही थी परन्तु सूर्यास्त होने पर वह लालिमा नीलिमा में बदल गई। डूबते सूर्य की लाल किरणें जो वृक्षों की चोटियो पर पड रही थी वे अदृश्य हो गई।

सध्या के ऐसे समय मे कवि को एक स्वच्छ और लगातार प्रकाश विकीर्ण करता हुआ नक्षत्र दिखाई दे रहा है जो ऐसा प्रतीत होता है मानो स्वय विवेक के प्रकाश का स्वरूप धारण कर लिया हो। वह स्वर्ण के दीपक के समान चमक रहा है। वह तारा आकाश मे ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो चादी जैसी सफेद सीप अपने अन्दर स्थित मोती की आभा से प्रकाशित हो रही हो। कभी वह तारा कवि को आत्मज्ञान की खोज मे लीन योगी सा दीख पडता है। कवि तारे से पूछता है कि क्या तुम्हारे मन मे भी कोई प्रबल इच्छा है जो उत्पन्न होकर तुम्हें विकल बना रही है। कवि आगे कहता है कि 'एकाकी जीवन बडा कष्टप्रद होता है। कहीं तुम्हारे मन मे कोई प्रबल आकाक्षा तो नहीं उत्पन्न हो रही। तारा चिरकाल से आकाश में स्थित है और प्रकाशित होता रहता है। वह योगी के समान सासारिक बन्धनो से मुक्त रहता है। आकाश मे छिटके तारे कुन्द-कलियो के समान प्रतीत होते हैं। असख्य जगमगाते तारों के बीच शुक्र तारा आत्म-स्वरूप ब्रह्म के समान लगता है। जिस प्रकार एकाकी ब्रह्म इस सृष्टि का सृजन करता है उसी प्रकार शुक्र तारे ने मानो असख्य तारों रूपी सृष्टि का सृजन करके अपने एकाकीपन की व्यथा को दूर कर लिया है।

प्रस्तुत कविता में कवि ने तारे को आधार बना कर बडी ही सघन कल्पना से दार्शनिक चिन्तन को वाणी दी है।

नीरव संध्या · · · · · · आर–पार।

शब्दार्थ—प्रशान्त=शान्त, आनत=झुके हुए, खग–कूजन=पक्षियो की चिल्लाहट, गोपथ=पशुओ के आवागमन का मार्ग, धुसर=मटमैला, जिह्म=कुटिल, टेढा।

सन्दर्भ—कवि सुमित्रानन्दन पत इन पक्तियो मे सध्याकालीन वातावरण का चित्रण कर रहे है। वे कह रहे हैं कि सान्घ्य वेला मे चतुर्दिक शान्ति और उदासी छाई हुई है।

व्याख्या—कवि कहता है कि सध्या हो गई है। सम्पूर्ण गाव शाति मे डूबा हुआ है। कही कोई शोर नही है। वृक्षो के अधर पत्तो के रूप मे नीचे झुक गये हैं। उनसे जो आवाज निकलती थी वह अब नही निकल रही है। ऐसा प्रतीत होना है जैसे वीणा के स्वर वीणा के तारो मे विलीन हो गये हैं। पक्षियो का कलरव शात हो गया है। पशुओ का जिस मार्ग पर इधर से उधर आवागमन होता था अब वह आवागमन शून्य हो गया है। अन्धकार छा जाने से मार्ग धुधला हो गया है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे कोई टेढा–मेढा सर्प थक कर लेटा हुआ हो। सर्वत्र शाति छाई हुई है। यदि कही कोई शब्द सुनाई पडता है वह झीगुर का ही है। साध्यकालीन वातावरण की गम्भीरता जिस स्थिति में है वह बहुत ही भली प्रतीत होती है। झीगुर का स्वर ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि कोई तेज बाण आर–पार वेध रहा हो। सर्वत्र छाई हुई शाति का उदार हृदय जब कभी भी किसी ध्वनि से फट जाता था तो उस समय की स्थिति का वर्णन शब्दो से परे हैं।

विशेष—वर्णन पद्धति की मधुरता ने पत के इस वर्णन को जो मधुरता प्रदान की है वह 'पत्रो के आवत अधरो पर सो गया निखिल वन का मर्मर' जैसी पक्तियो मे आकर सिमट गई है। आवाज के पत्तो मे सो जाने वाली कल्पना बडी मधुर है।

महा प्रशान्ति का मानवीकरण किया गया है। इसमे उपमा अलकारो का प्रयोग कई प्रकार से हुआ है। इसकी सबसे बडी विशेषता है उपमानों की नवलता।

अब हुआ · · · · · · श्यामल।

शब्दार्थ—साध्य=सध्या का, स्वर्णाभि=सुनहरी आभा, लीन=समाप्त, छिपना, लुप्त होना, चल=चचल, रक्तोत्पल=लाल रग का कमल, सन्ध्या का सूर्य, अरुणाई=लालिमा, प्रखर-शिशिर=कडी सर्दी, स्वर्ण-विहग=सुनहला पक्षी, शाम के समय का लाल सूर्य, सुभग=सुन्दर, गुहा-नीड=गुफा रूपी घोसला, मग=रास्ता, श्यामल=हलका काला।

सन्दर्भ—सन्ध्या के समय सर्वत्र शाति के वातावरण का वर्णन इन पक्तियो मे किया गया है। सन्ध्या की स्वर्णिम आभा के लीन होते ही वृक्षो के शिखरो पर पडने पर प्रकाश भी समाप्त हो जाता है। किसी वस्तु मे वर्ण-भेद नही रह जाता।

व्याख्या—अब सन्ध्या के समय की सुनहरी आभा समाप्त हो गई है। अन्धकार का प्रसार होने लगा ससार की सारी वस्तुयें अस्पष्ट दीख पडने से ऐसी प्रतीत होने लगी हैं जैसे उन सभी का कोई रग ही नहीं है। सब पर अन्धकार का रग चढ गया है। सन्ध्या के समय अस्त होते हुए लाल रग के सूर्य का प्रतिविम्ब जब गगा के निर्मल चंचल जल मे पड रहा था तो अपनी निकलती किरणो के कारण वह लाल पखुड़ियों वाला लाल कमल सा लगता था परन्तु अब वही प्रतिविम्ब ऐसा लगता है मानो लाल कमल ने अपनी पखुडियो को समेट लिया है। भाव वह है कि कमल जब प्रस्फुटित रहता है तो उसकी पखुड़िया फैली रहती हैं परन्तु सूर्यास्त के बाद कमल बन्द हो जाता है। सूर्यास्त के समय लाल सूर्य का प्रतिविम्ब अपनी निकलती किरणों के कारण गगा के निर्मल चचल जल में फैली हुई पखुडियों से युक्त लाल कमल सा लगता था। परन्तु अन्धकार छा जाने पर वह पखुडिया बन्द किए हुए कमल सा प्रतीत हो रहा है। सूर्य की लाल किरणे नीली हो चली हैं इसलिए वे लालकिरणें जो लहरो पर सुनहरी रेखाओं सी सुन्दर प्रतीत होती थी, अब नीली प्रतीत होती हैं। लाल से नीली होती हुई किरणों की जल पर पडी परछाई ऐसी प्रतीत होती है मानो किसी तरुणी के रक्ताभ अधर शिशिर ऋतु के शीत के बाहुल्य से नीले पड गये हैं। अस्त होते हुए सूर्य की लाल किरणें वृक्षों के शिखरो पर पड कर अब वे लुप्त हो गई हैं इसलिए कवि कल्पना करता है कि तरु शिखरो पर से अपने सुन्दर पख खोल कर कोई सुनहरा पक्षी उड गया है परन्तु यह नहीं ज्ञात कि वह उड कर किस गुफा रूपी घोंसले मे किस मार्ग से चला गया है। अब समस्त जगल में नया नीला और कोमल हल्का काला अधकार फैल गया है। लगता है वह अपने सचालन मे मीठे-मीठे स्वप्नो को भर कर लाया है।

विशेष—१. सन्ध्या के समय जब सूर्य नीचे चलता जाता है तब उसकी लाल किरणें वृक्षो और पर्वतो के शिखरो पर ही पडती है। कवि ने उत्प्रेक्षा की है कि लाल किरणें तरु-शिखरो पर ऐसी लगती हैं जैसे कोई सुनहला पक्षी बैठा हो। जैसे ही अधकार छाने लगा और लालिमा लुप्त हुई तो मानो वह पक्षी अपने सुन्दर पख खोल कर किसी पर्वत की गुफा रूपी घोसले मे चला गया।

२ गगा के ····· 'मृदु दल'—मे प्रस्तुत सूर्य एव अप्रस्तुत कमल का सुन्दर समन्वय हुआ है।

३ प्रकृति का अत्यन्त सुन्दर ढग से चित्रण किया गया है।

४. अलकारो मे उपमा, रूपक, वीप्सा एव अनुप्रास हैं।

५ कवि पन्त शब्दों के पारखी हैं। समान अर्थ देने वाले शब्दों मे सूक्ष्मतम भेद पन्त जी के अतिरिक्त बहुत कम व्यक्ति कर पाते हैं। 'श्याम' शब्द में 'श्यामल' की अपेक्षा कठोरता है श्यामल शब्द 'ल' के कारण बड़ा कोमल और रेशमी मार्दव से युक्त बन गया है।

पश्चिम-नभ · ··· · · निर्धन ।

शब्दार्थ—अमन्द = ज्योतित, प्रकाशमान, जिसका प्रकाश निरन्तर प्रखर रहे, अकलुष = पवित्र, अनिद्य = पावन, वन्दना के योग्य, मूर्तिमान = साकार, ज्योतित = प्रकाश युक्त, विवेक = ज्ञान, टेक = लगन, तीव्र इच्छा, मुक्तालोकित = मोती की काति से आलोकित, रजत-सीप = चादी की सीप, अपनापन = आत्मज्ञान, प्रदीप = दीपक ।

सन्दर्भ—सध्या हो चुकी है । सूर्य की लालिमा अब अस्त हो गई है, हल्का अन्धकार सर्वत्र व्याप्त है । पश्चिम की ओर निरन्तर तीव्र प्रकाश विकीर्ण करने वाला एक निर्मल तारा दिखाई दे रहा है । यहा उसी तारे का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

व्याख्या—मैं पश्चिम की ओर आकाश मे स्वच्छ, निरन्तर प्रकाशमान एक नक्षत्र देख रहा हू । वह कालुष्य रहित और वन्दनीय है, वह ऐसा लगता है मानो ज्ञान ही शरीर धारण करके विराजमान हो और जिसके हृदय मे कोई अमर साधना का दृढ सकल्प विद्यमान हो । कवि की जिज्ञासा है कि वह किस स्वर्णिम आकाक्षा का दीपक लिए हुए और किस आराधना मे लीन है ? अर्थात् वह ऐसा लग रहा है जैसे कोई भक्त अपने आराध्य देव के पास स्वर्ण-निर्मित दीपक जलाकर आराधना कर रहा हो । उस तारे की कान्ति ऐसी है जैसे चादी सी शुभ्र सीप भीतर रखे हुए मोती की आभा से प्रकाशित हो रही हो । वह विना पलक मारे स्थिर नेत्रो से किसका चिन्तन कर रहा है ? क्या अपलक नेत्रो का चिन्तन ही उसकी आत्मा की अक्षय निधि है ? कहीं ऐसा तो नही है कि वह निर्निमेष नेत्रो से आत्मज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा हो । किन्तु आत्मज्ञान प्राप्त करना बडा कठिन है, बडा दुर्लभ है । आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए साधना करने वाले को यदि आत्मज्ञान प्राप्त न हो तो वह बडा निराश होता है । उसे समस्त भरा-पूरा विश्व निर्जन लगने लगता है । आत्मज्ञान प्राप्ति की इच्छा के निष्फल हो जाने पर साधक निर्धन के समान अकिंचन और असहाय बन जाता है ।

विशेष—(१) प्रथम दो छन्दो मे कवि ने पृष्ठभूमि के रूप में सन्ध्या का वर्णन किया है । यहां तारे का साधना मे लीन साधक के रूप मे वर्णन किया है ।

(२) कवि तारे को निश्चल और निरन्तर प्रकाशमान देखकर कल्पना करता है मानो तारा ज्ञान की साक्षात् प्रतिमा हो और निश्चल होकर सिद्धि का दृढ सकल्प करके आत्मज्ञान पाने का प्रयत्न कर रहा हो ।

(३) उत्प्रेक्षा और उपमा अलकार हैं ।

आकांक्षा का·· ··· · रे न पार ।

शब्दार्थ—आकाक्षा = तीव्र अभिलाषा, उच्छ्वसित = तीव्र, ऊपर उठता हुआ, उद्वेलित = कम्पायमान, क्षुब्ध, अहरह = प्रत्येक दिन, सदा, हहर = हहराती हुई, शोर मचाकर, अविरत = विरामहीन, लगातार, निरन्तर

अबाध=बेरोक टोक, उडगण=तारागण, दुस्तर=न पार होने वाला, निसग=एकाकी, मूक-भार=वह भार या दुःख जो बिना किसी को बांटे ही सहा जाय विषाद=दुःख।

सन्दर्भ—साधना में लीन योगी के समान तारे का वर्णन करता हुआ कवि आकांक्षा के बन्धन एवं एकाकी रहकर दुःख सहन करने वाले व्यक्ति की स्थिति का वर्णन करता हुआ कह रहा है कि—

व्याख्या—आकांक्षा का तीव्र वेग विवेक आदि किसी प्रकार के बन्धन नहीं मानता। तीव्र आकांक्षा को विवेक की सहायता से भी दबाया नहीं जा सकता। सागर चन्द्रमा से मिलने की तीव्र आकांक्षा के कारण सदा कांपा करता है। वह अपनी तीव्र इच्छा पर नियन्त्रण करने की असमर्थता के कारण किसी अनिष्ट के भय से थर-थर कांपता रहता है। अपनी प्रबल इच्छा के कारण सदा उद्वेलित होता रहता है। उसमे एक के बाद दूसरी उठने वाली लहरें निरन्तर उमडती रही हैं। लगातार बनी रहने वाली अपनी किसी इच्छा के वशीभूत होकर ही सूर्य, चन्द्रमा और तारे अबाध गति से चक्कर लगाया करते हैं। यह आकांक्षा का बन्धन ही है जो इन्हे निरन्तर घूमते रहने के लिए बाध्य करता है। वास्तव मे आकांक्षा बन्धन अनुल्लंघ्य है।

कवि तारे को सम्बोधन करके पूछता है रे तारे! यह तो बताओ कि क्या तुम्हारे प्राण किसी निरन्तर बनी रहने वाली आकांक्षा के कारण विकल रहते हैं। क्या इसी से तुम्हारे नेत्र सदा सजल बने रहते हैं? कवि तारे का एकाकी जीवन देखकर उसी पर विचार करता हुआ कहता है कि एकाकी जीवन व्यर्थ और निष्फल होता है। एकाकी जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति अनेक प्रकार की आकांक्षा-जनित वेदनाओं से तड़फड़ाया करता है। एकाकी जीवन में आनन्द का प्रकाश नही रहता। उनमे दुख ही बना रहता है इसलिए एकाकी जीवन का मूक-भार असह्य होता है। अकेला व्यक्ति अपने दुःख सुख की बात किसी से न कह सकने के कारण स्वयं ही घुटता रहता है। उसके विषाद का कोई पार नही पा सकता। कवि कहता है कि तुम तो बिल्कुल अकेले हो इसलिए निश्चित ही तुम अत्यन्त दुखी हो। कवि को तारे की स्थिति पर दया आती है।

विशेष—(१) प्रस्तुत पंक्तियों मे कवि ने आकांक्षा के प्रबल वेग का चन्द्र आदि नक्षत्रों पर प्रभाव बतलाकर यह कहना चाहा है कि आकांक्षायें अदम्य होती हैं।

(२) 'मूक-भार' में विशेषण विपर्यय है क्योंकि भार मूक नही होता। भावार्थों से दुःखी एकाकी जीवन व्यतीत करने वाला मूक रहता है।

चिर अविचल .... वह सम।

शब्दार्थ—अविचल=स्थिर, दृढ, छन्द-बन्ध=नियमों के बन्धन, अनन्त=आकाश, मुक्तमीन=स्वच्छन्द विचरण करने वाली मछली, असग=निराधार, अनासक्त, अकेला, निष्कम्प=कम्पन रहित, अचल, प्रबुद्ध=ज्ञानी, विवेकी, चेतन, ध्रुव=ध्रुव तारा, सम=समान, सदृश।

सन्दर्भ—प्रस्तुत पंक्तियो मे कवि आकाश मे चमकते शुक्र तारे का वर्णन कर रहा है जो अविचल रहकर किसी ध्यान मे लीन है।

व्याख्या—सदैव स्थिर रहने वाला और निरन्तर प्रकाशमान तारा नियमो के किसी भी बन्धन को नही मानता। वह चिरकाल से आकाश मे अडिग बैठा है। उसका प्रकाश बड़ा तीव्र है। वह किसी नियम के बन्धन मे नहीं है और उसी प्रकार आकाश मे स्वच्छन्द है जिस प्रकार जल की मछली होती है। वह अनासक्ति के सुख मे तल्लीन है। उसके मन मे किसी प्रकार की आसक्ति नहीं है। आसक्ति मन की शान्ति मे बाधा प्रस्तुत करने वाली होती है परन्तु अनासक्त रहने के कारण वह एक विशेष सुख का लाभ प्राप्त करता रहता है। उसके स्वरूप मे कभी कोई विकार नहीं उत्पन्न होता। वह चिर-नवीन रहने वाला है। वह दीपक की अविकम्पित रहने वाली लौ के समान अनुपम स्वरूप वाला है। दीपक के समान वह संसार का अन्धकार दूर करता रहता है अर्थात् रात्रि के अन्धकार मे दीपक के समान चमक कर प्रकाश फैलाता रहता है। सदा समरस रहने वाला इच्छा आदि के झोको से अप्रभावित रहकर अविचल रहने वाला शुद्ध स्वरूप वाले ज्ञानवान पुरुष के समान वह शुक्र तारा है।

विशेष—(१) प्रस्तुत पंक्तियो में शुक्र तारे का ऐसे साधक के रूप मे कवि ने वर्णन किया है जिसकी आकाक्षायें दूर हो गई हैं जो समरसता की अवस्था प्राप्त कर चुका है, जो शुद्ध स्वरूप एवं ज्ञानवान है।

(२) समरसता की महिमा का बखान प्रसाद जी ने अपनी रचना कामायनी मे खूब किया है। गीता मे श्रीकृष्ण भगवान ने भी अर्जुन को समरस रहने का उपदेश निम्न पंक्तियो मे दिया है।—

> सुख दुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
> ततो युद्धाय युज्जस्व नैवम् पापमवाप्स्यसि ॥

'शिवसूत्र विमर्शिनी' मे भी सामरस्य का सिद्धान्त उल्लिखित है।

(३) छन्द की प्रथम पंक्ति मे 'पर' का प्रयोग व्यर्थ है।

गुंजित··· ···· जग-दर्शन।

शब्दार्थ—अलि = भौंरा, मधुमय = मधुर, सुन्दर, घन = घना, अधिक, आत्म = आत्म स्वरूप ब्रह्म।

सन्दर्भ—शुक्र तारा आकाश मे अपनी साधना के आनन्द मे लीन है। आकाश मे सर्वत्र जगमगाते तारों के बीच स्थित तारे की शोभा का वर्णन कवि करता हुआ कहता है कि—

व्याख्या—उस निर्जन और सीमारहित विस्तार वाले घने अन्धकार मे युक्त वातावरण में गुञ्जार करते हुए भौंरे का सा हल्का स्वर सुनाई पड रहा है जिससे वह घना अन्धकार भी मधुर प्रतीत होने लगा है। एकाकीपन का जो दुख अधिक कष्टमय लगता था वह हल्का हो गया है। आकाश मे कुन्दकलियो के समान शुभ्र तारे निकल आये हैं, कुन्द-कलियो से लदे हुए

आगन की भाति आकाश जगमगाते तारो से बडा रम्य हो उठा है। उन तारों के बीच स्थित शुक्र तारा ऐसा लगता है जैसे सृष्टि के बीच आत्मस्वरूप ब्रह्म स्थित हो। भाव यह है कि जिस प्रकार एकाकी ब्रह्म अपनी इच्छानुसार सृष्टि का सृजन कर लेता है उसी प्रकार शुक्र तारे ने भी मानो तारो की सृष्टि को रच लिया है और इस प्रकार अपनी एकाकीपन की व्यथा के भार को हल्का कर लिया है।

विशेष—१ इस कविता की अतिम पक्ति के कारण मे सम्पूर्ण कविता द्विअर्थक बन गई है, अन्योक्ति बन गई है। इसके प्रस्तुत और अप्रस्तुत पक्ष क्रमश: शुक्र तारा और ब्रह्म से सम्बद्ध है। जिस प्रकार ब्रह्म ने 'एकोऽहं बहुस्याम्' की इच्छा से जगत् की सृष्टि की थी उसी प्रकार शुक्र तारे ने ही मानो तारो के ससार का सृजन कर लिया है।

२. भ्रमर की गुंजार अनहद नाद की प्रतीक है।

३. इस कविता मे अद्वैतवादी दर्शन को वाणी दी गई है। प्रकृति चित्रण के कारण कविता नीरस नही हो पाई है।

४ 'एक तारा' पत जी की श्रेष्ठ रचनाओ मे से एक है।

नौका बिहार

कथ्य--एक बार महाराज कालाकाकर पत जी को अपने महल ले गये। महल के पास ही गगा बह रही थी। कवि ने उसमे नौका-विहार किया। इस कविता मे ग्रीष्मकालीन पतली धार वाली गगा का चित्र प्रस्तुत किया गया है। शांत-आकाश के नीचे चादनी रात मे बालू की शैया पर श्वेत अङ्गो वाली गगा लेटी हुई है। वह तापस-कन्या के समान पवित्र है। उसके जल मे चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब पड रहा है वही उसका मुख है। गगा का तल बाला की हथेली है जिस पर वह अपना मुख रखे हुए है। गगा के वक्ष पर उठती हल्की लहरें इठला रही हैं वे ही उस बाला के वायु के स्पर्श से हिलते कोमल केश हैं। गंगा रूपी नायिका तारो से खचित नीले आकाश के प्रतिबिम्ब से युक्त ऐसी जान पड़ती है कि वह तारो से जडी नीली रेशमी साडी पहने हो। गगाजल में उठने वाली गोलाकार लहरें चादनी के कारण चमक रही हैं और लगती हैं मानो बाला के लेटने के कारण उसकी रेशमी साडी में पडी हुई सिकुडनें हो।

रात्रि के प्रथम प्रहर मे कवि ने नौका-विहार किया। किनारे पर सफेद बालू पर चादनी ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो प्रस्फुटित सीपी के भीतर से मोती की कान्ति चारो ओर फैल रही हो। पालदार छोटी नाव गगा के वक्ष पर मथर गति से आगे बढती जा रही थी और वह ऐसी प्रतीत होती थी जैसे कोई श्वेत हसिनी अपने सफेद पख खोले जल पर धीरे धीरे तैरती बढ रही हो।

गगा के शात निर्मल जल मे चादी के समान सफेद चमकते हुए किनारो का प्रतिबिम्ब पड रहा था जिससे किनारे क्षण भर के लिए दुगुने ऊचे दीख पडते थे। कालाकाकर का राजभवन भी जल मे प्रतिबिम्बित हो ऐसा जान पडता था जैसे वह अपने अतुल वैभव के स्वप्न देख रहा हो।

आकाश और चमकते तारो का प्रकाश जल मे प्रतिबिम्बत था जो लहरो के साथ-साथ हिलता हुआ ऐसा प्रतीत होता था मानो जल में अपनी आखें फाडे कुछ खोज रहा हो। तारों का प्रतिबिम्ब लहरो के हिलने से कभी छिप जाता था कभी दीख पडता था तो ऐसा लगता था जैसे लहरें अपने अंचल में तारों के दीप छिपाए लुका-छिपी का खेल खेल रही हो।

जल की बीच धारा मे जब कवि की नाव पहुच गई और दोनों किनारे दूर हो गये तो वे किनारे तन्वगी नायिका के शरीर को आलिंगन मे बाध लेने के लिए फैली हुई नायक की अधीर भुजाओ के समान जान पडती थीं। दूर क्षितिज पर स्थित पेडो की पक्ति नायक की तिरछी भौंहो के समान और नीला गगन खुले नयनो के समान प्रतीत होता था। धारा के बीच मे स्थित एक द्वीप मा के वक्ष पर सोते हुए बच्चे के समान लगता था।

नौका जब धार की उल्टी दिशा की ओर लाई गई तो नौका अपने डाडो रूपी हथेलियो मे मोतियो से झागो से उत्पन्न बुदबुदो को भर-भर कर इस तरह फैलाने लगी जैसे कोई चंचल बालिका हार तोड कर मोती बिखरा रही हो। चचल लहरें ऊपर से पडती हुई चादनी के कारण ऐसी लगती थी मानो चादी के साप रेंग रहे हो।

जैसे-जैसे नाव किनारे की ओर बढती आ रही थी वैसे ही कवि के मन मे अनेक दार्शनिक विचार आ रहे थे जैसे-इस धारा के समान ससार की गति भी सदैव गतिशील रहती है। कवि को अपनी अमरता का ज्ञान हो गया। जन्म-मरण के दो किनारों के बीच जीवन-नौका का विहार अनादि काल से होता चला आया है। जल के समान ही जीवन भी सनातन है।

प्रस्तुत कविता मे प्राकृतिक चित्र बडे ही रम्य हैं परन्तु जहा कवि दर्शन पर व्याख्यान झाडने लगता है वही वह अपनी प्रकृति से दूर चला जाता है और पाठको को पुष्प-वाटिका से भुलावा देकर एक ऐसे कान्तार मे ढकेल जाता है जहा उसके हृदय के कोमल भाव एकदम नौ-दो ग्यारह हो जाते हैं। नौका विहार कविता को पढ कर चादनी रात्रि मे नौका-विहार करता हुआ पाठक जल मे तैरती श्वेत हसिनी देख कर, लहरो और तारो का लुका-छिपी का खेल देख कर और चादी के सर्पों की रममल देख कर आनन्द मे ऐसा विभोर हो जाता है कि उसे किनारे पर लौट चलने का ध्यान ही नही आता। परन्तु जब किसी प्रकार उसकी नौका किनारे के पास आने लगती है तो मानो कवि पत के दार्शनिक विचारो के कीचड मे उसकी नौका फस जाती है और नौका-विहार का सर्वानन्द भूल कर वह ईश्वर का चिन्तन हथेली पर सिर रख कर करने लगता है।

शान्त ···मृदुल लहर।

शब्दार्थ—ज्योत्स्ना=चादनी, स्निग्ध=तरल, अपलक=बिना पलक मारे, टकटकी लगाए हुए, निर्निमेष, अनत=आकाश, सैकत-शय्या—बालू की शय्या, दुग्ध-धवल=दूध के समान सफेद, तन्वगी=कृश शरीर वाली, ग्रीष्म-विरल=गरमी के कारण दुर्बल, श्रान्त=थकी हुई, क्लान्त=व्यथित, तापस-बाला=तपस्वी की पवित्र कन्या, करतल=हथेली, कुन्तल=बाल, विभा=प्रकाश, नीलाम्बर=नीला आकाश, वर्तुल=गोल।

सन्दर्भ—एक बार महाराज कालाकांकर की सूचना पाकर कवि पत उनके महल गये। वही समीप ही गगा बह रही थी। कवि ने उसमे नौका-विहार किया। गगा में ग्रीष्म के कारण जल कम था। उसी का यहा वर्णन किया गया है।

व्याख्या—जिस समय कवि नौका विहार करने के लिए उद्यत हुए रात्रि का प्रथम प्रहर था। चारो ओर पृथ्वी पर शान्त वातावरण था। कोमल और शुभ्र चांदनी फैल रही थी। आकाश अपलक नेत्रो से मुग्ध देख रहा था अर्थात् आकाश मे बादलों का कही निशान नही था? स्वच्छ आकाश है, ऐसा ही लग पड़ता है। ऐसे शान्त वातावरण में ग्रीष्म के कारण पतली

हो गई थी धार जिनकी ऐसी दूध सी सफेद धारा वाली गंगा नदी बालू के तटों के बीच बह रही थी, जो ऐसी लगती थी जैसे दुग्ध सी श्वेत वर्णवाली कृशांगी, ग्रीष्म के कारण निर्बल, परिश्रम से थक कर व्यथित कोई नायिका शैय्या पर निश्चल होकर लेटी हुई हो। गंगा तपस्वी की कन्या के समान पावन है। चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब गंगा के जल में पड रहा है वही गंगा-तापस-बाला का मुख है। चन्द्रमा के कारण ही गंगा का तल प्रतिभासित हो रहा है तो ऐसा लगता है जैसे बाला हथेली पर अपना मुख रखे हुए करवट से लेटी हो। दृश्य यह है कि गंगा जल में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब पड रहा है और उस प्रतिबिम्ब के नीचे गंगा का तल उसमे प्रकाशित होकर चमक रहा है। चमकता हुआ तल गंगा की हथेली है। गंगा के जल में उठने वाली लहरें ऐसी प्रतीत होती हैं मानो नायिका के वक्ष पर वायु के कारण कोमल केश लहरा रहे हों।

गंगा रूपी नायिका के गोरे अंगो पर उसके शरीर के स्पर्श के कारण जैसे सिहर-सिहर उठने वाला तारों से जडा नीले आकाश का प्रतिबिम्ब रूपी नीला अंचल तेजी मे लहरा रहा है। अभिप्राय यह है कि गंगा का निर्मल जल गंगा तापस-बाला के गोरे अंगों का प्रतीक है। उस जल मे तारों से भरे आकाश का प्रतिबिम्ब पड रहा है। जल मे लहरें उठ रही है जिनके कारण आकाश का प्रतिबिम्ब भी हिलता है। आकाश का तारों जडा प्रति-बिम्ब तारों से जडी नीली रेशमी साडी है जो लहरों के कारण लहराती प्रतीत होती है।

रेशमी साडी को पहनकर सोया जाय तो उसमें सिकुडनें पड जाती है और चमकती है। गंगा मे पडने वाली लहरें ही सिकुडन है और चन्द्रमा के प्रकाश से लहरों में उत्पन्न चमक ही रेशमी साडी की सिकुडनों की चमक है। लहरों की गोल सी आकृति होती है इसलिए साडी मे पडी सिकुडनें गोला-कार हैं।

विशेष—(१) गंगा का नायिका के रूप मे मानवीकरण किया गया है। गंगा की उपमा तापस-बाला मे दी गई है जो अत्यंत रम्य है। तपस्वी-कन्याएं निसर्गत पवित्र होती हैं। बालाओं को जमीन पर सोना पडता है तथा तन्वंगी होती हैं, सुडौल शरीर वाली, न कि धनाढ्य घरानों की माल-खाकर मोटे शरीर वाली नारियों सी जिन्हें कुछ भी नही करना पडता। तापस बालाएं वल्कल वस्त्र पहनती हैं, रेशमी साडियां नही। परन्तु निसर्गत सुन्दर लगने वाली तापस-बालाओं को आज के सिने-जगत के से कपडे पहना कर उत्पन्न सौन्दर्य को देखने की अभिलाषा संभवतः कवि को हुई होगी।

(२) श्रान्त क्लान्त बाला के रूप मे जो कि शैय्या पर हथेली पर अपना चन्द्र-मुख रखकर लेटी हो, गंगा को चित्रित किया जाना बडा सुन्दर शब्द-चित्र है।

चाँदनी···· सघन।

शब्दार्थ—सत्वर=शीघ्र, सस्मित=मुस्कराती हुई, चमकदार, तरणि=नाव, सिकता=बालू, तिर=तैर, शुचि=निर्मल, रजत-पुलिन=

चादी के समान स्वच्छ चमकीले तट, निर्भर = अत्यधिक, पूर्ण, प्रमन = मस्त, प्रसन्न ।

सन्दर्भ—रात्रिकालीन शान्त वातावरण मे कवि गगा मे नौका विहार के लिए निकला है । उसी का वर्णन प्रस्तुत पक्तियों मे किया गया है । यहा तट के दृश्यो का वर्णन भी कवि करता गया है ।

व्याख्या—कवि कहता है कि चादनी रात के प्रथम प्रहर में हम शीघ्र ही नाव लेकर नौकाविहार करने के लिए रवाना हुए । सीपी के भीतर स्थित मोती जिस प्रकार अपनी कान्ति फैलाता रहता है उसी प्रकार बालू चादनी के कारण चमक रही थी । थोडी देर मे नाव की पालें चढा दी गई और लगर उठा दिया गया । फिर हमारी छोटी नाव मन्द-मन्द गति से गगा के जल पर तैरने लगी । ले सफेद पालो के कारण नाव ऐसी लग रही थी जैसे श्वेत-हंसिनी अपने पख खोलकर मथर गति से जल मे तैरकर आगे बढती जा रही हो । गगा के किनारे के पास जल शान्त था उसमे चाँदनी के कारण चादी से चमकते बालू के तट प्रतिबिम्बित हो रहे थे । किनारे जल दर्पण के समान प्रतीत होते थे । प्रतिबिम्बित होकर तट क्षणभर के लिए दुगुने ऊचे प्रतीत होते थे । गगा के किनारे ही कालाकाकर का राजभवन था जिसका प्रतिबिम्ब जल मे ऐसा प्रतीत होता था जैसे वह निश्चिन्त होकर सो रहा हो और उसके पलको मे अपने अतुल वैभव के स्वप्न विचर रहे हो ।

विशेष—(१) 'मृदु मन्द-मन्द··· पर' इन पक्तियो से आखों के सामने तुरन्त मन्थर गति से तैरती हुई श्वेत हंसिनी का चित्र उतर आता है । हंसिनी की गति के अनुरूप ही शब्द-चयन में भी मंदता एव मथरता है । इसमे सगीत एवं गति दोनो विद्यमान हैं ।

(२) पत जी महाराज कालाकाकर के यहा रहते थे । वही गगा प्रवाहित हो रही थी । उसी मे किये गये नौका-विहार का दृश्य कवि ने प्रस्तुत किया है ।

(३) 'वैभव-स्वप्न सघन' से यह ध्वनित होता है कि कालाकाकर के राजमहल का अपार वैभव था ।

(४) कालाकाकर के राजभवन का ऐसे मानव के रूप मे चित्रण किया गया है जो प्रफुल्लित मन से आनन्द की नींद सो गया हो और अपने वैभव के स्वप्न देख रहा हो । यहा मानवीकरण है ।

(५) जलरूपी दर्पण मे किसी भी वस्तु का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखाई पडता है । किनारे का जल मे प्रतिबिम्ब पड रहा था इसलिए तट अपने प्रतिबिम्ब की ऊचाई को मिलाकर दुगुने ऊंचे दीख पडते थे । 'क्षण भर' से यह अर्थ निकलता है कि तटों की दुगुनी ऊचाई तभी तक दीखती थी जब तक जल शान्त रहता था परन्तु जल प्राय· अशान्त रहता है । नदी का जल तो प्रवाहित ही होता रहता है । इसलिए पानी के हिलते ही उनका प्रतिबिम्ब मिट जाता था । कवि के सूक्ष्म निरीक्षण की ये पक्तियां भी अच्छी परिचायक हैं ।

(६) भाषा कोमल, चित्रात्मक और सुन्दर है ।

नौका से .... रुक-रुक ।

शब्दार्थ—विस्फरित=खुली हुई, अपलक नेत्रो से, तारक दल=तारो के समूह, अविरल=जो विरल न हो, सघन, लगातार, शुक्र=शुक्र तारा । रुपहरे=रूपहले, श्वेत, चादी के रग वाले । कच=केश, बाल, तिर्यक=टेढा, ओझल=गायब, मुग्धा=यौवन को प्राप्त सरल स्वभाव वाली नायिका ।

सन्दर्भ—रात्रि का शान्त वातावरण था । सर्वत्र निर्मल चादनी फैली हुई थी । कवि नौका-विहार करने लगा । उस समय उसकी जिन-जिन दृश्यो की ओर दृष्टि गई उसका यहा वर्णन हुआ है । उसे तारो की परछाई और लहरें लुका-छिपी का खेल करती दीख रही थी ।

व्याख्या—जल मे तैरती नाव आगे बढ़ती जाती थी । नौका के आघात से जल हिलोरें ले उठता था जिससे जल मे पडने वाला आकाश का सम्पूर्ण प्रतिबिम्ब हिल उठता था । आकाश मे प्रकाशमान तारो का प्रतिबिम्ब जल मे पड रहा था जो ऐसा प्रतीत होता था मानो जल के तल को प्रकाशित करके तारे अपने नेत्र फाड-फाड कर कुछ खोज रहे हो । जल के हिलने से तारो का प्रतिबिम्ब हिल उठता था इसलिए उन्हे चल तारक दल कहा गया है । किसी वस्तु की खोज भी घूम फिर करके ही की जाती है । इसलिए जल मे तारो का हिलता प्रतिबिम्ब घूम फिरकर कुछ खोजता जान पडता था ।

जल मे पडने वाला तारो का प्रतिबिम्ब लहरो के हिलने के कारण हिल उठता था तो ऐसा प्रतीत होता था मानो चचल लहरें अपने अचल की ओट मे तारो के छोटे दीपको को छिपाकर लगातार लुका-छिपी का खेल कर रही हो अथवा चचल लहरें अचल की ओट मे तारे रूपी छोटे दीपो को छिपाकर क्षण-क्षण मे निकलती छिपती लगातार चलती जा रही हो । सामने आकाश मे चमकता हुआ शुक्र तारा झलमल कर रहा था । उसकी कान्ति झलक रही थी । ऐसे तारे का प्रतिबिम्ब जल मे पड रहा था जो ऐसा प्रतीत होता था मानो जल मे कोई परी तैरती हुई शोभित हो और जो चादनी के कारण चादी के समान चमकने वाले जल रूपी रूपहले बालो में कभी अपना मुख छिपा लेती हो और कभी निकल आती हो । शुक्र तारा कभी छिप जाता था और कभी दिखलाई पडने लगता था इसलिए उसका प्रतिबिम्ब भी जल मे कभी ओझल हो जाता था कभी निकल आता था । दशमी का अपूर्ण चन्द्रमा लहरो मे कभी अदृश्य हो जाता था और कभी निकल आता था । चन्द्रमा की लुका-छिपी से ऐसा प्रतीत होता था मानो कोई मुग्धा नायिका झुक-झुक कर घूघट मे से थोडी-थोडी देर मे कुछ मुडकर अपना मुख दिखा रही हो ।

विशेष—(१) अंधकार में कोई चीज खोजने के लिए प्रकाश की अपेक्षा होती है । जल में तारो का प्रतिबिम्ब भी चमकता हुआ था और लहरो के कारण हिल रहा था इसीलिए तारे जल के अधकार युक्त तल मे घूमफिर कर प्रकाश की सहायता से ही कुछ देख पा रहे थे ।

(२) शुक्र तारे के रूप मे तैरती परी का दृश्य चादनी रात मे कितना मोहक लगता होगा । रूपहले बालो मे जब उसका मुख कभी छिप जाता होगा तब उसे देखने की उत्सुकता और भी बढ जाती होगी ।

(३) नायिका जब पूजन करने जाती है, तो दीपक कहीं वायु से बुझ न जाय, इस भय से उस पर अंचल की ओट कर लेती है। ठीक उसी प्रकार लहरें मानो नायिका हैं और उनमे प्रतिबिम्बित तारे छोटे दीपक।

(४) दशमी का चन्द्रमा अपूर्ण होता है इसलिए गोल न होकर वक्र होता है। उसका प्रतिबिम्ब जब जल में पड़ता होगा लहरो की चंचलता वश वह प्रतिबिम्ब कभी दीख पड़ता होगा कभी छिप जाता होगा। मुग्धा नायिका भी संकोचवश अपने मुख को बार-बार घूंघट से ढक लेती है।

(५) इस छन्द में सर्वत्र मानवीकरण है।

(६) कविवर पंत को 'रूपहरे' शब्द बडा प्रिय है। बादल तो रूपहले बड़े चमकते हैं इन्हे केश भी रूपहले अच्छे लग रहे हैं। अधिकाश कवि सचिक्कण काले केशों की ही चर्चा किया करते हैं। ये तो पंत जी जो ठहरे—भाषा, छन्द व्याकरण सभी क्षेत्रो मे नये परिवर्तन लाने वालों के अग्रणी।

अब पहुंची···· ···विलोक।

शब्दार्थ—चपला = चंचल नाव, कगार = किनारा, तट, दूरस्थ = दूर पर स्थित विटपमाल = वृक्षों की पंक्ति, भ्रू-रेखा = भौंह, अराल = तिरछी टेढ़ी। ऊर्मिल = लहरों से भरे, प्रतीप = उल्टा, विहग = पक्षी, कोक = चकवा, कोका = चकवी, विलोक = देखकर।

सन्दर्भ—कवि की नाव बीच धार में पहुंच गई है, गंगा के किनारे दूर हो गये हैं। तट अब कवि को दूसरे रूप से प्रतीत होने लगे हैं।

सप्रसंग व्याख्या—पूर्व संदर्भानुसार कवि कह रहा है कि चांदनी रात का वातावरण बडा सुन्दर है। कवि का मन चंचल हो उठा है। ऐसे शांत और मनोरम वातावरण में कवि की नौका लहरो के बीच मे पहुंच जाती है। जैसे ही नौका बीच धार में पहुंच जाती है वैसे ही चांदनी में नहाया गंगा का तट पीछे छूट जाता है। दूर निगाह दौडाने पर गंगा की धारा दिखाई नही पडती दोनो किनारे भी बहुत निकट आते दिखाई देते हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे गंगा के दोनो किनारे दो बाहें हैं जो अपनी प्रेयसी गंगा का आलिंगन करने के निमित्त अधीर हैं। दूर का आकाश लगता है मानो अपने नेत्र खोले हुए हो। दूर क्षितिज के पास जो वृक्षो की माला दिखाई दे रही है वह भ्रू रेखा के समान अराल या वक्र दिखाई देती है। धारा के मध्य में भी एक द्वीप है। यह छोटा सा द्वीप माता की गोद मे सोये हुए किसी कोमल बालक की भांति जान पडता है। कवि का कथन है कि इस द्वीप से टकराने पर धारा की गति प्रतिकूल हो जाती है और चक्रवाक पक्षी भी अपनी छाया रूपी प्रेयसी को देख संयोग का अविरल क्षण पाने के निमित्त उड जाता है। दूसरे शब्दों में अपनी प्रेयसी से मिलने के लिए अधीर हो रहा है।

विशेष—इसमें उपमा और अनुप्रास अलंकारों का प्रयोग किया गया है। वर्णन में चित्रात्मकता है। पन्त सभी छायावादियों में इस चित्रात्मक गुण के लिए प्रसिद्ध हैं।

'कोक' एव 'कोकी' के विषय मे प्रथम 'रश्मि' शीर्षक रचना मे आये सदर्भ को भी देखा जा सकता है।

वह कौन विहग ? का प्रयोग बडा मार्मिक है। साथ ही वर्णन के लिए यह पद्धति बडी आकर्षक है।

पतवार घुमा ······ ··· सहोत्साह।

शब्दार्थ—प्रतनु = हल्का स्फार=पीन, सहोत्साह=उत्साहपूर्वक करतल पसार=हाथ फैलाकर।

सन्दर्भ व्याख्या—कवि नौका मे बैठा है और घूमते हुए वह बीच धार मे पहुच जाता है। तट अब काफी दूर है जो दूर से देखने पर ऐसा लगता है जैसे गगा के आलिगन के लिए बाहे फैल रहा हो।

कवि कहता है कि यकायक हमने पतवार घुमा दी। उसके घूमते ही नौका धार के विपरीत चलने लगी और तब लोग हाथ फैलाकर जोर-जोर से पतवार चलाने लगे। पानी उछलने लगा। उसके उछलने से ऐसा लगता है मानो नौका अपने डाडो रूपी हाथो से भाग के मोतियों को भर-भर कर हार बिखरा रही है। चचल लहरिया बडी पतली रेखाओ के समान लग रही हैं जिन पर चादनी छिटक रही है। इसे देखकर ऐसा लगता है मानो चादी के साप रेंग रहे हो। उन लहर रूपी लताओ मे सैकडो चन्द्र, तारे खिले फूलो के समान बिखर रहे हैं। अब हम ऐसे स्थल पर आ गये हैं जहा गगा का प्रवाह उथला हो गया है। इसलिए अब नौका विहार और नौका सचरण मे वह आनद नही आ रहा है जो पहले था। इतने पर भी कवि का कथन है कि हम सभी लग्गी से थाह ले-लेकर घाट की ओर उत्साह के साथ बढने लगे हैं।

विशेष—रूपक अलकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है। वर्णन बडा मधुर और रसमयतापूर्ण है। 'रलमल' शब्द का प्रयोग स्वाभाविक और यथार्थ है। इस पद मे भी पन्त की चित्रण शक्ति स्पष्ट ही दिखाई देती है।

ज्यों-ज्यों··· ··· ··· अमरत्वदान।

शब्दार्थ—आलोकित = प्रकाशित, शाश्वत=चिरन्तन, रजत-हास = श्वेत वर्णी हास्य, विलास = आनद, अमरत्वदान = अमरता की प्राप्ति।

व्याख्या—कवि ने अपनी छोटी सी नौका को घुमा दिया। परिणाम-स्वरूप नौका धारा के विपरीत चलकर तट पर आ लगी, कवि ने सोचा—

जैसे-जैसे नाव किनारे की ओर चलती जाती है त्यो-त्यो हृदय में सैकडों विचार आने लगते हैं। कवि कहता है कि इस धारा के ही समान ससार की गति है। जिस प्रकार इस धारा का उद्गम, प्रवाह और सागर से मिलन सनातन और शाश्वत है उसी प्रकार जीवन भी शाश्वत है, उसकी गति पर कोई विराम नही लगता है और अन्त मे ब्रह्म से महामिलन होना भी उसका सदा से ही होता आया है। आकाश की नीलिमा, चन्द्रमा का खेलना और छोटी-छोटी लहरो की क्रीडा भी शाश्वत है—चिरन्तन है।

कवि कहता है कि हे ससार रूपी नौका के खिवैया ! जन्म और मरण के दो तटो के बीच वहती हुई सृष्टि-सरिता का विहार भी शाश्वत है। भाव यह है कि सृष्टि की भाति ही जीवन का नौका भी जन्म से मृत्यु और मृत्यु से जन्म के किनारों तक सदैव प्रवाहित होती रहती है। कवि कहता है कि इस जीवन नौका के बीच विहार करते समय मैं सभी कुछ भूल गया अपनी सुध-बुध भूल गया। भाव यह है कि जैसे नौका विहार करते समय हम आनद विभोर हो सभी कुछ भूल जाते हैं। अपनी आत्मा व अपने अस्तित्व को भी भूल जाते हैं। सासारिक प्रवाह मे पडकर हम सभी कुछ भुला देते हैं। हमे अपनी आत्मा का सदैव ध्यान रखना चाहिए।

विशेष—१ प्रारभिक पक्तियो मे कवि स्पष्ट रूप से नौका विहार का वर्णन करता है किन्तु अन्त तक आते-आते वह दार्शनिक बन जाता है। पन्त की कई कविताओं मे यह प्रवृत्ति पाई जाती है।

२. मानव जीवन की तुलना के लिए नौका का उपमान प्राचीन है।

अप्सरा

परिचयात्मक टिप्पणी—यह कविता पन्त जी के छायावादी दृष्टिकोण को प्रस्तुत करती है। कवि की इस रचना मे कल्पना का वैसा ही वैभव और भावनाओं का वैसा ही अतिरेक मिलता है जैसा कि उनकी छायावादी रचनाओ मे मिलता है। यह सन् १९३२ की रचना है। इसमे आगे जो कविताए पन्त ने लिखी वे सभी प्रगतिशील चेतना और क्रान्तिकारी परिवर्तन की सूचना देती हैं। इस कविता की तीन विशेषताए हैं—

१. कवि की सौन्दर्य विषयक सभी कल्पनाएं पूरी कलात्मक वैभव के साथ अभिव्यक्ति पा सकी हैं। छायावादी चेतना इसका प्राण बिन्दु है।

२. अप्सरा कवि की काल्पनिक सृष्टि है। कवियो ने युग युगातरो से अप्सरा के विषय मे अनेक कल्पनाए की हैं। वह सौन्दर्य की प्रतीक बनकर आई है।

३. पन्त ने भी अप्सरा को सौन्दर्य की सभी विशेषताओ से युक्त कर के प्रस्तुत किया है। पन्त ने उसके सौन्दर्य को सर्वव्यापक या विश्व-व्यापक बनाकर प्रस्तुत किया है। एक प्रकार से कवि पन्त ने अप्सरा को काल्पनिक सृष्टि मानकर भी अखिल सौन्दर्यमय निराकार ब्रह्म ही घोषित किया है।

निखिल········ · ····विचित्र अपार।

शब्दार्थ—विस्मयाकार=आश्चर्य की प्रतिमा अकथ=अवर्णनीय, अगोचर=अदृश्य, निरर्थ=अर्थहीन, कुहुकिनी=मायाविनी, विभ्रममयि=भ्रमोत्पादिनी।

व्याख्या—कवि अप्सरा को सम्बोधित करते हुए कह रहा है कि हे अप्सरा! तुम सभी कल्पनाओं की खान हो और ससार के समस्त आश्चर्यो का प्रत्यक्ष या साकार रूप हो। अप्सरे! तुम कल्पनामय होने के कारण अकथ अवर्णनीय और अलौकिक तत्वो से संयुक्त हो। तुम अदृश्य रहती हो, तुम्हारा कोई भी रूप दिखाई नही देता है। तुम मानवीय भावनाओ की आधार हो। तुम कल्पनामय होने के कारण ही रहस्यमय हो, अर्थहीन, असभव और अस्पष्ट भेदो की शृ गार हो। कहने का तात्पर्य यह है कि ससार के समस्त रहस्य तुम्हारे द्वारा निर्मित हुए हैं। तुम मायाविनि और भ्रमोत्पादिनी हो। भाव यह है कि तुम्हारा रूप-सौन्दर्य सभी को छलने वाला है—भ्रम मे डालकर भुलावा देने वाला है। यही तुम्हारी विचित्रता है।

विशेष—अप्सरा युग-युगान्तर से सौन्दर्य और विस्मय का आगार रही है कवियों के वर्णन इसके प्रमाण हैं। पन्त भी इसी परम्परा की एक कडी है।

शैशव की ... नीरव गान।

ससदर्भ व्याख्या—कवि पन्त अप्सरा के सौन्दर्य के विषय में अनेक कल्पनाएं करते दिखाई देते हैं। वे कह रहे हैं—हे अप्सरा! तुम बच्चों की चिर परिचित सहेली हो—उनके साथ खेलने-कूदने वाली हो। बच्चे परियों की कहानियां सुन-सुनाकर ही प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। इसीलिए कवि ने कहा है कि तुम बच्चों की सहेली हो। हे अप्सरा तुम संसार से अलग-थलग रहती हो—भाव है कि तुम्हें दीन दुनिया की छद्मता छू तक नहीं गई है। तुम संसार के छल-छन्दों से सर्वथा दूर हो। अनजान दुधमुंहे बच्चों की देखभाल करती हैं। बच्चा जब अपना अंगूठा चूमता है तो तुम उसे (अप्सरा) अपना स्तन पान कराती हो। तुम बच्चों को विशेष स्नेह करती हो। यही कारण है कि तुम उसे मीठी-मीठी थपकियां और लोरियां को सुनाकर निद्रा देवी की गोद में धकेल देती हो।

विशेष—इस पद में अप्सरा की मातृत्व भावना तथा उससे जुड़ी हुई विविध लोक-रीतियों व विश्वासों की ओर संकेत किया गया है।

तन्द्रा के छाया ... रूपाभास।

शब्दार्थ—तन्द्रा=आलस्य, सविलास=सानन्द, अस्फुट मुकुलों=अध खिले पुष्पों, हास=हास्य, रूपाभास=रूप की छाया की कल्पना करते हैं।

ससदर्भ व्याख्या—कवि पन्त अप्सरा का वर्णन पूर्व संदर्भानुसार ही कर रहे हैं। वे कहते हैं कि हे अप्सरा जब बच्चे प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न हो जाते हैं तो तुम निद्रा की छाया के समान अस्पष्ट मार्ग से खेल-खेल में ही आकर उन्हें आनन्द और हास्य प्रदान करती हो। बच्चों की स्वप्न मुद्रा में उनके अधरों पर रंगीन स्वप्नों का हास्य बिखेर देती हो। प्रायः देखा जाता है कि बच्चे सोते समय मन्द-मन्द मुस्कराते हैं। कवि उनकी इसी मन्द मुस्कान को परियों का हास्य बिखेरना बताता है। बचपन में बच्चों की माताएं परियों की कहानियां सुनाया करती है। अबोध और दुधमुंहे बच्चे इतिहास के पृष्ठों पर अंकित तथा अनेक दन्त कथाओं को सुन-सुनकर अपने मानस में अप्सराओं के स्वरूप की कल्पना किया करते हैं।

प्रथम रूप ... द्युतिस्फार।

शब्दार्थ—उन्मद=मस्त, उद्दाम=प्रखर, अभिराम=सुन्दर, प्रतियाम=प्रत्येक पल, छविधाम=सौन्दर्य का केन्द्र या भण्डार, सुरधनु=इन्द्र धनुष, छायापट=वस्त्र, द्युति=कान्ति।

ससदर्भ व्याख्या—कवि इन पंक्तियों में अप्सरा के सौन्दर्य का वर्णन कर रहा है। वह कहता है कि यौवनागम के क्षणों में सौन्दर्य [illegible] में पगलाती प्रियतमा के हृदय में यौवन प्रबल वेग से लहरें [illegible] है। उस समय अप्सरा तुम प्रिया के शरीर से लिपटी हुई बड़ी भली मालूम होती हो। अप्सरा! यह तुम्हीं हो जो युवतियों के हृदय में रहस्य [illegible] उनका हृदय चुराती रहती हो—सजीव सी मादकता गुदगुदी

करती रहती हो। इस प्रकार युवतियां तुम्हारे रहस्यात्मक सौन्दर्य के कारण मन ही मन तुम्हें स्मरण करती रहती हैं। तुम्हारी कल्पना मात्र से ये स्त्रियां पुलकित हो उठती है और पुलक के क्षणो मे उनकी लतावत छरहरी देह अंग-प्रत्यगो रूपी कोमल पुष्पो से लदकर सौन्दर्य की साकार प्रतिमा बन जाती है। भाव यह है कि अप्सरा की कल्पना मात्र से नारियो के शरीर मे सौन्दर्य का स्फुरण होने लगता है। हे अप्सरा तुम इन्द्रलोक मे प्रसन्न भाव से लघु पदों से नृत्य किया करती हो। इतना ही नही नृत्य के साथ ही अपनी बिजली के समान यकायक चमक उठने वाली आश्चर्य भरी चितवन से देवताओ की ओर दृष्टिपात कर सारी देव सभा को चचल कर देती हो। भाव यह है कि तुम्हारे विद्युत-कटाक्षो से समस्त देवसभा चकित हो जाती है। हे अप्सरा! तुम अपनी नगी देह पर के इन्द्र धनुषवत् चमकता हुआ झीना कोमल वस्त्र धारण कर अपनी वेणी मे कुन्द का उज्ज्वल कान्ति वाला फूल लगाती हो। वह पुष्प ऐसा प्रतीत होता है मानो आकाश की वेणी मे चन्द्र-किरणो के समान श्वेत कुन्द का पुष्प गुथा हुआ हो।

विशेष—इस पद की कल्पनाएं बडी मनोरम हैं। कवि ने छायावादी चेतना वाली समस्त कल्पनाओ का प्रयोग इस पद मे किया है। इनमे सूक्ष्मता और मार्मिकता पर्याप्त मात्रा मे मिलती है।

स्वर्गङ्गा मे सरसिजमाल।

शब्दार्थ—मृणाल=कमल नाल, मराल=हस, उड्-बाल=तारो के बच्चे, द्युति=कांति, सरसिजमाल=कमलो की माला।

ससदर्भ व्याख्या—कवि पन्त पूर्व सदर्भ से ही अप्सरा को सम्बोधित करते हुए कह रहे हैं कि हे मृणालवत् सुन्दर भुजाओ वाली! जब तुम स्वर्ग की गगा मे जल-क्रीडा व स्नान करती हो तो ऐसा लगता है—मानो जलोर्मियो मे सैकडो प्रतिबिम्ब रूप रुपहले मराल तुम्हारी कमल नाल के समान भुजाओ को थामकर सतरण कर रहे हो। हे अप्सरा जब तुम अपनी मृणाल बाहो से जल मे विहार करती हो तो सैंकडो की तादाद मे श्वेतवर्णी बबूले उठने लगते हैं और जानती हो आकाश मे जो नन्हे-नन्हे तारागण दिखाई देते हैं वे सभी बबूलो के अतिरिक्त और कुछ नही है। तुम्हारे नयनाभिराम शरीर की स्वर्णिम कान्ति ही मानो चचल लहरो मे लहराती हुई कमलो की माला का रूप धारण कर लेती है। भाव यह है कि तुम्हारा शरीर कमल के समान है जो स्नान करते समय बडा भव्य लगता है।

रवि छवि हो नित पार।

शब्दार्थ—रवि-छवि=सूर्य की किरणें, तडित=बिजली, नागदन्त=सर्प का दांत, नत=झुका हुआ।

ससदर्भ व्याख्या—कवि पन्त कहते हैं कि हे अप्सरा! तुम सूर्य किरणो से प्रकाशित चचल बादलो पर, आकाश के दूसरी ओर, बिजली की कडक से हिरण के कोमल बच्चे के समान भयभीत चन्द्रमा को हृदय मे छिपा लेती हो। इसके अनन्तर आकाश मे चचल तारागणो के रूप मे अपने चरणो पर लघु भार

डालती हुई, अपने पग-चिन्हों को छोड़कर नागदन्त के सदृश झुके हुए इन्द्र धनुष रूपी पुल को नित्य पार करती हो।

कभी स्वर्ग की ... कला अराल।

शब्दार्थ—प्रवाल=मूंगा, सरसी=सरोवर, मनोज=कामदेव, अराल=तिरछी।

सन्दर्भ व्याख्या—हे अप्सरा कोई समय था जबकि तुम स्वर्ग की निवासिनी थी, अब तो वह समय बीत गया है क्योंकि तुम पृथ्वी पर रहने लगी हो। भाव यह है कि हे अप्सरा ! अब तो तुम बालिकाओं के रूप में पृथ्वी पर आ गई हो। बालिकाएं और सुन्दरियां अप्सरा ही तो होती हैं। अब तो तुम्हें यहां देखकर सारा संसार विस्मय विमुग्ध रह जाता है। जैसे किसी अद्भुत वस्तु को देखकर बच्चों के नेत्र आश्चर्य से खुले रहते हैं, उसी प्रकार सारा संसार तुम्हारे इस रूप को देखकर विस्मय विमुग्ध रह जाता है। विस्मय के इन क्षणों में व्यक्ति की आंखें मूंगे के समान फटी-सी दिखाई देने लगती हैं। हे अप्सरा ! तुम वय: सन्धि वाली स्त्रियों के हृदय रूपी सरोवर में कामदेव रूपी हंस को चुगा देकर अर्थात् काम-भावना उत्पन्न कर उन्हें रोमांचित हो मधुर रूप से हंसना तथा चितवन को तिरछी कर कटाक्ष करने की कला में पारंगत कर देती हो। भाव यह है कि यौवन का उदय होते ही युवतियां रोमांचित हो आकर्षित करने के लिए कटाक्ष करना सीख जाती हैं या यों कहें कि स्वभावत इन गुणों से युक्त हो जाती हैं।

तुम्हें खोजते ... कवि भ्रान्त।

शब्दार्थ—तपक=तपाक से, इंगित=संकेत, मधुप=भ्रमर।

सन्दर्भ व्याख्या—कवि पन्त इस पद में अप्सरा की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि हे अप्सरा तुम महान् हो, सौन्दर्य की खान हो। आज भी अनेक कवि तुम्हें अपनी कल्पना की छाया के समान अस्पष्ट वनों में खोजते हैं। भाव यह है कि कविगण अपनी मधुर कल्पनाओं के द्वारा तुम्हारे रूप का अंकन करते हैं। जब रात के पहरेदार जुगनू रात भर जाग-जाग कर पहरा देते हैं और पहरा देने के बाद प्रात होने पर सदैव के समान सो जाते हैं। इस वातावरण में तरुवर के पत्ते हिलते हैं तो सर्वत्र सिहरन छा जाती है। वृक्ष मर्मर ध्वनि करते हुए अचानक चमक उठने वाली विद्युत की भांति चंचल हो उठते हैं ! ऐसे क्षणों में अब भी सहयोगी कवियों के सदृश्य भ्रमर अपनी गुंजार द्वारा तुम्हारे आगमन का संकेत देते हैं।

विशेष— १. अप्सरा को सौन्दर्य और जीवन का प्रतीक माना गया है। "प्राप्त [illegible] नवजीवन की लहर और सौन्दर्य का साम्राज्य [illegible] अप्सरा की ओर संकेत करता है।"

२ [illegible] बहुत ही चित्रात्मक और आकर्षक है। कवि ने आकर्षक [illegible] का प्रयोग किया है।

गौर श्याम तन·· गात ।

शब्दार्थ—गौर-श्याम=गोरा-सांवला, प्रकाश-तम=प्रकाश और अन्धकार, भगिनि-भ्रात=बहिन-भाई, सहजात=एक ही वय के, मसृण=चिकना, छायाचल=छाया के समान झीना, अस्पष्ट वस्त्र, तन्वि=छरहरे शरीर वाली, सूत्र=डोरा या धागा, सिहरती=शीतल करती ।

सन्दर्भ व्याख्या—कवि पन्त पूर्व सन्दर्भानुसार इन पंक्तियों में अप्सरा के रूप-सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं—हे अप्सरा तुम्हारे छरहरे शरीर के निमित्त प्रकाश और अन्धकार-रूपी दिन और रात सगे भाई-बहिनों की तरह कोमल रेशमी वस्त्र तैयार करते हैं। भाव यह है कि तुम्हारा वस्त्र श्वेत और काले रंग के रेशमी धागों द्वारा बुना हुआ है। दिन और रात का प्रकाश व अन्धकार ही तुम्हारा झीना और रेशमी वस्त्र है। प्रातःकाल अपने सुनहरी आभा रूपी धागों (सूर्य किरणों) से रूपहली चचल रेखायें खींचकर तुम्हारे निमित्त कंचुकी तैयार करता है। भाव यह है कि उस पर सुनहरी और रेशमी काम रहता है। तितलियां अपने रंग-बिरंगे रेशम जैसे कोमल पखों को डुला-डुलाकर तुम्हारे शरीर को शीतलता प्रदान करती हैं।

विशेष—वर्णन आकर्षक है तथा मन पर पर्याप्त प्रकाश डालने वाला है।

तुहिन विन्दु ·· ····· ··· ··· मौनालाप ।

शब्दार्थ—तुहिन विन्दु=ओस की बूंदें, इन्दु=चन्द्रमा, रश्मि=किरण, मुकुल=पुष्प, फूल, चटुल=चचल, मलय=मलयानिल, जलजों=कमलों ।

सन्दर्भ व्याख्या—कवि अप्सरा के सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ कहता है कि तुम उसी प्रकार चुपचाप सोती रहती हो जिस प्रकार ओस की बूंदों मे चद्रमा की किरणें। रात्रि के समय वातावरण ठंडा रहता है। ओस की बूंदें और उन पर पडने वाली चन्द्रमा की किरणें भी ठण्डी होती हैं। कवि बतलाना चाहता है कि इन्ही के समान तुम बडी शान्तिपूर्वक निन्द्रा का सुख-लाभ करती हो। पुष्पों की शय्या पर निद्रामग्न होकर तुम स्वप्न में अपनी अद्वितीय शोभा का स्वप्न देखा करती हो। मलय-पवन चचल लहरों द्वारा चुम्बित होकर चचल बना हुआ और कोमल ध्वनि करता हुआ प्रवाहित होता रहता है। रात्रि के आगमन पर कमलों के अन्दर बन्द हुए भौंरो से तुम उसी पवन की ध्वनि मे मौन भाषा में वार्तालाप किया करती हो। अर्थात् मलय समीर मन्द गति से प्रवाहित होती है। उसी की बहुत मन्द ध्वनि के रूप मे तुम मानो कमलों के भीतर सोने वाले भौंरो से मौनालाप किया करती हो।

नील सुकुमार ।

शब्दार्थ—कचभार=बालो का जूडा,. विकच=खिले हुए, शशिकर=चन्द्रकिरण, सरसी=बावडी, अभिसार=सचरण, प्रणयक्रीडा, शारद=शरद ऋतु की, ज्योत्स्ना=चादनी ।

व्याख्या—तुम नीले रेशमी अन्धकार रूपी कोमल बालो का जूडा खोलकर चचल तारो से अङ्कित अपने अञ्चल को लहरा-लहराकर, स्वप्न के समान अपने खिले हुए विकसित स्तनो पर तारो का सुन्दर हार धारण कर चन्द्रमा की किरणो के समान अपने छोटे-छोटे चरणो को रखती हुई आकाश रूपी बावडी मे तुम क्रीडा किया करती हो। हे सुकुमार अप्सरे ! उस समय तुम्हारा रूप शरद पूर्णिमा की चादनी मे दूध के झाग के समान चादनी सा प्रतीत होता है।

मेहदी ··· ··· बात !

शब्दार्थ—करतल=हथेली, कुसुमित=फूली हुई, सुभग=सुन्दर, गौर=शुभ्र, श्वेत, गौर वर्ण, द्युति=कान्ति, सामार=आभार सहित, शशि स्मित=चन्द्रमा की मुस्कान, चाँदनी, उर स्पदन=हृदय की धडकन चपल=चचल, वीचि=लहर, पद चार=पद सचरण, विकच=खिले हुए, पद्म=कमल, नवजात=सद्योत्पन्न, नया जन्मा हुआ, बच्चा, भृगो=भौंरो, जगज्जलधि=समार-सागर, हिल्लोल=विशाल लहरें, विलोडित=उमडा हुआ, वात=पवन, शिखर=चोटी, उडु=तारे।

व्याख्या—समार का मम्पूर्ण शृ गार मेहदी से युक्त तुम्हारी कोमल हथेलियो के सौंदर्य से सुग धित और सुन्दर लगता है। तुम्हारे गोरे शरीर की कान्ति वर्फ से सुशोभित पर्वत की चोटियो पर आभार सा प्रकट करती हुई बरसती रहती है अर्थात वर्फ से ढके पर्वत शिखर तुम्हारे गोरे शरीर की कान्ति के कारण ही शोभा पाते हैं। उषा मे जो लालिमा है वह तुम्हारे पैरो के तलवो के कारण है। उषा तुम्हारे तलवो की लालिमा ही है। प्रसन्नता सूचक तुम्हारी मुस्कान ही चन्द्रमा की चादनी बनकर बादलों को प्रकाशित करती है। तारो का कम्पन तुम्हारे हृदय का ही मन्द-मन्द स्पदन है। अर्थात् तारो की झिलमिलाहट या कपन और कुछ नही है, तुम्हारे हृदय मे मद-मद होने वाली धडकन है। लहरो में विद्यमान चचलता तुम्हारे ही चरणों की सचरण है। तुम्हारे हृदय के सैंकडो भावो रूपी खिली हुई पखुडियो से युक्त कमल के समान यह प्रभात है। तुम इस समार मे प्रथम बार नये खिले हुए कमल के सौंदर्य के समान हो। जिस प्रकार कमल पर रूप और सुग ध के लोभी असख्य भौंरे मडराने गू जने लगते हैं उसी प्रकार तुम्हारे सौंदर्य पर सूर्य, चन्द्र ग्रह आदि रूपी भ्रमर अज्ञात रूप मे गु जते रहते हैं। तुम्हारे चन्द्रमा के समान सौंदर्य के कारण इस ससार रूपी सागर मे ऊ ची-ऊ ची लहरें उठने लगती हैं। सारी दिशाए और पवन तुम्हारी सुगध से पागल हो जाते हैं।

विशेष—यहा अप्सरा के सौंदर्य को जगत के सौंदर्य का मूल माना है। सूर्य चन्द्र जो अन्य कवियों के लिए सौंदर्य के उपमान बनते आये हैं, पत की अप्सरा के सौंदर्य पर मडराने वाले भ्रमर बन गये हैं। समस्त दिशाए इसी के सौंदर्य से पागल जो हैं।

जती ··· ···दिनमान ।

शब्दार्थ—अनिमिष=सूने। अम्लान=निर्मल, उज्जवल, स्वच्छ।

स्वर्णिम = सुनहरे । विहान = प्रभात । दिनमान = सूर्य । दीपित = प्रकाशित । जगती = संसार

व्याख्या:—तुम संसार के सुख रहने वाले पलकों पर सुखद सुनहरी स्वप्न के समान कभी समाप्त न होने वाले स्वच्छ निष्कलुष यौवन के समान उदित हुई थी। अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार हम किसी सुखद कल्पना मे मग्न होने पर स्वप्न की सी स्थिति का जाग्रत रहने पर भी अनुभव करते है, संसार ने तुम्हारी कल्पना भी उसी मानसिक स्थिति मे की थी। तुम अक्षय यौवन के समान सदैव निष्कलुष रहने वाली हो। तुम अपने सुनहरे अंचल को फहराकर आगे आने वाले प्रभात की सूचना देती हो। तुम्हारे मुस्कान युक्त मुख पर नये प्रकाश से युक्त नवोदित सूर्य की किरणें पड़ने लगती हैं। अर्थात् बाल रवि की किरणो का उज्ज्वल प्रकाश और कुछ नही तुम्हारी मुस्कान ही है।

सखि.. **पद चार।**

शब्दार्थ —मानस = मन । सुषमा = सौंदर्य । अनुपम = जिसकी उपमा न दी जा सके, अद्वितीय । ईप्सित = इच्छित, अभिलाषित, काम्य । अभिनव = नवीन, भृंगों = भ्रमरो । स्पंदित = स्पंदन युक्त । पृथु = पुष्ट ।

व्याख्या.—कवि अप्सरा को सखि कहकर सम्बोधन करता हुआ कहता है कि हे सखि ! तुम स्वर्ग के समान सब के सुन्दर मन रूपी निवास स्थान मे सदैव सुख मे डूबी विद्यमान रहा करती हो। अर्थात् मनुष्य तुम्हारे सबध मे अनेक सुखद कल्पनाए किया करते हैं। तुम अपने सौंदर्य के कारण अनुपम हो, अद्वितीय हो और इच्छाओ के क्षेत्र मे तुम स्वाधीन हो। तुम पर किसी का नियत्रण नही है। हे रंगिणि ! तुम प्रत्येक युग मे नए-नए स्वरूप धारण करके आया करती हो। तुम नए-नए रूप बदलने के कारण ही रंगीली हो। हे अप्सरे ! देवता, मनुष्य और मुनि आदि सभी तुम्हें प्राप्त करने की इच्छा किया करते हैं, तुम तीनों लोको मे व्याप्त हो।

तुम्हारे एक-एक अंग नए बसंत के समान सुन्दर और सुकुमार हैं। तुम्हारी भृकुटियो की भंगिमा नई-नई इच्छाओ रूपी भौंरो की गुन्जार है। सैकडो मधुर कामनाओ के भार के कारण तुम्हारा पुष्ट वक्ष धडकता रहता है। तुम्हारा एक-एक कदम नई आशाओ रूपी कोमल पुष्पो के द्वारा चूमा जाता है अर्थात् तुम नवीन नवीन कोमल आशाओ को पैदा करती रहती हो।

निखिल.. .... **तल्लीन !**

शब्दार्थ —निखिल = सम्पूर्ण । अपलक = तल्लीन परिधान = वस्त्र । वारिधि = समुद्र । मज्जित = स्नान करती । मीन = मछली ।

व्याख्या —हे अप्सरा ! सम्पूर्ण विश्व ने अपना गौरव, महिमा और सौन्दर्य का दान कर अपने तल्लीन हृदय की कल्पनाओ रूपी स्वप्नो से तुम्हारी प्रतिमा का निर्माण किया है अर्थात् संसार ने कल्पना द्वारा तुम्हारे व्यक्तित्व में अपूर्व गौरव, महिमा और सौन्दर्य की स्थापना कर ली है। संसार

नर ने यह मान लिया है कि तुम अपूर्व गौरव, अपूर्व महिमा और सौंदर्य वाली हो। क्षण-क्षण विश्व मे जितने भी विस्मयकारक कार्य होते हैं और सभी दिशाओ में जितनी भी प्रतिमा है उनका वस्त्र बनाकर अनजाने ही तुम्हे कल्पना और रहस्य में छिपा दिया है अर्थात् महान् से महान् आश्चर्य के कार्यों और सभी दिशाओं की महान् से महान् प्रतिमा द्वारा तुम्हारे स्वरूप का निर्माण हुआ है। तुम्हारा रूप असीम है। बडी से बडी प्रतिमा तुम्हारे रूप की बडी से बडी कल्पना करने के लिए स्वतन्त्र है। तुम्हारे बारे मे कल्पना ही की जा सकती है और कल्पना द्वारा भी तुम्हारा रूप रहस्य बनकर रह जाता है, जाना नही जाता।

सासारिक सुख-दु ख, पाप कर्म करने से होने वाला कष्ट पश्चाताप, और इच्छाओं के कारण होने वाली ज्वाला से तुम मुक्त हो। तुम्हे किसी प्रकार का कष्ट नही होता। तुम बुढापा, जन्म, भय, मृत्यु से रहित हो। तुम सदैव युवा रहने वाली और सदैव नवीन रहने वाली हो। मानव नया जन्म पाकर नवीन होता है, तुम बिना जन्म के ही नवीन रहती हो। तुम विश्व सौन्दर्य रूपी ससार मे स्नान करने वाली जीवन रूपी मछली के समान हो। अर्थात् सम्पूर्ण सौन्दर्य का उपभोग करने वाली हो। हे अप्सरे तुम न तो देखी जा सकती हो और न तुम्हारा स्पर्श किया जा सकता है। तुम सदैव अपने सुख मे डूबी रहती हो।

विशेष—१. 'अप्सरा' कविता मे कवि ने अप्सरा का काल्पनिक स्वरूप चित्रित किया है। अप्सरा एक काल्पनिक सृष्टि है। ससार का समस्त सौन्दर्य उस पर आरोपित किया जाता रहा है। उसके सौन्दर्य की जितनी बडी से बडी कल्पना प्रतिमा द्वारा की जा सकती है, प्रतिभावान् करते आये हैं। ससार की सुन्दरतम वस्तु भी उसके सौन्दर्य के समक्ष तुच्छ है।

२ इस कविता तक कवि पर छायावादी कला का पूर्ण प्रभाव रहा है। इस कविता के उपरान्त कवि ने ससार मे यथार्थ का अवलोकन करना आरम्भ कर दिया है और वह निरे कल्पना लोक से जमीन पर उतर आया है।

पतझर

परिचयात्मक टिप्पणी—कवि पन्त के काव्य विकास की रेखा को देखने के अनन्तर यह स्पष्ट प्रमाणित हो जाता है कि कवि विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न विचारों से गुजरा है। [illegible] कभी छायावादी था तो कभी प्रगतिशील रहा। [illegible] युग परिवर्तन का सूचक कविता है। युगांत की यह रचना पूर्णरूपेण [illegible] की सूचना देती है। पतझर के आने पर समस्त पत्ते [illegible] नष्ट हो जाते हैं और फिर वसन्त का नया मधुमास आता है जो नये [illegible] और नये पल्लवों की [illegible] में वृक्षों को समस्त वनस्पति को नया जीवन प्रदान करता है। कवि इस कविता के द्वारा यही बताना चाहता है कि [illegible] समाप्त हो जाने चाहिए और नये युग में नया आना चाहिए। [illegible] पन्त ने भी कहा था कि जो पुराना पड़ गया है, जीर्ण और जर्जर हो गया है और नव जीवन का सौन्दर्य लेकर आने वाले युग के उपयुक्त नहीं है, उसे पन्त जी बड़ी निर्ममता के साथ हटाना चाहते हैं। यही इस कविता का सन्देश है।

द्रुत झरो......   ......विलीन।

शब्दार्थ—द्रुत झरो=शीघ्र ही नष्ट हो, जीर्ण पत्र=पुराने पत्ते, त्रस्त-ध्वस्त=नष्ट-भ्रष्ट, शीर्ण=सड़ा गला, हिमपातपीत=सर्दी और गर्मी के प्रभाव से पीला पड़ा हुआ, मधुवात-भीत=वासन्ती समीर से डरा हुआ, वीतराग=अन्यमनस्क या उदासीन, पुराचीन=अत्यन्त प्राचीन, विगत=प्राचीन, च्युत=गिरे हुए, अस्त-व्यस्त=बिखरे हुए या जो क्रमहीन हों।

ससन्दर्भ व्याख्या—कवि पन्त युगांत की इस कविता की प्राथमिक पंक्तियों में कह रहे हैं कि पतझड़ आ गया है अतः हे प्राचीन पत्तो तुम झड़ जाओ और नये पत्तों को आने दो। कारण अब तुम बेकार हो गये हो—तुम्हारी अर्थवत्ता नष्ट हो गई है। तुम गर्मी और सर्दी में बाहर रहने के कारण पीतवर्ण हो गये हो। अपनी शुष्कता के कारण ही तुम वसंती वायु के झोंकों के कारण भयभीत हो जाते हो। कवि की मान्यता है कि ये पत्ते अब वीतराग हो गये हैं। इनकी प्राचीनता और जड़ता के कारण ही कोई भी व्यक्ति उन्हें नया प्रेम और सद्भाव प्रदान नहीं करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि कवि प्राचीन विश्वासों और रूढ़ियों को समाप्त करने पर तुला हुआ है। वह यह सहन नहीं कर सकता कि आज के नये जमाने में पुरानी मान्यतायें और पुराने आदर्श पनपें। कारण अब इनका समय नहीं रहा है। नये जमाने का कोई भी नवयुवक इसका (पुरातनता) का पक्षपाती नहीं हो सकता है। प्रसाद ने लिखा है—

> पुरातनता का यह निर्मोक,
> सहन करती न प्रकृति पल एक।

और प्रकृति के यौवन का श्रृंगार,
करेंगे कभी न वासी फूल ।

कवि कह रहा है कि ये वृक्ष के पुराने पत्ते मृत हैं और उनमे रहने वाले पक्षी भी निष्प्राण हो गये हैं। ये पत्ते उस जीर्ण शीर्ण पक्षी की तरह हैं जो नीड मे पडा तो रहता है, किन्तु उसके शब्द--उनकी ध्वनि सुनाई नहीं पडती है। इस प्रकार पत्ते जो जड हैं निष्प्राण हैं, उन्हें हट जाना चाहिए और अपने स्थान पर दूसरों के लिए स्थान देना चाहिए। पत्र रूपी आदर्श अपने जीवन की अन्तिम साँसे ले रहे हैं—एक ऐसे पक्षी की तरह जिसके पख अस्त-व्यस्त हो चुके हैं। अत ससार मे विदा लेना ही ठीक है।

विशेष—१ इन पंक्तियो मे अन्योक्ति पद्धति का प्रयोग किया गया है। 'जीर्ण पत्र' समाज की पुरानी रूढियो का पुराना पत्र है। रूढियो को तोड कर नये विचारो के स्वागत की कामना से ही ये पक्तिया लिखी गई हैं। कवि भी रूढियो पर विश्वास नही करता है; इसीलिए वह सभी पुरानी रूढियो को तोडने पर आमादा है।

२. जीर्ण पत्र के विषय मे शातिप्रिय द्विवेदी लिखते है—ये जीर्ण पत्र मध्य-युगो के जीवनमय मतव्य हैं जो नये विचारो, नये भावो, नये सौन्दर्य नये सगीत अथवा जीवन के नये वसत का स्थान घेरे हुए है। इनके झर जाने, पतझर हो जाने पर ही नई सृष्टि पल्लवित, पुष्पित और उज्जीवित हो सकती है।

ककाल जाल........ ....युग की प्याली।

शब्दार्थ—ककाल जाल = अस्थि पजर, नवज=नवीन, मुखरित बोलते हुए, मांसल हरियाली=हराभरापन, मजरित=मजरी युक्त या कोपल सहित, पिक = कोयल, प्रणय = प्रेम।

ससदर्भ व्याख्या—कवि पुरातनता से पूरी तरह ऊब गया है। वह रूढियों के प्रति विद्रोही दृष्टिकोण रखता है। इसी सदर्भ मे वह कह रहा है—हे पीले पत्तो तुम शीघ्र ही झड जाओ। ऐसा हो जाने से वृक्षो के समूह पर नये पल्लव विकसित होगे। नयी कलिया और नयी कोपले लगेंगी। पुराने पक्षी भी समाप्त हो जायेंगे और उनके स्थान पर नये आकर अपना बसेरा डाल देंगे। इस प्रकार नव वृक्षो के नये पल्लवो के झुरमुट मे बैठे नये पक्षियों का कलरव एक बार फिर ताजे स्वर में गूज उठेगा। जीवन की मासल हरियाली रूपी सघन हरी पत्तिया प्राणो की मर्मर ध्वनि से ध्वनित हो उठेंगी। कवि कोयल को सम्बोधित करके कह रहा है कि हे जग की कोकिला जब तक समस्त जगत यौवनरूपी मजरी से मजरित हो रहा है तब तक तुम अपने अमर प्रणय गीत से—स्वर की मतवाली मदिरा से—सगीत की मादक लहरी से नये युग की प्याली को पूर्ण कर दो। भाव यह है कि अपनी प्रेममयी रागिनी द्वारा समस्त जगत को मतवाला कर दो।

विशेष—पूर्व पद की भाति अन्योक्ति का क्रम बराबर चल रहा है। पेड पत्तो के हट जाने पर नव कोपले आयेंगी, रूढियों के नष्ट होजाने पर उनके स्थान पर नये विचार स्थानापन्न होंगे। इस प्रकार सर्वत्र नूतन रग छा जायगा।

२. कवि के ये विचार 'टैनीसन' के इस विचार से मिलते हैं—
'ओल्ड ऑर्डर, यील्डिंग प्लेस टु न्यू'।

गा कोकिल

परिचयात्मक टिप्पणी—यह कविता भी युगांत की है। इसका रचना काल सन् १९३५ अप्रैल मास है। 'द्रुत झरो' शीर्षक की भांति इसका शीर्षक तो स्पष्ट सूचना नहीं दे पाता है, किन्तु इसका प्रतिपाद्य पूर्व (द्रुतझरो) की कविता से बहुत भिन्न नहीं है। इसमें भी कवि ने यह प्रयत्न किया है कि पुराना नष्ट हो जाय और नया आकर मानव समाज में नयी चेतना विकीर्ण करे। कवि जीर्ण पुरातन को नष्ट करने पर तुला हुआ है। उसकी कामना है कि नया आवे और उसकी नयी सुगन्ध से सम्पूर्ण समाज सुरभित हो उठे। इस कविता में एक नयी बात यह मिलती है कि कवि ने मानव की महत्ता को भी पहचाना है तथा उसका गुणगान किया है। कोकिल के माध्यम से उसने कहा है—

> मानव दिव्य स्फुलिंग चिरन्तन।
> वह न देह का नश्वर रजकण॥
> देश काल हैं उसे न बन्धन।
> मानव का परिचय मानवपन॥

गा कोकिल · · स्वर में कपन।

शब्दार्थ—पावक कण=अग्नि की चिनगारियां ध्वंस=नष्ट, पल्लवित=विकसित।

ससदर्भ व्याख्या—प्रस्तुत पक्तियो मे कवि पन्त कोकिल से मानव जीवन के नये इतिहास का गुणगान करने के लिए कह रहे हैं। कोयल नयी चेतना की प्रतीक है। उसकी स्वर-लहरी नव सदेश की वाहिका है। कवि कहता है—

हे कोकिल ! तू युग क्रांति को जन्म दे। पावक के कणो को सर्वत्र विकसित होने दे। यदि ऐसा हो गया तो प्राचीन हमेशा के लिए नष्ट हो जायगा। हे कोयल ! तू ऐसा गीत गा जिससे ससार के पुराने और जड बधन नष्ट हो जायें। आग के पवित्र पर्णो पर चरण धर कर नये आदर्श आवें। भाव यह है कि ऐसी विचार-क्रांति को जन्म दे जिससे सर्वत्र नयापन छा जाय और मानवता का नया रूप पल्लवित या विकसित हो। इसके निमित्त हे कोयल तू अपने स्वर मे तीव्रता और कपन ला।

भरे जाति ···· ·········मत चिन्तन।

शब्दार्थ—पर्ण=पत्ते, रीति=पद्धति, तत्क्षण=तुरन्त ही।

व्याख्या—पूर्व सदर्भानुसार ही कवि कह रहा है कि समाज मे नयापन आ जावे—सर्वत्र नवलता का राज्य हो, पुराने रीति रिवाज छूट जायें और नये आदर्शों की स्थापना हो। कवि का कथन है कि समस्त जाति, परिवार

और वर्णों मे से अधी रूढियो का विनाश हो—रूढियो के अधे पक्षी अपनी पुरानी रीति-नीति के साथ क्षण भर में ही नष्ट हो जावे। इतना ही नही व्यक्ति, राष्ट्र और पारस्परिक सम्बन्धो मे उदारता का विकास हो। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति व राष्ट्रो के पारस्परिक राग-द्वेष नष्ट हो जावे और व्यक्ति नयी चेतना को जन्म दे तथा पुरानी सभी दृष्टिया विस्मृति के गर्त मे डूब जायें। हे कोकिल ! तू ऐसा गीत गा जो समस्तपुरातन को नष्ट कर दे और नवीन चेतना को विकसित कर दे।

नवल रुधिर········ ····सदेश सनातन।

ससदर्भ व्याख्या—कवि कामना करता है कि जब नवलता आ जायेगी तब संसार मे सर्वत्र नये आदर्शों की प्रतिष्ठा होगी। कवि कह रहा है—

हे कोयल ! तू अपने नये गीत मे नयी शक्ति और प्रेरणा के स्वर भर ले। अपने तन को नये रक्त से भर ले और अपने यौवन को नये स्नेह और सौरभ से भर ले। नये रक्त और नये यौवन के रग से भर कर हे कोयल तू सांसारिक जीवन को मुखरित या चेतन कर दे। यदि ऐसा हो गया तो समस्त जग तेरी मधुर वाणी की मदिरा से छक कर नयी भावनाओ मे गूज उठेगा।

हे कोयल तू अपने मादक और नये सगीत से मानव के लिए एक ऐसा नया मानस तैयार कर जो वाणी, वेश, भाव और व्यवहार मे नये भावों से सयुक्त हो। इतना ही नही तू ऐसी नव चेतना का अलख जगा जिससे प्रत्येक मानस मे स्नेह और 'सुहृदयता' का समावेश हो। ऐसा हो जाने पर सभी मनुष्य नया जीवन यापन करेंगे। हे कोयल तू अनन्तकाल तक ऐसी ही चेतना का गीत गा जिससे प्राचीन विश्वास टूट जायें और नयी चेतना विलसित हो।

मनुष्य तो दिव्य है उसका जीवन चिरतन काल तक दिव्य बना रहता है। मानव नश्वर शरीर की धूल के समान ही नही है वह तो सदा अमर गायक रहा है ! उसके (मानव) लिए देश और काल के बधन मान्य नहीं हैं। भाव यह है कि मानव का अमर सदेश देश काल की सीमाओ को पार कर के सर्वत्र प्रवाहित होता है। कवि कहता है कि मानव का सच्चा परिचय उसकी मानवता है। अत हे कोकिल ! तू सभी दिशाओ को मुखरित करने वाला गीत गा।

विशेष—१. इसमे कवि ने कोयल को नव्य चेतना का वाहक माना है। इसी साथ ही इसने पुराने की समाप्ति और नये की तैयारी की कामना भी है।

२. इसकी भाषा सरल और शीघ्र ही समझ मे आने वाला है। सम्प्रेषणीयता की दृष्टि से यह कविता महत्वपूर्ण है।

विनय

परिचयात्मक टिप्पणी—यह कविता सन् १६१८ मे लिखी गई थी। कवि उस समय काव्य साधना के ससार मे प्रवेश कर रहा था। कवि माता से प्रार्थना करता है कि तेरे समस्त दुख मेरे हो और मेरे समस्त सुख तेरे जीवन के मधुमय उपहार बनें। कवि ने 'विनय' शीर्षक से लिखी गई इस कविता मे यही भाव व्यक्त किया है। कविता की भाषा सरल, सहज और बोधगम्य है। इसमे न तो भावो की गहराई है और न विचारो की प्रबलता—केवल एक विनय है। कवि की अन्तरात्मा से निकली भावनाओ को बडी उपयुक्त अभिव्यक्ति मिली है। कविता मे एक भोलापन प्रारम्भ से अन्त तक विद्यमान है।

मा ········मुक्तालंकार।

शब्दार्थ—मुक्तालकार = मुक्ताओं के अलकार।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि हे मा। मेरे जीवन मे कितनी ही आपदाए आवें, मुझे कितनी ही पराजय क्यो न मिले किन्तु मैं फिर भी निराश नही हो सकता। हे मा मेरे जीवन मे जो पराजय आवे उससे ते जीवन को सुख प्राप्त हो। मेरे पास और तो कुछ नही—यही एक आंसुओ का उपहार है जो मैं तुझे उपहार स्वरूप दे सकता हू। प्रार्थना के क्षणो मे जो उपहार दिया जाता है, मैं उस कर्त्तव्य से वचित रहना नही चाहता हू भले ही मुझे अश्रु कणो का हार पहनाना पड़े।

हे माता ! मेरे जीवन के समस्त श्रम और उनमे अर्जित सम्पत्ति तेरे उज्ज्वल मस्तक की मुक्तामणि हो। भाव यह है कि मुझ मे अकिंचन प श्रमजल के सिवा और कुछ भी नही है। अतः मेरी विनय है कि जो भी मेरे पास है वह तेरे मस्तक का आभूषण बने।

मेरे भूरि ··· ········बारबार।

शब्दार्थ—भूरि = पर्याप्त, उपचार = साधन।

व्याख्या—पूर्व सदर्भानुसार कवि कह रहा है कि मेरे हृदय के समस्त दुख तेरे ही आशीर्वाद से दूर हो सकते हैं। तेरी कामनाओ का ही परिणाम मुझे मिलता है। मैं जो भी प्रेम, कार्य, व्रत और आचार निभाता हू वे सभी तेरी आशा का शृगार हैं। भाव यह है कि मैं तेरे ही आशीर्वाद से काय करता हू। हे माता तेरी निर्भयता का गुण ही मेरे द्वारा की जाने वाली पूजा के उपकरण बनें। भाव यह है कि मैं निर्भयता पूर्वक तेरी प्रार्थना और पूजा करता रहू। यही मेरी विनय है।